इत्युक्त्वा जाम्बवान्प्राह हनूमन्तमवस्थितम् ।
हनूमन्किं रहस्तूष्णीं स्थीयते कार्यगौरवे ॥१६॥
प्राप्तेऽज्ञेनेव सामर्थ्यं दर्शयाद्य महाबल ।
त्वं साक्षाद्वायुतनयो वायुतुल्यपराक्रमः ॥१७॥
रामकार्यार्थमेव त्वं जनितोऽसि महात्मना ।
जातमात्रेण ते पूर्वं दृष्ट्वोद्यन्तं विभावसुम् ॥१८॥
पक्वं फलं जिघृक्षामीत्युत्प्लुतं बालचेष्टया ।
योजनानां पञ्चशतं पतितोऽसि ततो भुवि ॥१९॥
अतस्त्वद्बलमाहात्म्यं को वा शक्नोति वर्णितुम् ।
उत्तिष्ठ कुरु रामस्य कार्यं नः पाहि सुव्रत ॥२०॥
श्रुत्वा जाम्बवतो वाक्यं हनूमानतिहर्षितः ।
चकार नादं सिंहस्य ब्रह्माण्डं स्फोटयन्निव ॥२१॥
बभूव पर्वताकारस्त्रिविक्रम इवापरः ।
लङ्घयित्वा जलनिधिं कृत्वा लङ्कां च भस्मसात् ।२२।
रावणं सकुलं हत्वाऽऽनेष्ये जनकनन्दिनीम् ।
यद्वा बध्वा गले रज्ज्वा रावणं वामपाणिना ॥२३॥
लङ्कां सपर्वतां धृत्वा रामस्याग्रे क्षिपाम्यहम् ।
यद्वा दृष्ट्वैव यास्यामि जानकीं शुभलक्षणाम् ॥२४॥
श्रुत्वा हनुमतो वाक्यं जाम्बवानिदमब्रवीत् ।
दृष्ट्वागच्छ भद्रं ते जीवन्तीं जानकीं शुभाम्॥२५॥
पश्चाद्रामेण सहितो दर्शयिष्यसि पौरुषम् ।
कल्याणं भवताद्भद्र गच्छतस्ते विहायसा ॥२६॥
गच्छन्तं रामकार्यार्थं वायुस्त्वामनुगच्छतु ।
इत्याशीर्भिः समामन्त्र्य विसृष्टः प्लवगाधिपैः॥२७॥
महेन्द्राद्रिशिरो गत्वा बभूवाद्भुतदर्शनः ॥२८॥

यों कहकर जाम्बवान्ने वहाँ बैठे हुए हनूमान्जी-से कहा—"हे हनूमन् ! इस महान् कार्यके उपस्थित होनेपर आप इस प्रकार अनजानके समान चुपचाप एकान्तमें क्यों बैठे हैं ? हे महावीर ! आप साक्षात् पवनदेवके पुत्र हैं और उन्हींके समान पराक्रमी हैं, अतः आज अपनी सामर्थ्य दिखलाइये ॥ १६-१७ ॥ महात्मा वायुने राम-कार्यके लिये ही आपको उत्पन्न किया है । जिस समय आपका जन्म हुआ था उसी समय आप सूर्यको उदय हुआ देखकर 'इस पके फलको लेना चाहिये' इस इच्छासे बाललीलासे ही पाँच सौ योजन ऊँचे उछलकर पृथिवीपर गिरे थे ॥ १८-१९ ॥ अतः, ऐसा कौन है जो आपके बलका माहात्म्य वर्णन कर सके । हे सुव्रत ! आप खड़े हो जाइये और यह राम-कार्य करके हम सबकी रक्षा कीजिये" ॥ २० ॥

जाम्बवान्के ये वचन सुनकर हनूमान्जी अति प्रसन्न हुए और उन्होंने समस्त ब्रह्माण्डको मानो कम्पायमान करते हुए घोर सिंहनाद किया ॥२१॥ दूसरे त्रिविक्रम भगवान्के समान वे पर्वताकार हो गये, (और कहने लगे) "हे वानरो ! मैं समुद्रको लाँघकर लंकाको भस्म कर डालूँगा और रावणको उसके कुलसहित मारकर श्रीजानकीजीको ले आऊँगा; अथवा कहो तो, रावणके गलेमें रस्सी डालकर और लंकाको त्रिकूट-पर्वतसहित बायें हाथपर उठाकर भगवान् रामके आगे ले जाकर डाल दूँ, या केवल शुभलक्षणा जानकीजीको देखकर ही चला आऊँ" ॥ २२–२४ ॥

हनूमान्जीके ये वचन सुनकर जाम्बवान्ने कहा—"हे वीर ! तुम्हारा शुभ हो, तुम केवल शुभलक्षणा जानकीजीको जीती-जागती देखकर ही चले आओ ॥ २५ ॥ फिर रामचन्द्रजीके साथ जाकर अपना पुरुषार्थ दिखलाना । हे भद्र ! आकाशमार्गसे जाते हुए तुम्हारा कल्याण हो ॥ २६ ॥ रामकार्यके लिये जाते समय वायु तुम्हारा अनुगमन करें ।"

इस प्रकार आशीर्वादोंसे अभिनन्दन करते हुए वानर-यूथपोंके विदा करनेपर हनुमान्जी महेन्द्रपर्वतके शिखरपर चढ़ गये । वहाँ उन्होंने अद्भुतरूप धारण

ॐ

अध्यात्मरामायण

सुन्दरकाण्ड

प्रथम सर्ग

हनुमानजीका समुद्रोल्लङ्घन और लंका-प्रवेश।

श्रीमहादेव उवाच

शतयोजनविस्तीर्णं समुद्रं मकरालयम् ।
लिलङ्घयिपुरानन्दसन्दोहो मारुतात्मजः ॥ १ ॥
ध्यात्वा रामं परात्मानमिदं वचनमब्रवीत् ।
पश्यन्तु वानराः सर्वे गच्छन्तं मां विहायसा ॥ २ ॥
अमोघं रामनिर्मुक्तं महाबाणमिवाखिलाः ।
पश्याम्यद्यैव रामस्य पत्नीं जनकनन्दिनीम् ॥ ३ ॥
कृतार्थोऽहं कृतार्थोऽहं पुनः पश्यामि राघवम् ।
प्राणप्रयाणसमये यस्य नाम सकृत्स्मरन् ॥ ४ ॥
नरस्तीर्त्वा भवाम्भोधिमपारं याति तत्पदम् ।
किं पुनस्तस्य दूतोऽहं तदङ्काङ्गुलिमुद्रिकः ॥ ५ ॥
तमेव हृदये ध्यात्वा लङ्घयाम्यल्पवारिधिम् ।
इत्युक्त्वा हनुमान्बाहू प्रसार्यायतवालधिः ॥ ६ ॥
ऋजुग्रीवोर्ध्वदृष्टिः सन्नाकुञ्चितपदद्वयः ।
दक्षिणाभिमुखस्तूर्णं प्लुप्लुवेऽनिलविक्रमः ॥ ७ ॥
आकाशाच्चरितं देवैर्वीक्ष्यमाणो जगाम सः ।
दृष्ट्वाऽनिलसुतं देवा गच्छन्तं वायुवेगतः ॥ ८ ॥
परीक्षणार्थं सत्त्वस्य वानरस्येदमब्रुवन् ।
गच्छत्येष महासत्त्वो वानरो वायुविक्रमः ॥ ९ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! आनन्दघन श्रीहनुमान्‌जी सौ योजनतक फैले हुए और मकरादि दुष्ट जल-जन्तुओंसे पूर्ण समुद्रको लाँघनेके लिये उद्यत हो परमात्मा रामका स्मरण कर इस प्रकार बोले—"हे वानरगण ! तुम सब इस ओर देखो । मैं भगवान् रामके छोड़े हुए अमोघ बाणके समान आकाश-मार्गसे जाता हूँ । मैं आज ही रामप्रिया जनकनन्दिनी श्रीसीताजीको देखूँगा ॥ १–३ ॥ निश्चय ही, अब मैं कृतकार्य होकर ही पुनः श्रीरघुनाथजीका दर्शन करूँगा । प्राण-प्रयाणके समय जिनके नामका एक बार स्मरण करनेसे ही मनुष्य अपार संसार-सागरको पार कर उनके परमधामको चला जाता है, फिर मैं उन्हींका दूत उनके अवयव-रूप अँगुलीकी अँगूठी लिये हुए अपने हृदयमें उन्हीं-का ध्यान करता हुआ इस तुच्छ समुद्रको लाँघ जाऊँ तो इसमें कौन बड़ी बात है ?" ऐसा कह श्रीहनुमान्‌जीने अपनी बाँहें फैलायीं और पूँछको सीधा किया तथा तुरन्त ही गरदनको सीधा एवं दृष्टिको ऊपरकी ओर कर पाँव सिकोड़ लिये और दक्षिणकी ओर मुख करके वायु-वेगसे उड़ान लगायी ॥ ४–७ ॥

उस समय वे देवताओंके देखते-देखते आकाश-मार्गसे बड़े तीव्र वेगसे जा रहे थे । पवनपुत्र हनुमान्‌जीको इस प्रकार वायु-वेगसे जाते देख देवताओंने उनकी सामर्थ्यकी परीक्षाके लिये आपसमें इस प्रकार कहा—"यह महाशक्तिशाली वानर वायुके समान तीव्र वेगसे जा रहा है ॥ ८-९ ॥ किन्तु पता

लङ्कां प्रवेष्टुं शक्तो वा न वा जानीमहे बलम् ।
एवं विचार्य नागानां मातरं सुरसाभिधाम् ॥१०॥
अब्रवीद्देवतावृन्दः कौतूहलसमन्वितः ।
गच्छ त्वं वानरेन्द्रस्य किञ्चिद्विघ्नं समाचर ॥११॥
ज्ञात्वा तस्य बलं बुद्धिं पुनरेहि त्वरान्विता ।
इत्युक्ता सा ययौ शीघ्रं हनुमद्विघ्नकारणात् ॥१२॥
आवृत्य मार्गं पुरतः स्थित्वा वानरमब्रवीत् ।
एहि मे वदनं शीघ्रं प्रविशस्व महामते ॥१३॥
देवैस्त्वं कल्पितो भक्ष्यः क्षुधासम्पीडितात्मनः ।
तामाह हनुमान्मातरहं रामस्य शासनात् ॥१४॥
गच्छामि जानकीं द्रष्टुं पुनरागम्य सत्वरः ।
रामाय कुशलं तस्याः कथयित्वा त्वदाननम् ॥१५॥
निवेक्ष्ये देहि मे मार्गं सुरसायै नमोऽस्तु ते ।
इत्युक्ता पुनरेवाह सुरसा क्षुधितास्म्यहम् ॥१६॥
प्रविश्य गच्छ मे वक्त्रं नो चेत्त्वां भक्षयाम्यहम् ।
इत्युक्तो हनुमानाह मुखं शीघ्रं विदारय ॥१७॥
प्रविश्य वदनं तेऽद्य गच्छामि त्वरयान्वितः ।
इत्युक्त्वा योजनायामदेहो भूत्वा पुरः स्थितः ॥१८॥

दृष्ट्वा हनूमतो रूपं सुरसा पञ्चयोजनम् ।
मुखं चकार हनुमान् द्विगुणं रूपमादधत् ॥१९॥
ततश्चकार सुरसा योजनानां च विंशतिम् ।
वक्त्रं चकार हनुमांस्त्रिंशद्योजनसम्मितम् ॥२०॥
ततश्चकार सुरसा पञ्चाशद्योजनायतम् ।
वक्त्रं तदा हनूमांस्तु बभूवाङ्गुष्ठसन्निभः ॥२१॥
प्रविश्य वदनं तस्याः पुनरेत्य पुरः स्थितः ।
प्रविष्टो निर्गतोऽहं ते वदनं देवि ते नमः ॥२२॥
एवं वदन्तं दृष्ट्वा सा हनूमन्तमथाब्रवीत् ।
गच्छ साधय रामस्य कार्यं बुद्धिमतां वर ॥२३॥

नहीं यह लंकामें घुस सकेगा या नहीं । अतः इसके बलका पता लगाना चाहिये ।" परस्पर ऐसा विचार-कर उन्होंने कुतूहलवश नागमाता सुरसासे कहा—"सुरसे ! तुम अभी जाकर इस वानरश्रेष्ठके मार्गमें कुछ विघ्न खड़ा करो और इसकी बल-बुद्धिका पता लगाकर तुरन्त लौट आओ ।" देवताओंके इस प्रकार कहनेपर वह तुरन्त ही हनुमान्‌जीको विघ्न उपस्थित करनेके लिये गयी ॥१०–१२॥ वह उनके मार्गको सामनेसे रोक-कर खड़ी हो गयी और बोली—"हे महामते ! आओ, शीघ्र ही मेरे मुखमें प्रवेश करो; मैं भूखसे अत्यन्त व्याकुल थी, अतः देवताओंने तुम्हें मेरा भक्ष्य बनाया है ।" तब हनुमान्‌जीने उससे कहा—"हे मातः ! मैं श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे जानकीजीको देखनेके लिये जा रहा हूँ । वहाँसे शीघ्र ही लौटकर श्रीरघु-नाथजीको उनका कुशल-समाचार सुनाकर फिर मैं तेरे मुखमें प्रवेश करूँगा । हे सुरसे ! मैं तुझे प्रणाम करता हूँ, तू मेरा मार्ग छोड़ दे ।" इसपर सुरसाने फिर कहा—"मुझे बड़ी भूख लगी है । अतः एक बार मेरे मुखमें प्रवेश करके फिर चले जाना, नहीं तो मैं तुम्हें खा जाऊँगी ।" तब हनुमान्‌जीने कहा—"अच्छा तो शीघ्र ही अपना मुख खोल । मैं अभी तेरे मुखमें घुसकर तुरन्त ही लंकाको चला जाऊँगा ।" ऐसा कह हनुमान्‌जी अपना शरीर एक योजन लम्बा-चौड़ा बनाकर सामने खड़े हो गये ॥ १३–१८ ॥

हनुमान्‌जीका वह रूप देखकर सुरसाने अपना मुख पाँच योजन फैलाया; तब हनुमान्‌जीने अपना शरीर उससे दूना कर लिया ॥ १९ ॥ फिर सुरसाने अपना मुख बीस योजन किया तो हनुमान्‌जीने अपना देह तीस योजनका कर लिया ॥ २० ॥ इसपर जब सुरसाने अपना मुख पचास योजन फैलाया तो हनुमान्‌जी अँगूठेके समान छोटे-से आकारके हो गये और चट उसके मुखमें जाकर बाहर निकल आये तथा उसके सामने खड़े होकर बोले—"हे देवि ! मैं तुम्हारे मुखमें जाकर फिर निकल आया हूँ, अब तुम्हें नमस्कार है" ॥ २१-२२ ॥ हनुमान्‌जीको इस प्रकार कहते देख सुरसा बोली—"हे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ ! जाओ, श्रीरामचन्द्रजीका कार्य सिद्ध करो । हे वानर ! देवता-लोग तुम्हारा बल जानना चाहते थे अतः उन्होंने मुझे

देवैः सम्प्रेषिताऽहं ते बलं जिज्ञासुभिः कपे ।
दृष्ट्वा सीतां पुनर्गत्वा रामं द्रक्ष्यसि गच्छ भोः ॥२४॥

इत्युक्त्वा सा ययौ देवलोकं वायुसुतः पुनः ।
जगाम वायुमार्गेण गरुत्मानिव पक्षिराट् ॥२५॥

समुद्रोऽप्याह मैनाकं मणिकाञ्चनपर्वतम् ।
गच्छत्येष महासत्त्वो हनूमान्मारुतात्मजः ॥२६॥

रामस्य कार्यसिद्ध्यर्थं तस्य त्वं सचिवो भव ।
सगरैर्वर्धितो यस्मात्पुराऽहं सागरोऽभवम् ॥२७॥

तस्यान्वये बभूवासौ रामो दाशरथिः प्रभुः ।
तस्य कार्यार्थसिद्ध्यर्थं गच्छत्येष महाकपिः ॥२८॥

त्वमुत्तिष्ठ जलात्तूर्णं त्वयि विश्रम्य गच्छतु ।
स तथेति प्रादुरभूज्जलमध्यान्महोन्नतः ॥२९॥

नानामणिमयैः शृङ्गैस्तस्योपरि नराकृतिः ।
प्राह यान्तं हनूमन्तं मैनाकोऽहं महाकपे ॥३०॥

समुद्रेण समादिष्टस्त्वद्विश्रामाय मारुते ।
आगच्छामृतकल्पानि जग्ध्वा पक्वफलानि मे ॥३१॥

विश्रम्यात्र क्षणं पश्चाद्गमिष्यसि यथासुखम् ।
एवमुक्तोऽथ तं प्राह हनूमान्मारुतात्मजः ॥३२॥

गच्छतो रामकार्यार्थं भक्षणं मे कथं भवेत् ।
विश्रामो वा कथं मे स्याद्गन्तव्यं त्वरितं मया ॥३३॥

इत्युक्त्वा स्पृष्टशिखरः कराग्रेण ययौ कपिः ।

किञ्चिद्दूरं गतस्यास्य छायां छायाग्रहोऽग्रहीत् ।३४।

सिंहिका नाम सा घोरा जलमध्ये स्थिता सदा ।
आकाशगामिनां छायामाक्रम्याकृष्य भक्षयेत् ।३५।

तया गृहीतो हनुमांश्चिन्तयामास वीर्यवान् ।
केनेदं मे कृतं वेगरोधनं विघ्नकारिणा ॥३६॥

तुम्हारे पास भेजा था । मुझे निश्चय है कि तुम सीताजीको देखकर फिर शीघ्र ही रघुनाथजीसे मिलोगे । अब तुम जाओ" ॥ २३-२४ ॥

ऐसा कहकर सुरसा देवलोकको चली गयी और श्रीहनुमान्‌जी फिर आकाश-मार्गसे पक्षिराज गरुड़के समान चलने लगे ॥ २५ ॥ इसी समय समुद्रने भी सुवर्ण और मणियोंसे युक्त मैनाक पर्वतसे कहा—"देखो, ये महाशक्तिशाली पवनपुत्र हनुमान्‌जी राम-कार्यके लिये जा रहे हैं; तुम उनकी सहायता करो । पूर्वकालमें मुझे सगर-पुत्रोंने बढ़ाया था. इसीसे मैं सागर कहलाता हूँ ॥ २६-२७ ॥ ये दशरथनन्दन भगवान् राम उन्हींके वंशमें प्रकट हुए हैं और ये कपिराज उन्हींका कार्य सिद्ध करनेके लिये जा रहे हैं ॥ २८ ॥ तुम तुरन्त ही जलसे ऊपर उठ जाओ, जिससे ये तुम्हारे ऊपर कुछ देर विश्राम लेकर आगे जायँ ।" तब मैनाक पर्वत 'बहुत अच्छा' कह तुरन्त अपने अनेक मणिमय शिखरोंसे पानीसे ऊपर बहुत ऊँचा निकल आया । और उन शृंगोंके ऊपर मनुष्याकारसे स्थित होकर उसने जाते हुए हनुमान्‌जीसे कहा—"हे महाकपे ! मैं मैनाक हूँ । हे मारुते ! समुद्रने मुझे तुम्हें विश्राम देनेके लिये आज्ञा दी है । आओ, मेरे ये अमृत-तुल्य फल खाओ ॥ २९–३१ ॥ कुछ देर यहाँ विश्राम करके फिर आनन्दपूर्वक चले जाना ।" मैनाकके इस प्रकार कहनेपर पवनपुत्र हनुमान्‌जी बोले—॥ ३२ ॥ "राम-कार्यके लिये जाते हुए मैं भोजनादि कैसे कर सकता हूँ ? और मुझे जल्दी ही जाना है, अतः विश्रामका अवकाश भी कहाँ है ?" ॥३३॥

ऐसा कह कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जी (मैनाकका मान रखनेके लिये) उसके शिखरको केवल अँगुलीसे छूकर आगे चल दिये । वे कुछ ही आगे बढ़े थे कि उनकी छायाको एक छायाग्रहने पकड़ लिया ॥ ३४ ॥ वह सिंहिका नामकी एक घोर राक्षसी थी जो सदा जलमें रहकर आकाशमें जाते हुए जीवोंकी छाया पकड़कर उन्हें खींच लेती थी और खा जाया करती थी ॥ ३५ ॥ उससे पकड़े जानेपर महापराक्रमी श्रीहनुमान्‌जी सोचने लगे—'यह ऐसा कौन विघ्न-कारक है जिसने मेरा वेग रोक लिया ? दिखायी

दृश्यते नैव कोऽप्यत्र विस्मयो मे प्रजायते ।
एवं विचिन्त्य हनूमानधो दृष्टिं प्रसारयत् ॥३७॥
तत्र दृष्ट्वा महाकायां सिंहिकां घोररूपिणीम् ।
पपात सलिले तूर्णं पद्भ्यामेवाहनद्रुषा ॥३८॥
पुनरुत्प्लुत्य हनुमान्दक्षिणाभिमुखो ययौ ।
ततो दक्षिणमासाद्य कूलं नानाफलद्रुमम् ॥३९॥
नानापक्षिमृगाकीर्णं नानापुष्पलतावृतम् ।
ततो ददर्श नगरं त्रिकूटाचलमूर्धनि ॥४०॥
प्राकारैर्बहुभिर्युक्तं परिखाभिश्च सर्वतः ।
प्रवेक्ष्यामि कथं लङ्कामिति चिन्तापरोऽभवत् ॥४१॥
रात्रौ वेक्ष्यामि सूक्ष्मोऽहं लङ्कां रावणपालिताम् ।
एवं विचिन्त्य तत्रैव स्थित्वा लङ्कां जगाम सः ॥४२॥

धृत्वा सूक्ष्मं वपुर्द्वारं प्रविवेश प्रतापवान् ।
तत्र लङ्कापुरी साक्षाद्राक्षसीवेषधारिणी ॥४३॥
प्रविशन्तं हनूमन्तं दृष्ट्वा लङ्का व्यतर्जयत् ।
कस्त्वं वानररूपेण मामनादृत्य लङ्किनीम् ॥४४॥
प्रविश्य चोरवद्रात्रौ किं भवान्कर्तुमिच्छति ।
इत्युक्त्वा रोषताम्राक्षी पादेनाभिजघान तम् ॥४५॥
हनुमानपि तां वाममुष्टिनाऽवज्ञयाऽहनत् ।
तदैव पतिता भूमौ रक्तमुद्वमती भृशम् ॥४६॥
उत्थाय प्राह सा लङ्का हनूमन्तं महाबलम् ।
हनूमन् गच्छ भद्रं ते जिता लङ्का त्वयाऽनघ ॥४७॥
पुराऽहं ब्रह्मणा प्रोक्ता ह्यष्टाविंशतिपर्यये ।
त्रेतायुगे दाशरथी रामो नारायणोऽव्ययः ॥४८॥
जनिष्यते योगमाया सीता जनकवेश्मनि ।
भूभारहरणार्थाय प्रार्थितोऽयं मया क्वचित् ॥४९॥

तो यहाँ कोई देता नहीं, इससे मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है ।' ऐसे सोचते-सोचते उन्होंने अपनी दृष्टि नीचेकी ओर की तो उन्हें वहाँ बड़े विकराल रूप और स्थूल शरीरवाली सिंहिका राक्षसी दिखलायी दी । उसे देखते ही वे तुरन्त जलमें कूद पड़े और बड़े क्रोधसे उसे लातोंसे ही मार डाला ॥३६–३८॥ इसके पश्चात् हनुमान्‌जी फिर उछलकर दक्षिणकी ओर चलने लगे और समुद्रके दक्षिण-तटपर पहुँच गये, जहाँ नाना प्रकारके फलवाले वृक्ष लगे हुए थे ॥३९॥ और जो तरह-तरहके पक्षियों और मृगोंसे पूर्ण तथा विविध भाँतिकी पुष्पलताओंसे आवृत था । वहाँ पहुँचकर उन्होंने त्रिकूट पर्वतके शिखरपर बसी हुई लंकापुरी देखी जो सब ओरसे अनेकों परकोटों और खाइयोंसे घिरी हुई थी । उसे देखकर वे सोचने लगे कि मुझे किस प्रकार इस नगरमें जाना चाहिये ॥४०-४१॥ फिर निश्चय किया कि मैं रात्रिके समय सूक्ष्म शरीर धारणकर इस रावणप्रतिपालित लंकापुरीमें प्रवेश करूँगा । यह विचारकर वे वहीं ठहर गये और फिर (रात्रि होनेपर) लंकाकी ओर चले ॥ ४२ ॥

जिस समय महाप्रतापी श्रीहनुमान्‌जीने सूक्ष्म शरीर धारण कर नगरके द्वारमें प्रवेश किया उस समय वहाँ साक्षात् लंकापुरी राक्षसीका रूप धारण किये खड़ी थी ॥ ४३ ॥ उसने हनुमान्‌जीको नगरमें जाते देख डाँटा और पूछा—"तू कौन है जो इस रात्रिके समय मुझ लंकिनीका अनादर कर चोरके समान वानररूपसे नगरमें जा रहा है ? और (यहाँ) तू क्या करना चाहता है ?" ऐसा कह उसने क्रोधसे आँखें लाल कर उनके लात मारी ॥ ४४-४५ ॥ तब हनुमान्‌जीने उसकी अवज्ञा करते हुए उसे बायें हाथका घूँसा मारा, जिससे वह बहुत-सा रुधिर वमन करती हुई पृथिवी-पर गिर पड़ी ॥ ४६ ॥ फिर कुछ देर पीछे लंकिनीने उठकर महाबली हनुमान्‌जीसे कहा—"हे हनुमन् ! जाओ, तुम्हारा कल्याण हो; हे अनघ ! तुम लंकापुरी-को जीत चुके ॥ ४७ ॥ पूर्वकालमें मुझसे श्रीब्रह्माजीने कहा था कि 'अट्ठाईसवें चतुर्युगके त्रेतायुगमें अविनाशी नारायणदेव दशरथकुमार रामरूपसे अवतीर्ण होंगे और उनकी योगमाया महाराज जनकके घरमें सीताजी होकर प्रकट होंगी, क्योंकि मैंने पहले कभी उनसे पृथिवीका भार उतारनेके लिये प्रार्थना की थी

सभार्यो राघवो भ्रात्रा गमिष्यति महावनम् ।
तत्र सीतां महामायां रावणोऽपहरिष्यति ॥५०॥
पश्चाद्रामेण साचिव्यं सुग्रीवस्य भविष्यति ।
सुग्रीवो जानकीं द्रष्टुं वानरान्प्रेषयिष्यति ॥५१॥
तत्रैको वानरो रात्रावागमिष्यति तेऽन्तिकम् ।
त्वया च भर्त्सितः सोऽपि त्वां हनिष्यति मुष्टिना५२
तेनाहता त्वं व्यथिता भविष्यसि यदानघे ।
तदैव रावणस्यान्तो भविष्यति न संशयः ॥५३॥
तस्मात्त्वया जिता लङ्का जितं सर्वं त्वयाऽनघ ।
रावणान्तःपुरवरे क्रीडाकाननमुत्तमम् ॥५४॥
तन्मध्येऽशोकवनिका दिव्यपादपसङ्कुला ।
अस्ति तस्यां महावृक्षः शिंशपानाम मध्यगः ॥५५॥
तत्रास्ते जानकी घोरराक्षसीभिः सुरक्षिता ।
दृष्ट्वैव गच्छ त्वरितं राघवाय निवेदय ॥५६॥

धन्याऽहमप्यद्य चिराय राघव-
स्मृतिर्ममासीद्भवपाशमोचिनी ।
तद्भक्तसङ्गोऽप्यतिदुर्लभो मम
प्रसीदतां दाशरथिः सदा हृदि ॥५७॥

उल्लङ्घितेऽब्धौ पवनात्मजेन
धरासुतायाश्च दशाननस्य ।
पुस्फोर वामाक्षि भुजश्च तीव्रं
रामस्य दक्षाङ्गमतीन्द्रियस्य ॥५८॥

॥ ४८-४९ ॥ वे श्रीरामचन्द्रजी भाई लक्ष्मण और भार्या सीताके सहित महावन (दण्डकारण्य) में जायँगे । वहाँ महामायारूपिणी श्रीसीताजीको रावण हर ले जायगा ॥५०॥ तदनन्तर रामके साथ सुग्रीवकी मित्रता होगी और सुग्रीव जानकीजीकी खोजके लिये वानरोंको भेजेगा ॥ ५१ ॥ उनमेंसे एक वानर रात्रिके समय तेरे पास आयेगा । वह तुझसे तिरस्कृत होनेपर तेरे मुक्का मारेगा ॥ ५२ ॥ हे अनघे ! जिस समय तू उसके प्रहारसे व्याकुल हो जायगी उसी समय रावणका अन्त होगा—इसमें सन्देह नहीं' ॥ ५३ ॥ अतः हे निष्पाप हनुमन् ! तुमने (मुझ) लंकाको जीत लिया तो सभीको जीत लिया । रावणके अन्तःपुरमें एक अत्युत्तम क्रीडावन है ॥ ५४ ॥ उसमें दिव्य वृक्षोंसे सम्पन्न एक अशोकवाटिका है । उसके बीचों-बीचमें एक अति विशाल शिंशपा (सीसमका) वृक्ष है ॥ ५५ ॥ श्रीजानकीजी वहींपर भयंकर राक्षसियोंके पहरेमें रहती हैं । तुम उनका दर्शन कर शीघ्र ही श्रीरघुनाथजीको उनका समाचार सुनाओ ॥ ५६ ॥ आज बहुत दिनोंमें मुझे श्रीरामचन्द्रजीकी संसार-बन्धनको नष्ट करनेवाली स्मृति हुई है और उनके भक्तका अति दुर्लभ सङ्ग प्राप्त हुआ है । अतः आज मैं धन्य हूँ । मेरे हृदयमें विराजमान वे दशरथनन्दन राम मुझपर सदा प्रसन्न रहें" ॥ ५७ ॥

पवननन्दन हनुमान्‌जीके समुद्र लाँघते ही पृथिवी-पुत्री श्रीसीताजी और रावणकी बाँयीं भुजा और बाँये नेत्र तथा इन्द्रियातीत श्रीरामचन्द्रजीके दाँये अंग बड़े जोरसे फड़कने लगे ॥ ५८ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे
सुन्दरकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीय सर्ग

हनुमान्‌जीका वाटिकामें जाना तथा रावणका सीताजीको भय दिखलाना।

श्रीमहादेव उवाच

ततो जगाम हनुमान् लङ्कां परमशोभनाम् ।
रात्रौ सूक्ष्मतनुर्भूत्वा बभ्राम परितः पुरीम् ॥ १ ॥
सीतान्वेषणकार्यार्थी प्रविवेश नृपालयम् ।
तत्र सर्वप्रदेशेषु विविच्य हनुमान्कपिः ॥ २ ॥
नापश्यज्जानकीं स्मृत्वा ततो लङ्काऽभिभाषितम् ।
जगाम हनुमान् शीघ्रमशोकवनिकां शुभाम् ॥ ३ ॥
सुरपादपसम्बाधां रत्नसोपानवापिकाम् ।
नानापक्षिमृगाकीर्णां स्वर्णप्रासादशोभिताम्॥ ४ ॥
फलैरानम्रशाखाग्रपादपैः परिवारिताम् ।
विचिन्वन् जानकीं तत्र प्रतिवृक्षं मरुत्सुतः ॥ ५ ॥
ददर्शाभ्रंलिहं तत्र चैत्यप्रासादमुत्तमम् ।
दृष्ट्वा विस्मयमापन्नो माणिस्तम्भशतान्वितम् ॥ ६ ॥
समतीत्य पुनर्गत्वा किञ्चिद्दूरं स मारुतिः ।
ददर्श शिंशपावृक्षमत्यन्तनिबिडच्छदम् ॥ ७ ॥
अदृष्टातपमाकीर्णं स्वर्णवर्णविहङ्गमम् ।
तन्मूले राक्षसीमध्ये स्थितां जनकनन्दिनीम् ॥ ८ ॥
ददर्श हनुमान् वीरो देवतामिव भूतले ॥
एकवेणीं कृशां दीनां मलिनाम्बरधारिणीम् ॥ ९ ॥
भूमौ शयानां शोचन्तीं रामरामेति भाषिणीम् ।
त्रातारं नाधिगच्छन्तीमुपवासकृशां शुभाम् ॥१०॥
शाखान्तच्छदमध्यस्थो ददर्श कपिकुञ्जरः ।
कृतार्थोऽहं कृतार्थोऽहं दृष्ट्वा जनकनन्दिनीम्॥११॥
मयैव साधितं कार्यं रामस्य परमात्मनः ।
ततः किलकिलाशब्दो बभूवान्तःपुराद्बहिः ॥१२॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! तदनन्तर श्रीहनुमान्‌जी अति सुशोभिता लंकापुरीमें गये और सूक्ष्म शरीर धारण कर रात्रिमें नगरमें सब ओर घूमने रहे ॥ १ ॥ सीताजीका पता लगानेके लिये वे राजमन्दिरमें घुस गये, वहाँ सब ओर ढूँढ़नेपर भी जब उन्हें जानकीजी न मिलीं तो उन्हें लंकिनीका कथन याद आया और वे तुरन्त ही अति मनोज्ञ अशोकवाटिकामें पहुँचे ॥ २-३ ॥ वह वाटिका कल्पवृक्षोंसे पूर्ण थी, उसकी बावड़ियोंकी सीढ़ियाँ रत्नजटित थीं, उसमें नाना प्रकारके पक्षी और मृगगण विचर रहे थे तथा सुवर्ण-निर्मित महलोंकी अपूर्व शोभा थी ॥ ४ ॥ वह वाटिका फलोंके भारसे झुकी हुई शाखाओंवाले वृक्षोंसे घिरी हुई थी। वहाँ प्रत्येक वृक्षके नीचे जानकीजीको ढूँढ़ते-ढूँढ़ते पवननन्दन हनुमान्‌जीने एक अति सुन्दर देवालय देखा। वह इतना ऊँचा था कि उसके शिखर बादलोंसे टकराते थे। सैकड़ों मणिमय स्तम्भोंसे युक्त उस देवालयको देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ५-६ ॥ उससे कुछ और आगे बढ़े तो उन्होंने एक अत्यन्त घने पत्तोंवाला शिंशपा (सीसमका) वृक्ष देखा ॥७॥ उसके नीचे धूप कभी नहीं जाती थी और वह सुनहरी पक्षियोंसे आकीर्ण था। वीरवर हनुमान्‌जीने देखा कि उस वृक्षके नीचे श्रीजानकीजी पृथिवीपर स्थित देवताके समान राक्षसियोंसे घिरी हुई बैठी हैं। उनके बालोंकी जुड़कर एक वेणी हो गयी है, वे अत्यन्त दुर्बल और दीन-अवस्था में हैं तथा मैले-कुचैले वस्त्र धारण किये हुए हैं ॥ ८-९ ॥ ऐसी अवस्थामें पृथिवीपर पड़ी हुई वे अति शोकपूर्वक 'राम-राम' कह रही हैं उन्हें अपना कोई रक्षक भी दिखायी नहीं देता और वे उपवास करनेसे अति दुर्बल हो गयी हैं ॥ १० ॥

कपिश्रेष्ठ श्रीहनुमान्‌जी शाखाओंके पत्तोंमें छिपकर उन्हें देखने लगे और मन-ही-मन कहने लगे कि 'आज जानकीजीको देखकर मैं कृतार्थ हो गया, कृतार्थ हो गया ! अहा ! परमात्मा रामका कार्य मेरे ही द्वारा सिद्ध हुआ ।' इसी समय अन्तःपुरमेंसे बड़े किलकिला शब्दकी आवाज आयी ॥ ११-१२ ॥ तब हनुमान्‌जीने यह

किमेतदिति सँल्लीनो वृक्षपत्रेषु मारुतिः ।
आयान्तं रावणं तत्र स्त्रीजनैः परिवारितम् ॥१३॥
दशास्यं विंशतिभुजं नीलाञ्जनचयोपमम् ।
दृष्ट्वा विस्मयमापन्नः पत्रखण्डेष्वलीयत ॥१४॥
रावणो राघवेणाशु मरणं मे कथं भवेत् ।
सीतार्थमपि नायाति रामः किं कारणं भवेत्॥१५॥
इत्येवं चिन्तयन्नित्यं राममेव सदा हृदि ।
तस्मिन्दिनेऽपररात्रौ रावणो राक्षसाधिपः ॥१६॥
स्वप्ने रामेण सन्दिष्टः कश्चिदागत्य वानरः ।
कामरूपधरः सूक्ष्मो वृक्षाग्रस्थोऽनुपश्यति ॥१७॥
इति दृष्ट्वाऽद्भुतं स्वप्नं स्वात्मन्येवानुचिन्त्य सः ।
स्वप्नः कदाचित्सत्यः स्यादेवं तत्र करोम्यहम् ।१८।
जानकीं वाक्शरैर्विद्ध्वा दुःखितां नितरामहम् ।
करोमि दृष्ट्वा रामाय निवेदयतु वानरः ॥१९॥
इत्येवं चिन्तयन्सीतासमीपमगमद्द्रुतम् ।
नूपुराणां किङ्किणीनां श्रुत्वा शिञ्जितमङ्गना ॥२०॥
सीता भीता लीयमाना स्वात्मन्येव सुमध्यमा ।
अधोमुख्यश्रुनयना स्थिता रामार्पितान्तरा ॥२१॥
रावणोऽपि तदा सीतामालोक्याह सुमध्यमे ।
मां दृष्ट्वा किं वृथा सुभ्रु स्वात्मन्येव विलीयसे ॥२२॥
रामो वनचराणां हि मध्ये तिष्ठति सानुजः ।
कदाचिद्दृश्यते कैश्चित्कदाचिन्नैव दृश्यते ॥२३॥
मया तु बहुधा लोकाः प्रेषितास्तस्य दर्शने ।
न पश्यन्ति प्रयत्नेन वीक्षमाणाः समन्ततः ॥२४॥
किं करिष्यसि रामेण निःस्पृहेण सदा त्वयि ।
त्वया सदाऽऽलिङ्गितोऽपि समीपस्थोऽपि सर्वदा २५

सोचकर कि 'यह क्या गड़बड़ है' वृक्षके पत्तोंमें छिपे-छिपे देखा कि स्त्रियोंसे घिरा हुआ रावण उसी ओर आ रहा है ॥ १३ ॥ उसके दश मुख, बीस भुजा और कज्जल-समूहके समान काले शरीरको देखकर हनुमान्‌जीको बड़ा विस्मय हुआ और वे पत्तोंमें छिप गये ॥१४॥

रावणको सदा यही चिन्ता रहती थी कि 'किस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीके हाथसे जल्दी-से-जल्दी मेरा मरण हो, न जाने क्या कारण है कि वे अभीतक सीताके लिये भी नहीं आये ?' इस प्रकार निरन्तर भगवान् रामका ही हृदयमें स्मरण रहनेसे राक्षसराज रावणने उसी दिन शेषरात्रिमें स्वप्नमें देखा कि रामका सन्देश लेकर आया हुआ कोई स्वेच्छारूपधारी वानर सूक्ष्म शरीरसे वृक्षकी शाखापर बैठा हुआ देख रहा है ॥ १५–१७ ॥ इस अद्भुत स्वप्नको देखकर उसने अपने मनमें सोचा–'कदाचित् यह स्वप्न ठीक ही हो; अतः अब अशोकवनमें चलकर मुझे एक काम करना चाहिये—मैं जानकीजीको अपने वाग्बाणोंसे वेधकर अत्यन्त दुःखी करूँ जिससे वह वानर यह सब देखकर रामचन्द्रजीको सुनावे' ॥ १८-१९ ॥

यह सोचकर वह तुरन्त सीताजीके पास चला । (उसके साथकी स्त्रियोंके) नूपुर (पायजेब) और किंकिणी (करधनी) आदिकी झनकार सुनकर सुन्दर कटिवाली कल्याणी सीताजी घबड़ाकर अपने शरीरको सिकोड़ नीचेको मुख करके बैठ गयीं । उस समय उनके नेत्रोंमें जल भर आया और हृदय भगवान् राममें लग गया ॥ २०-२१ ॥ सीताजीको देखकर रावण बोला—"हे कमनीय कटि और सुन्दर भृकुटिवाली ! तू मुझे देखकर वृथा क्यों इतनी सिकुड़ती है ? ॥ २२ ॥ अब, राम तो अपने भाईके साथ वनचरोंमें रहता है, वह कभी तो किसीको दिखायी देता है और कभी दिखायी भी नहीं देता ॥ २३ ॥ मैंने तो उसे देखनेके लिये कितने ही लोग भेजे, किन्तु बहुत प्रयत्नपूर्वक सब ओर देखनेपर भी वह उनको कहीं दिखायी नहीं दिया ॥ २४ ॥ अब रामसे तुझे क्या काम है ? वह तो तुझसे सदा उदासीन रहता है । सदा तेरे पास रहते हुए और सदा तुझसे आलिंगित होते हुए भी उसके हृदयमें अभीतक तेरे प्रति स्नेह

हृदयेऽस्य न च स्नेहस्त्वयि रामस्य जायते ।
त्वत्कृतान्सर्वभोगांश्च त्वद्गुणानपि राघवः ॥२६॥
भुञ्जानोऽपि न जानाति कृतघ्नो निर्गुणोऽधमः ।
त्वमानीता मया साध्वी दुःखशोकसमाकुला॥२७॥
इदानीमपि नायाति भक्तिहीनः कथं व्रजेत् ।
निःसत्त्वो निर्ममो मानी मूढः पण्डितमानवान् ।२८।
नराधमं त्वद्विमुखं किं करिष्यसि भामिनि ।
त्वय्यतीव समासक्तं मां भजस्वासुरोत्तमम् ॥२९॥
देवगन्धर्वनागानां यक्षकिन्नरयोषिताम् ।
भविष्यसि नियोक्त्री त्वं यदि मां प्रतिपद्यसे ॥३०॥

नहीं हुआ । रामको तुझसे जितने भोग प्राप्त हुए हैं और तुझमें जितने गुण हैं उन सबको भोगकर भी वह कृतघ्न, गुणहीन और अधम कभी उनकी याद भी नहीं करता । तुझ-जैसी सतीको दुःख और शोकसे व्याकुल देखकर ही मैं ले आया था ॥ २५–२७ ॥ और देख, वह तो अभीतक नहीं आया; जब उसे तुझमें प्रेम ही नहीं है तो आता कैसे ? वह सर्वथा असमर्थ, ममताशून्य, अभिमानी, मूर्ख और अपनेको बड़ा बुद्धिमान् माननेवाला है ॥ २८ ॥ हे भामिनि ! अपनेसे उदासीन उस नराधमसे तुझे क्या लेना है ?* देख, मैं राक्षस-श्रेष्ठ तुझसे अत्यन्त प्रेम करता हूँ, अतः तू मुझे ही अंगीकार कर ॥ २९ ॥ यदि तू मेरे अधीन रहेगी तो देव, गन्धर्व, नाग, यक्ष और किन्नर आदिकी स्त्रियोंका शासन करेगी" ॥ ३० ॥

रावणस्य वचः श्रुत्वा सीताऽमर्षसमन्विता ।
उवाचाधोमुखी भूत्वा निधाय तृणमन्तरे ॥३१॥
राघवाद्भिन्यता नूनं भिक्षुरूपं त्वया धृतम् ।
रहिते राघवाभ्यां त्वं शुनीव हविरध्वरे ॥३२॥
हृतवानसि मां नीच तत्फलं प्राप्स्यसेऽचिरात् ।
यदा रामशराघातविदारितवपुर्भवान् ॥३३॥

रावणके ये वचन सुनकर सीताजीको बड़ा क्रोध हुआ । उन्होंने शिर नीचा कर लिया और बीचमें तृण रखकर † कहा—॥३१॥ "अरे नीच ! इसमें सन्देह नहीं, श्रीरघुनाथजीसे डरकर ही तूने भिक्षुका रूप धारण किया था, और उन दोनों रघुश्रेष्ठोंकी अनुपस्थितिमें ही, कुत्ता जिस प्रकार सूनी यज्ञशालासे हवि ले जाता है उसी प्रकार तू मुझे हर लाया है; सो तू बहुत शीघ्र ही उसका फल पायेगा । जिस समय भगवान् रामकी बाणवर्षासे विदीर्ण

* यहाँ २३ से २८ श्लोकतक रावणने गूढभावसे निन्दाके मिषसे भगवान् रामकी स्तुति की है । इनका तात्पर्य इस प्रकार है—

"राम अपने भाईके सहित वनवासी तपस्वियोंमें रहते हैं । उनमेंसे वे (ध्यान-धारणादि द्वारा) कभी किसी-को दिखायी देते हैं और कभी (ध्यान-धारणासे भी) दिखायी नहीं देते ॥ २३ ॥ मैंने तो उनका साक्षात्कार करनेके लिये कई बार अपनी इन्द्रियोंको उधर लगाया है, किन्तु बहुत कुछ प्रयत्न करनेपर भी मुझे उनका साक्षात्कार नहीं हुआ ॥ २४ ॥ (तुम साक्षात् योगमाया हो, परब्रह्मरूप रामके साथ तुम्हारा सदा सहवास है और उसके साथ तादात्म्य भी है किन्तु) फिर भी वह सर्वदा निःस्पृह और असंग है । उसे तुम्हारी परवा नहीं है ॥२५॥ निःस्पृह और असंग होनेसे परब्रह्मरूप रामको तुम, मायारूपिणीसे बन्धन भी नहीं होता और न वह तुम्हारे (मायाके) गुण या भोगोंमें ही फँसता है ॥ २६ ॥ सांख्यवादीगण (उपचारसे) उसे भोक्ता भी कहते हैं तथापि उन्हींके मतानुसार 'ब्रह्मस्थेनां भुक्तभोगामजोऽन्यः' इस श्रुतिके अनुसार वह 'मैं भोक्ता हूँ' ऐसा अभिमान नहीं करता । इसी प्रकार वह कृतघ्न (किये हुए कर्मोंका नाश करनेवाला) निर्गुण (सत्त्व, रज, तमसे रहित) और अधम (न धमति शब्दविषयो भवति—जो शब्दका विषय न हो अर्थात् अशब्द) भी है ॥ २७ ॥ उसकी मायापर प्रीति नहीं है इसलिये वह अभी-तक नहीं आया । इससे रावण अपनेको लक्ष्य करके कहता है कि वह अब भी मेरे हृदयमें नहीं आता क्योंकि भक्तिहीन होनेसे मेरा हृदय उसतक कैसे पहुँच सकता है ? वह निर्गुण, ममतारहित, अमानी, मूढ (मू=शिवः+ऊः =ब्रह्मा ताभ्याम् ऊढः—ध्यानविषयत्वेनीतः अर्थात् शिव और ब्रह्माके ध्येय) और विद्वानोंमें सम्मानित है ॥ २८ ॥ नराधम (नराः अधमाः यस्माद् स नराधमः—मनुष्य जिससे अधम हैं अर्थात् पुरुषोत्तम) विमुख (माया-पराङ्मुख) ।

† पतिव्रता स्त्रीको पर-पुरुषसे प्रत्यक्ष वार्तालाप नहीं करना चाहिये । यदि कोई अनिवार्य प्रसंग आ पड़े तो भी कोई जड वस्तु ही बीचमें रख लेनी चाहिये । इस नियमके अनुसार ही सीताजीने बीचमें तृण रखा था ।

ज्ञास्यसेऽमानुषं रामं गमिष्यसि यमान्तिकम्।
समुद्रं शोषयित्वा वा शरैर्बद्ध्वाऽथ वारिधिम् ।३४।
हन्तुं त्वां समरे रामो लक्ष्मणेन समन्वितः ।
आगमिष्यत्यसन्देहो द्रक्ष्यसे राक्षसाधम ॥३५॥
त्वां सपुत्रं सहबलं हत्वा नेष्यति मां पुरम्।
श्रुत्वा रक्षःपतिः क्रुद्धो जानक्याः परुषाक्षरम्॥३६॥
वाक्यं क्रोधसमाविष्टः खड्गमुद्यम्य सत्वरः ।
हन्तुं जनकराजस्य तनयां ताम्रलोचनः ॥३७॥
मन्दोदरी निवार्याह पतिं पतिहिते रता ।
त्यजैनां मानुषीं दीनां दुःखितां कृपणां कृशाम् ३८
देवगन्धर्वनागानां बह्वयः सन्ति वराङ्गनाः ।
त्वामेव वरयन्त्युच्चैर्मदमत्तविलोचनाः ॥३९॥
ततोऽब्रवीद्दशग्रीवो राक्षसीर्विकृताननाः ।
यथा मे वशगा सीता भविष्यति सकामना ।
तथा यतध्वं त्वरितं तर्जनादरणादिभिः ॥४०॥
द्विमासाभ्यन्तरे सीता यदि मे वशगा भवेत् ।
तदा सर्वसुखोपेता राज्यं भोक्ष्यति सा मया ॥४१॥
यदि मासद्वयादूर्ध्वं मच्छय्यां नाभिनन्दति ।
तदा मे प्रातराशाय हत्वा कुरुत मानुषीम् ॥४२॥
इत्युक्त्वा प्रययौ स्त्रीभी रावणोऽन्तःपुरालयम् ।
राक्षस्यो जानकीमेत्य भीषयन्त्यः स्वतर्जनैः॥४३॥
तत्रैका जानकीमाह यौवनं ते वृथा गतम् ।
रावणेन समासाद्य सफलं तु भविष्यति ॥४४॥
अपरा चाह कोपेन किं विलम्बेन जानकि ।
इदानीं छेद्यतामङ्गं विभज्य च पृथक् पृथक् ॥४५॥
अन्या तु खड्गमुद्यम्य जानकीं हन्तुमुद्यता ।
अन्या करालवदना विदार्यास्यमभीषयत् ॥४६॥

होकर तू यमलोकको जायगा उस समय ही तू अमानव रामको जानेगा । अरे राक्षसाधम ! इसमें सन्देह नहीं, तू शीघ्र ही देखेगा कि तुझे युद्धमें मारनेके लिये भाई लक्ष्मणसहित भगवान् राम समुद्रको सुखाकर अथवा उसपर बाणोंका पुल बनाकर यहाँ आयेंगे ॥ २२-३५ ॥ और तुझे पुत्र और सेनाके सहित मारकर मुझे अयोध्यापुरी ले जायेंगे ।"

जानकीजीके ये कठोर वचन सुनकर राक्षसराज रावणको अत्यन्त क्रोध हुआ और वह क्रोधसे नेत्र लाल कर तुरन्त ही खड्ग खींचकर जनकनन्दिनी सीताजीको मारनेपर उतारू हो गया ॥ ३६-३७ ॥ तब, पतिके हितमें तत्पर रहनेवाली महारानी मन्दोदरीने अपने पतिको रोकते हुए कहा—"पतिदेव ! इस दीना, क्षीणा, दुःखिया एवं कातर मानवीको छोड़ दीजिये ॥ ३८॥ आपके लिये तो देवता, गन्धर्व और नागादिकोंकी ऐसी अनेकों मदमत्तनयना मनोहारिणी महिलाएँ हैं जो बड़े चावसे आपहीको वरण करना चाहती हैं" ॥ ३९ ॥

तब रावणने बहुत-सी विकराल वदनवाली राक्षसियों-से कहा—"हे निशाचरियो ! भय अथवा आदर जिस उपायसे भी सीता कामनायुक्त होकर शीघ्र ही मेरे अधीन हो जाय, तुम सब लोग वही करो ॥ ४० ॥ यदि दो महीनेके भीतर वह मेरे वशीभूत हो जायगी तो सर्व-सुख-सम्पन्न होकर मेरे साथ राज्य भोगेगी ॥४१॥ और यदि दो महीनेतक भी यह मेरी शय्यापर आना स्वीकार न करे तो इस मानवीको मारकर मेरा प्रातः-कालका कलेवा बना देना" ॥ ४२ ॥

ऐसा कह रावण अपनी स्त्रियोंके साथ अन्तःपुरको चला गया और राक्षसियाँ सीताजीके पास आकर उन्हें अपने-अपने उपायोंसे भयभीत करने लगीं ॥४३॥ उनमेंसे एक बोली—"जानकि ! तेरा यौवन वृथा ही गया, यदि तू रावणका सहवास करे तो यह सफल हो जाय" ॥ ४४ ॥ दूसरीने क्रोध दिखाते हुए कहा—"जानकि ! अब (हमारी बात माननेमें) देर क्यों करती है ?" इसी प्रकार कोई खड्ग निकालकर जानकीजीको मारनेके लिये तैयार होकर बोली कि "इसके अंगोंको काट-कर अभी अलग-अलग कर डालो ।" तथा कोई भयंकर मुख-वाली राक्षसी अपना मुख फाड़कर डराने लगी ॥४५-४६॥

एवं तां भीषयन्तीस्ता राक्षसीर्विकृताननाः ।
निवार्य त्रिजटा वृद्धा राक्षसी वाक्यमब्रवीत् ॥४७॥
शृणुध्वं दुष्टराक्षस्यो मद्वाक्यं वो हितं भवेत् ॥४८॥
न भीषयध्वं रुदतीं नमस्कुरुत जानकीम् ।
इदानीमेव मे स्वप्ने रामः कमललोचनः ॥४९॥
आरुह्यैरावतं शुभ्रं लक्ष्मणेन समागतः ।
दग्ध्वा लङ्कापुरीं सर्वां हत्वा रावणमाहवे ॥५०॥
आरोप्य जानकीं स्वाङ्के स्थितो दृष्टोऽगमूर्धनि ।
रावणो गोमयह्रदे तैलाभ्यक्तो दिगम्बरः ॥५१॥
अगाहत्पुत्रपौत्रैश्च कृत्वा वदनमालिकाम् ।
विभीषणस्तु रामस्य सन्निधौ हृष्टमानसः ॥५२॥
सेवां करोति रामस्य पादयोर्भक्तिसंयुतः ।
सर्वथा रावणं रामो हत्वा सकुलमञ्जसा ॥५३॥
विभीषणायाधिपत्यं दत्त्वा सीतां शुभाननाम् ।
अङ्के निधाय स्वपुरीं गमिष्यति न संशयः ॥५४॥

तत्र, सीताजीको इस प्रकार डराती हुई उन विकृतवदना राक्षसियोंको रोककर त्रिजटा नामकी एक वृद्धा राक्षसी बोली—॥ ४७ ॥ "अरी दुष्टा राक्षसियो ! मेरी बात सुनो, इसीसे तुम्हारा हित होगा ॥ ४८ ॥ तुम इन रोती-बिलखती जानकीजीको मत डराओ, बल्कि इन्हें नमस्कार करो । मैंने अभी-अभी स्वप्नमें देखा है कि कमललोचन भगवान् राम लक्ष्मणके साथ श्वेत ऐरावत हाथीपर चढ़कर आये हैं । और मैंने उन्हें सम्पूर्ण लंकापुरीको जलाकर तथा रावणको युद्धमें मारकर सीताजीको अपनी गोदमें लिये पर्वत-शिखर पर बैठे हुए देखा है । रावण गलेमें मुण्डमाला पहने शरीरमें तैल लगाये नंगा होकर अपने पुत्र-पौत्रोंके साथ गोबरके कुण्डमें डुबकी लगा रहा है और विभीषण प्रसन्नचित्तसे रघुनाथजीके पास बैठा हुआ अति भक्ति-पूर्वक उनकी चरण-सेवा कर रहा है । इससे निश्चय होता है कि रामचन्द्रजी अनायास ही रावणका कुल-सहित नाश कर विभीषणको लंकाका राज्य देंगे और सुमुखी सीताको गोदमें बिठाकर निस्सन्देह अपने नगरको चले जायेंगे" ॥ ४९–५४ ॥

त्रिजटाया वचः श्रुत्वा भीतास्ता राक्षसस्त्रियः ।
तूष्णीमासंस्तत्र तत्र निद्रावशमुपागताः ॥५५॥
तर्जिता राक्षसीभिः सा सीता भीताऽतिविह्वला ।
त्रातारं नाधिगच्छन्ती दुःखेन परिमूर्च्छिता ॥५६॥
अश्रुभिः पूर्णनयना चिन्तयन्तीदमब्रवीत् ।
प्रभाते भक्षयिष्यन्ति राक्षस्यो मां न संशयः ।
इदानीमेव मरणं केनोपायेन मे भवेत् ॥५७॥
एवं सुदुःखेन परिप्लुता सा
विमुक्तकण्ठं रुदती चिराय ।
आलम्ब्य शाखां कृतनिश्चया मृतौ
न जानती काञ्चिदुपायमङ्गना ॥५८॥

त्रिजटाके ये वचन सुनकर वे राक्षसियाँ डर गयीं । वे चुपचाप जहाँ-तहाँ बैठ गयीं और कुछ देर पीछे उन्हें नींद आ गयी ॥ ५५ ॥ राक्षसियोंके डरानेसे सीताजी अत्यन्त भयभीत और विह्वल हो गयीं और अपना कोई सहायक न देखकर वे दुःखसे मूर्छित हो गयीं ॥ ५६ ॥ फिर आँखोंमें आँसू भरकर अति चिन्ताकुल होकर इसप्रकार कहने लगीं—"इसमें सन्देह नहीं प्रातःकाल होते ही राक्षसियाँ मुझे खा जायँगी । ऐसा कौन उपाय है जिससे मुझे अभी मौत आ जाय" ॥५७॥ इस प्रकार मौतका निश्चय करके भी उसका कोई साधन न देखकर कल्याणी सीता वृक्षकी शाखा पकड़े हुए अत्यन्त दुःखसे भरकर बहुत देरतक फूट-फूटकर रोती रहीं ॥ ॥ ५८ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे
सुन्दरकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीय सर्ग

जानकीजीसे भेंट, वाटिका-विध्वंस और ब्रह्मपाश-बन्धन।

श्रीमहादेव उवाच

उद्बन्धनेन वा मोक्ष्ये शरीरं राघवं विना ।
जीवितेन फलं किं स्यान्मम रक्षोऽधिमध्यतः ॥१॥
दीर्घा वेणी ममात्यर्थमुद्बन्धाय भविष्यति ।
एवं निश्चितबुद्धिं तां मरणायाथ जानकीम् ॥ २ ॥
विलोक्य हनुमान्किञ्चिद्विचार्यैतदभाषत ।
शनैः शनैः सूक्ष्मरूपो जानक्याः श्रोत्रगं वचः ॥३॥
इक्ष्वाकुवंशसम्भूतो राजा दशरथो महान् ।
अयोध्याधिपतिस्तस्य चत्वारो लोकविश्रुताः ॥४॥
पुत्रा देवसमाः सर्वे लक्षणैरुपलक्षिताः ।
रामश्च लक्ष्मणश्चैव भरतश्चैव शत्रुहा ॥ ५ ॥
ज्येष्ठो रामः पितुर्वाक्याद्दण्डकारण्यमागतः ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया भार्यया सह ॥ ६ ॥
उवास गौतमीतीरे पञ्चवट्यां महामनाः ।
तत्र नीता महाभागा सीता जनकनन्दिनी ॥ ७ ॥
रहिते रामचन्द्रेण रावणेन दुरात्मना ।
ततो रामोऽतिदुःखार्तो मार्गमाणोऽथ जानकीम् ।८।
जटायुषं पक्षिराजमपश्यत्पतितं भुवि ।
तस्मै दत्त्वा दिवं शीघ्रमृष्यमूकमुपागमत् ॥ ९ ॥
सुग्रीवेण कृता मैत्री रामस्य विदितात्मनः ।
तद्भार्याहारिणं हत्वा वालिनं रघुनन्दनः ॥१०॥
राज्येऽभिषिच्य सुग्रीवं मित्रकार्यं चकार सः ।
सुग्रीवस्तु समानाय्य वानरान्वानरप्रभुः ॥११॥
प्रेषयामास परितो वानरान्परिमार्गणे ।
सीतायास्तत्र चैकोऽहं सुग्रीवसचिवो हरिः ॥१२॥
सम्पातिवचनाच्छीघ्रमुल्लङ्घ्य शतयोजनम् ।
समुद्रं नगरीं लङ्कां विचिन्वन् जानकीं शुभाम्॥१३॥
शनैरशोकवनिकां विचिन्वन् शिंशपातरुम् ।

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! इस प्रकार रोते-रोते सीताजीने सोचा—"अच्छा तो, मैं फाँसी लगाकर ही अपना शरीर क्यों न छोड़ दूँ ? इन राक्षसियोंके बीचमें रहकर रघुनाथजीके बिना जीनेसे लाभ ही क्या है ? ॥ १ ॥ फाँसी लगानेके लिये मेरी लम्बी वेणी पर्याप्त होगी ।" जानकीजीको इस प्रकार मरनेका निश्चय करती देख सूक्ष्मरूपधारी श्रीहनुमान्‌जी हृदयमें कुछ विचारकर उनके कानोंमें पड़नेयोग्य धीमी वाणीसे शनैः-शनैः इस प्रकार कहने लगे ॥ २–३ ॥ "इक्ष्वाकु-वंशमें उत्पन्न हुए अयोध्यापति महाराज दशरथ बड़े प्रतापी थे। उनके त्रिलोकीमें विख्यात चार पुत्र हुए । वे राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न चारों ही देवताओंके समान शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न हैं ॥ ४–५ ॥ उनमेंसे बड़े भाई राम भ्राता लक्ष्मण और भार्या सीताके सहित अपने पिताकी आज्ञासे दण्डकारण्यमें आये थे । वे महामना वहाँ गौतमी नदीके तीरपर पञ्चवटी आश्रममें रहते थे । उस आश्रमसे श्रीरामचन्द्रजीकी अनुपस्थिति-में दुरात्मा रावण महाभागा जनकनन्दिनी सीताजीको ले गया । तब अति शोकाकुल भगवान् रामने जानकी-जीको इधर-उधर ढूँढ़ते हुए पृथिवीपर पड़े पक्षिराज जटायुको देखा । उसे तुरन्त ही दिव्यधाम पहुँचा-कर वे ऋष्यमूक-पर्वतपर आये ॥ ६–९ ॥ वहाँ आकर आत्मदर्शी भगवान् रामने सुग्रीवसे मित्रता की और उसकी स्त्रीका हरण करनेवाले दुष्ट वालीको मारकर उसे राज्यपदपर अभिषिक्त किया । इस प्रकार श्री-रघुनन्दनने मित्रका कार्य सिद्ध किया । वानरराज सुग्रीवने भी समस्त वानरोंको बुलाकर सब ओर सीताजीकी खोज करनेके लिये भेजा । उन्हींमेंसे एक मैं भी सुग्रीवका मन्त्री वानर हूँ । मैं सम्पातिके कथनानुसार सौ योजन समुद्र लाँघकर तुरन्त लङ्कापुरीमें आया और यहाँ सर्वत्र शुभलक्षणा सीताजीको ढूँढ़ा । शनैः-शनैः अशोकवाटिकामें ढूँढ़ते-ढूँढ़ते मैंने यह शिंशपा वृक्ष देखा और यहाँ रामचन्द्रजीकी महारानी देवी

अद्राक्षं जानकीमत्र शोचन्तीं दुःखसम्प्लुताम् ।१४।
रामस्य महिषीं देवीं कृतकृत्योऽहमागतः ।
इत्युक्त्वोपररामाथ मारुतिर्बुद्धिमत्तरः ॥१५॥

जानकीजीको अति क्लेशसे शोक करते पाया । इनके दर्शनसे मेरा यहाँ आना सफल हो गया ।" ऐसा कहकर परम बुद्धिमान् श्रीहनुमान्‌जी मौन हो गये ॥ १०–१५ ॥

सीता क्रमेण तत्सर्वं श्रुत्वा विस्मयमाययौ ।
किमिदं मे श्रुतं व्योम्नि वायुना समुदीरितम् ॥१६॥
स्वप्नो वा मे मनोभ्रान्तिर्यदि वा सत्यमेव तत् ।
निद्रा मे नास्ति दुःखेन जानाम्येतत्कुतो भ्रमः॥१७।
येन मे कर्णपीयूषं वचनं समुदीरितम् ।
स दृश्यतां महाभागः प्रियवादी ममाग्रतः ॥१८॥

क्रमशः ये सब बातें सुनकर सीताजीको बड़ा विस्मय हुआ और वे कहने लगीं, "मैंने जो आकाशमें शब्द सुना है वह क्या वायुका उच्चारण किया हुआ है ? ॥१६॥ अथवा स्वप्न या मेरे मनकी भ्रान्ति है ? अथवा यह सब सत्य ही तो नहीं है, क्योंकि दुःखके कारण नींद तो मुझे आती नहीं, (फिर स्वप्न कैसे हो सकता है ?) और मैं प्रत्यक्ष सुन रही हूँ इसलिये यह भ्रम भी कैसे हो सकता है ? (अतः निश्चय ही यह सब यथार्थ है) ॥ १७ ॥ सुतरां, जिसने मेरे कानोंको अमृतके समान प्रिय लगनेवाले ये वचन कहे हैं वह प्रियभाषी महाभाग मेरे सामने प्रकट हों" ॥ १८ ॥

श्रुत्वा तज्जानकीवाक्यं हनुमान्पत्रखण्डतः ।
अवतीर्य शनैः सीतापुरतः समवस्थितः ॥१९॥
कलविङ्कग्रमाणाङ्गो रक्तास्यः पीतवानरः ।
ननाम शनकैः सीतां प्राञ्जलिः पुरतः स्थितः ॥२०॥
दृष्ट्वा तं जानकी भीता रावणोऽयमुपागतः ।
मां मोहयितुमायातो मायया वानराकृतिः ॥२१॥
इत्येवं चिन्तयित्वा सा तूष्णीमासीदधोमुखी ।
पुनरप्याह तां सीतां देवि यत्त्वं विशङ्कसे ॥२२॥
नाहं तथाविधो मातस्त्यज शङ्कां मयि स्थिताम् ।
दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्य परमात्मनः ॥२३॥
सचिवोऽहं हरीन्द्रस्य सुग्रीवस्य शुभप्रदे ।
वायोः पुत्रोऽहमखिलप्राणभूतस्य शोभने ॥२४॥

जानकीजीके ये वचन सुनकर हनुमान्‌जी शनैः-शनैः उस वृक्षके पत्र-भागसे उतरकर सीताजीके सामने खड़े हो गये ॥ १९ ॥ उस समय उन्होंने अरुण-वदन, पीतवर्ण और कलविंक (चटक) पक्षीके बराबर आकारवाले वानरके रूपसे धीरेसे सामने आकर सीताजीको हाथ जोड़कर प्रणाम किया ॥ २० ॥ उसे देखकर जानकीजीको यह भय हुआ कि मुझे फँसानेके लिये मायासे वानररूप धारण कर यह रावण ही आया है ॥२१॥ यह सोचकर वे चुपचाप नीचेको मुख किये बैठी रहीं । तब हनुमान्‌जीने सीताजीसे फिर कहा— "देवि ! आप जैसी आशङ्का कर रही हैं मैं वह नहीं हूँ । हे मातः ! मेरे विषयमें आपको जो शङ्का हो रही है उसे दूर करें । हे शुभप्रदे ! मैं तो कोसलाधिपति परमात्मा रामका दास और वानरराज सुग्रीवका मन्त्री हूँ तथा हे शोभने ! सम्पूर्ण जगत्‌के प्राणस्वरूप पवनदेवका मैं पुत्र हूँ" ॥ २२–२४॥

तच्छ्रुत्वा जानकी प्राह हनूमन्तं कृताञ्जलिम् ।
वानराणां मनुष्याणां सङ्गतिर्घटते कथम् ॥२५॥
यथा त्वं रामचन्द्रस्य दासोऽहमिति भाषसे ।
तामाह मारुतिः प्रीतो जानकीं पुरतः स्थितः ॥२६॥

यह सुनकर श्रीजानकीजीने हाथ बाँधे खड़े हुए हनुमान्‌जीसे कहा—"तुम जो कहते हो कि मैं श्रीरामचन्द्रजीका दास हूँ, सो भला वानर और मनुष्योंकी मित्रता कैसे हो सकती है ?" तब सामने खड़े हुए हनुमान्‌जीने प्रसन्न होकर जानकीजीसे कहा ॥ २५–२६ ॥ "शबरीकी प्रेरणासे

ऋष्यमूकमगाद्रामः शबर्या नोदितः सुधीः ।
सुग्रीवो ऋष्यमूकस्थो दृष्टवान् रामलक्ष्मणौ ॥२७॥
भीतो मां प्रेषयामास ज्ञातुं रामस्य हृद्गतम् ।
ब्रह्मचारिवपुर्धृत्वा गतोऽहं रामसन्निधिम् ॥२८॥
ज्ञात्वा रामस्य सद्भावं स्कन्धोपरि निधाय तौ ।
नीत्वा सुग्रीवसामीप्यं सख्यं चाकरवं तयोः ॥२९॥
सुग्रीवस्य हृता भार्या वालिना तं रघूत्तमः ।
जघानैकेन बाणेन ततो राज्येऽभ्यषेचयत् ॥३०॥
सुग्रीवं वानराणां स प्रेषयामास वानरान् ।
दिग्भ्यो महाबलान्वीरान् भवत्याः परिमार्गणे ।३१।
गच्छन्तं राघवो दृष्ट्वा मामभाषत सादरम् ॥३२॥
त्वयि कार्यमशेषं मे स्थितं मारुतनन्दन ।
ब्रूहि मे कुशलं सर्वं सीतायै लक्ष्मणस्य च ॥३३॥
अङ्गुलीयकमेतन्मे परिज्ञानार्थमुत्तमम् ।
सीतायै दीयतां साधु मन्नामाक्षरमुद्रितम् ॥३४॥
इत्युक्त्वा प्रददौ मह्यं कराग्रादङ्गुलीयकम् ।
प्रयत्नेन मयानीतं देवि पश्याङ्गुलीयकम् ॥३५॥
इत्युक्त्वा प्रददौ देव्यै मुद्रिकां मारुतात्मजः ।
नमस्कृत्यः स्थितो दूराद्बद्धाञ्जलिपुटो हरिः ॥३६॥
दृष्ट्वा सीता प्रमुदिता रामनामाङ्कितां तदा ।
मुद्रिकां शिरसा धृत्वा स्रवदानन्दनेत्रजा ॥३७॥
कपे मे प्राणदाता त्वं बुद्धिमानसि राघवे ।
भक्तोऽसि प्रियकारी त्वं विश्वासोऽस्ति तवैव हि३८
नो चेन्मत्सन्निधिं चान्यं पुरुषं प्रेषयेत्कथम् ।
हनूमन्दृष्टमखिलं मम दुःखादिकं त्वया ॥३९॥
सर्वं कथय रामाय यथा मे जायते दया ।
मासद्वयावधि प्राणाः स्थास्यन्ति मम सत्तम॥४०॥

परम बुद्धिमान् भगवान् राम ऋष्यमूक पर्वतपर आये। उस पर्वतपर बैठे हुए सुग्रीवने जब (दूरहीसे) राम और लक्ष्मणको आते देखा तो मनमें भय मानकर मुझे उनका आशय जाननेके लिये भेजा। तब मैं ब्रह्मचारीका वेष बनाकर रामजीके पास आया ॥ २७–२८ ॥ और उनका शुद्ध भाव जानकर उन्हें कन्धेपर चढ़ा सुग्रीवके पास ले गया तथा (राम और सुग्रीव) दोनोंकी मित्रता करा दी ॥ २९ ॥ सुग्रीवकी पत्नीको वालीने छीन लिया था। रघुनाथजी-ने उसे एक ही बाणसे मारकर सुग्रीवको वानरोंके राज्यपदपर अभिषिक्त कर दिया। तब सुग्रीवने आपकी खोजके लिये बड़े-बड़े वीर और पराक्रमी वानरोंको दिशा-विदिशाओंमें भेजा ॥ ३०–३१ ॥ उस समय मुझे चलता देख श्रीरघुनाथजीने मुझसे आदरपूर्वक कहा ॥ ३२ ॥ 'हे पवननन्दन ! मेरा सब काम तुम्हारे ऊपर निर्भर है। तुम सीताजीसे मेरी और लक्ष्मणकी सब कुशल कहना ॥ ३३ ॥ तथा अपनी पहचानके लिये मेरी यह उत्तम अँगूठी जिसपर मेरे नामके अक्षर खुदे हुए हैं, सीताजीको अति सावधानीसे दे देना' ॥ ३४ ॥ ऐसा कहकर उन्होंने अपनी अँगुलीसे उतारकर वह अँगूठी मुझे दी। मैं उसे बड़ी सावधानीसे लाया हूँ। देवि ! आप यह अँगूठी देखिये" ॥ ३५ ॥ ऐसा कह हनुमान्-जीने वह अँगूठी देवी जानकीजीको दे दी और नमस्कार कर हाथ जोड़े हुए दूर खड़े हो गये ॥ ३६ ॥ उस रामनामाङ्कित मुद्रिकाको देखकर सीताजी अति आनन्दित हुईं और उसे शिरसे लगाकर नेत्रोंसे आनन्दाश्रु बहाने लगीं ॥ ३७ ॥

तदनन्तर वे कहने लगीं—"कपिवर ! तुम मेरे प्राणदाता हो। तुम बड़े ही बुद्धिमान् और रघुनाथ-जीके भक्त तथा प्रियकारी हो। मुझे निश्चय है उनको भी तुम्हारा ही पूर्ण विश्वास है ॥ ३८ ॥ यदि ऐसा न होता तो तुम पर-पुरुषको वे मेरे पास क्यों भेजते ? हनुमन् ! मेरी सारी आपदाएँ तुमने देख ही ली हैं ॥ ३९ ॥ रामको ये सब बातें सुना देना जिससे उन्हें मुझपर दया

नागमिष्यति चेद्रामो भक्षयिष्यति मां खलः।
अतः शीघ्रं कपीन्द्रेण सुग्रीवेण समन्वितः ॥४१॥
वानरानीकपैः सार्धं हत्वा रावणमाहवे।
सपुत्रं सबलं रामो यदि मां मोचयेत्प्रभुः ॥४२॥
तत्तस्य सदृशं वीर्यं वीर वर्णय वर्णितम्।
यथा मां तारयेद्रामो हत्वा शीघ्रं दशाननम् ॥४३॥
तथा यतस्व हनुमन्वाचा धर्ममवाप्नुहि।

उत्पन्न हो। हे साधुश्रेष्ठ! अब मेरे प्राण दो ही मास और रहेंगे ॥ ४० ॥ यदि इस बीचमें रघुनाथजी न आये तो यह दुष्ट मुझे खा जायगा। अतः यदि भगवान् राम वानरराज सुग्रीवके सहित अन्य वानर-यूथपोंको लेकर तुरन्त ही रावणको पुत्र और सेनाके सहित संग्राममें मारकर मुझे छुड़ायेंगे तो ही उनका यह पुरुषार्थ ठीक होगा। और तभी तुम इस वर्णन किये पुरुषार्थका वर्णन करना। हे हनुमन्! तुम भी ऐसी युक्तिसे उनसे सब बातें कहना जिससे वे शीघ्र ही रावणको मारकर मेरा उद्धार करें। ऐसा करके तुम भी वाचिक पुण्य प्राप्त करो।"

हनूमानपि तामाह देवि दृष्टो यथा मया ॥४४॥
रामः सलक्ष्मणः शीघ्रमागमिष्यति सायुधः।
सुग्रीवेण ससैन्येन हत्वा दशमुखं बलात् ॥४५॥
समानेष्यति देवि त्वामयोध्यां नात्र संशयः।

तब हनुमान्‌जीने उनसे कहा—"देवि! मैंने जैसा कुछ देखा है उससे तो यही प्रतीत होता है कि लक्ष्मणके सहित श्रीरामचन्द्रजी शीघ्र ही अस्त्र-शस्त्र लेकर सेनायुक्त सुग्रीवके सहित आयेंगे और रावणको बलपूर्वक मारकर तुम्हें अयोध्या ले जायेंगे। देवि! इसमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं है।"

तमाह जानकी रामः कथं वारिधिमाततम् ॥४६॥
तीर्त्वाऽऽयास्यत्यमेयात्मा वानरानीकपैः सह।
हनूमानाह मे स्कन्धावारुह्य पुरुषर्षभौ ॥४७॥
आयास्यतः ससैन्यश्च सुग्रीवो वानरेश्वरः।
विहायसा क्षणेनैव तीर्त्वा वारिधिमाततम् ॥४८॥
निर्दहिष्यति रक्षौघांस्त्वत्कृते नात्र संशयः।
अनुज्ञां देहि मे देवि गच्छामि त्वरयान्वितः ॥४९॥
द्रष्टुं रामं सह भ्रात्रा त्वरयामि तवान्तिकम्।
देवि किञ्चिदभिज्ञानं देहि मे येन राघवः ॥५०॥
विश्वसेन्मां प्रयत्नेन ततो गन्ता समुत्सुकः।

इसपर जानकीजी कहने लगीं, "भगवान् राम अमेयात्मा हैं, (उनके शरीरका कोई माप नहीं है, वे सर्वव्यापक हैं) किन्तु वानर-यूथपोंके साथ वे किस प्रकार समुद्रको पार करके यहाँ आयेंगे?" हनुमान्‌जी बोले—"वे दोनों नरश्रेष्ठ मेरे कन्धों-पर चढ़कर आयेंगे और वानरराज सुग्रीव सेनासहित इस विस्तीर्ण समुद्रको आकाश-मार्गसे एक क्षणमें पार-कर तुम्हें प्राप्त करनेके लिये सम्पूर्ण राक्षस-समूहको भस्म कर डालेंगे। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। हे देवि! अब मुझे आज्ञा दो; मैं अभी-अभी अनुज-सहित भगवान् रामका दर्शन करनेके लिये जाता हूँ और उन्हें तुरन्त तुम्हारे पास लानेका प्रयत्न करता हूँ। देवि! मुझे कोई ऐसा चिह्न दो जिससे श्रीरघुनायजी मेरा विश्वास करें। उसे लेकर मैं बड़ी सावधानीसे उत्सुकतापूर्वक उनके पास जाऊँगा।"

ततः किञ्चिद्विचार्याथ सीता कमललोचना ॥५१॥
विमुच्य केशपाशान्ते स्थितं चूडामणिं ददौ।
अनेन विश्वसेद्रामस्त्वां कपीन्द्र सलक्ष्मणः ॥५२॥
अभिज्ञानार्थमन्यच्च वदामि तव सुव्रत।

तब कमललोचना सीताजीने कुछ सोच-विचारकर अपने केशपाशमें स्थित चूडामणिको निकाला और उसे हनुमान्‌जीको देकर कहा—"हे कपिवर! इससे भगवान् राम और लक्ष्मण तुम्हारा विश्वास करेंगे ॥४१-५२॥ हे सुव्रत! उनको विश्वास दिलानेके

चित्रकूटगिरौ पूर्वमेकदा रहसि स्थितः ।
मदङ्के शिर आधाय निद्राति रघुनन्दनः ॥५३॥
ऐन्द्रः काकस्तदाऽऽगत्य नखैस्तुण्डेन चासकृत् ।
मत्पादाङ्गुष्ठमारक्तं विददारामिपाशया ॥५४॥
ततो रामः प्रबुद्ध्याथ दृष्ट्वा पादं कृतव्रणम् ।
केन भद्रे कृतं चैतद्विप्रियं मे दुरात्मना ॥५५॥
इत्युक्त्वा पुरतोऽपश्यद्वायसं मां पुनः पुनः ।
अभिद्रवन्तं रक्ताक्तनखतुण्डं चुकोप ह ॥५६॥
तृणमेकमुपादाय दिव्यास्त्रेणाभियोज्य तत् ।
चिक्षेप लीलया रामो वायसोपरि तज्ज्वलन् ॥५७॥
अभ्यद्रवद्वायसश्च भीतो लोकान् भ्रमन्पुनः ।
इन्द्रब्रह्मादिभिश्चापि न शक्यो रक्षितुं तदा ॥५८॥
रामस्य पादयोरग्रेऽपतद्भीत्या दयानिधेः ।
शरणागतमालोक्य रामस्तमिदमब्रवीत् ॥५९॥
अमोघमेतदस्त्रं मे दत्त्वैकाक्षमितो व्रज ।
सव्यं दत्त्वा गतः काक एवं पौरुषवानपि ॥६०॥
उपेक्षते किमर्थं मामिदानीं सोऽपि राघवः ।

हनूमानपि तामाह श्रुत्वा सीतानुभाषितम् ॥६१॥
देवि त्वां यदि जानाति स्थितामत्र रघूत्तमः ।
करिष्यति क्षणाद्भस्म लङ्कां राक्षसमण्डिताम् ॥६२॥

जानकी प्राह तं वत्स कथं त्वं योत्स्यसेऽसुरैः ।
अतिसूक्ष्मवपुः सर्वे वानराश्च भवादृशाः ॥६३॥
श्रुत्वा तद्वचनं देव्यै पूर्वरूपंमदर्शयत् ।
मेरुमन्दरसङ्काशं रक्षोगणविभीषणम् ॥६४॥
दृष्ट्वा सीता हनूमन्तं महापर्वतसन्निभम् ।

लिये एक बात और बतलाती हूँ—एक दिन चित्रकूट पर्वतपर श्रीरघुनाथजी एकान्तमें मेरी गोदमें शिर रखे सो रहे थे ॥ ५३ ॥ इसी समय इन्द्रका पुत्र (जयन्त) काक-वेषमें वहाँ आया और मांसके लोभसे मेरे पैरके लाल-लाल अँगूठेको अपनी चोंच तथा पञ्जोंसे फाड़ डाला ॥ ५४ ॥ तदनन्तर जब श्रीरामचन्द्रजी जागे तो मेरे पैरमें घाव हुआ देखकर बोले—"प्रिये ! किस दुरात्माने मेरा यह अप्रिय किया है ?" ॥ ५५ ॥ वे यह कह ही रहे थे कि उन्होंने अपने सामने उस कौएको बारम्बार मेरी ओर आते देखा । उसकी चोंच और पञ्जे रुधिरसे सने हुए थे । उसे देखकर उन्हें बड़ा क्रोध हुआ ॥ ५६ ॥ उन्होंने तुरन्त ही एक तृण उठाकर उसपर दिव्यास्त्रका प्रयोग किया और उसे लीलासे ही उस कौएकी ओर फेंक दिया । उसके तापसे सन्तप्त हो वह काक भय-भीत होकर त्रिलोकीमें भटकता फिरा किन्तु जब इन्द्र, ब्रह्मा आदिसे भी उसकी रक्षा न हो सकी तो बहुत ही डरता-डरता दयानिधान भगवान् रामके चरणोंमें गिरा । उसे शरणागत देख श्रीरामचन्द्रजीने उससे कहा—॥५७–५९॥ "मेरा यह अस्त्र अमोघ है । (यह कभी व्यर्थ नहीं जा सकता) । अतः तू केवल अपनी एक आँख देकर यहाँसे चला जा । तब वह काक अपनी बायीं आँख देकर चला गया । जो ऐसे पुरुषार्थी हैं वे ही श्रीरघुनाथजी न जाने इस समय क्यों मेरी उपेक्षा कर रहे हैं ?"

सीताजीका यह कथन सुनकर हनुमान्‌जीने कहा—"देवि ! जिस समय श्रीरघुनाथजीको तुम्हारे यहाँ होनेका पता चलेगा उस समय इस राक्षस-मण्डल-मण्डिता लंकाको वे एक क्षणमें ही भस्म कर डालेंगे" ॥ ६०-६२ ॥

जानकीजीने कहा—"वत्स ! तुम अत्यन्त सूक्ष्म शरीरवाले हो, अतः राक्षसोंसे कैसे लड़ सकोगे ? और सब वानर भी तो तुम्हारे ही समान होंगे ?॥ ६३ ॥

देवी जानकीजीके ये वचन सुनकर हनुमान्‌जीने उन्हें अपना पूर्वरूप दिखलाया । जो मेरु और मन्दर पर्वतके समान अति विशाल और राक्षसोंको भय उत्पन्न करनेवाला था ॥ ६४ ॥ हनुमान्‌जीको महा-पर्वतके समान विशालकाय देखकर सीताजीको अपार

हर्षेण महताऽऽविष्टा प्राह तं कपिकुञ्जरम् ॥६५॥
समर्थोऽसि महासत्त्व द्रक्ष्यन्ति त्वां महाबलम्।
राक्षस्यस्ते शुभः पन्था गच्छ रामान्तिकं द्रुतम्॥६६॥
बुभुक्षितः कपिः प्राह दर्शनात्पारणं मम।
भविष्यति फलैः सर्वैस्तव दृष्टौ स्थितैर्हि मे ॥६७॥
तथेत्युक्तः स जानक्या भक्षयित्वा फलं कपिः।
ततः प्रस्थापितोऽगच्छज्जानकीं प्रणिपत्य सः।
किञ्चिद्दूरमथो गत्वा स्वात्मन्येवान्वचिन्तयत्॥६८॥
कार्यार्थमागतो दूतः स्वामिकार्याविरोधतः।
अन्यत्किञ्चिदसम्पाद्य गच्छत्यधम एव सः ॥६९॥
अतोऽहं किञ्चिदन्यच्च कृत्वा दृष्ट्वाऽथ रावणम्।
सम्भाष्य च ततो रामदर्शनार्थं व्रजाम्यहम् ॥७०॥

आनन्द हुआ और वे उन कपिश्रेष्ठसे कहने लगीं— ॥ ६५ ॥ "हे महासत्त्व ! तुम बड़े ही सामर्थ्यवान् हो; अच्छा, अब तुम शीघ्र ही श्रीरामचन्द्रजीके पास जाओ। हे महावीर ! तुम्हें राक्षसियाँ देख लेंगी, (अतः अब तुम जाओ) तुम्हारा मार्ग कल्याण-मय हो ॥ ६६ ॥ हनुमान्‌जीको भूख लगी हुई थी। वे बोले—"देवि ! आपका दर्शन कर अब मुझे आपके सामने लगे हुए फलोंसे पारण करनेकी इच्छा होती है" ॥ ६७ ॥ तब जानकीजीके 'बहुत अच्छा' कहने-पर कपिवरने वे फल खाये और उनके विदा करनेपर उन्हें प्रणाम करके चल दिये। फिर कुछ दूर चलनेपर उन्होंने अपने मनमें सोचा ॥ ६८ ॥ 'जो दूत अपने स्वामीके कार्यके लिये आकर उसमें किसी प्रकारका विघ्न न करनेवाला कोई और कार्य न करके यों ही चला जाता है वह अधम ही है ॥ ६९ ॥ अतः मैं कुछ और भी करूँगा और रावणसे मिलकर तथा बातचीत कर फिर श्रीरघुनाथजीके दर्शनार्थ जाऊँगा" ॥ ७० ॥

इति निश्चित्य मनसा वृक्षखण्डान्महाबलः।
उत्पाट्याशोकवनिकां निर्वृक्षामकरोत्क्षणात्॥७१॥
सीताऽऽश्रयनगं त्यक्त्वा वनं शून्यं चकार सः।
उत्पाटयन्तं विपिनं दृष्ट्वा राक्षसयोषितः ॥७२॥
अपृच्छन् जानकीं कोऽसौ वानराकृतिरुद्भटः॥७३॥

मनमें ऐसा निश्चय कर महाबली हनुमान्‌जीने वृक्षों-को उखाड़कर अशोकवाटिकाको एक क्षणमें ही वृक्ष-हीन कर दिया ॥ ७१ ॥ जिसके नीचे श्रीसीताजी बैठी थीं उस वृक्षको छोड़कर शेष समस्त वाटिकाको उन्होंने उजाड़ डाला। उन्हें वन उजाड़ते देख राक्षसियोंने जानकीजीसे पूछा, "यह वानराकार विकट वीर कौन है ?" ॥ ७२-७३ ॥

जानक्युवाच

भवत्य एव जानन्ति मायां राक्षसनिर्मिताम्।
नाहमेनं विजानामि दुःखशोकसमाकुला ॥७४॥
इत्युक्तास्त्वरितं गत्वा राक्षस्यो भयपीडिताः।
हनूमता कृतं सर्वं रावणाय न्यवेदयन् ॥७५॥
देव कश्चिन्महासत्त्वो वानराकृतिदेहभृत्।
सीतया सह सम्भाष्य ह्यशोकवनिकां क्षणात्।
उत्पाट्य चैत्यप्रासादं बभञ्जामितविक्रमः ॥७६॥
प्रासादरक्षिणः सर्वान्हत्वा तत्रैव तस्थिवान्।
तच्छ्रुत्वा तूर्णमुत्थाय वनभङ्गं महाऽप्रियम् ॥७७॥

जानकीजी बोलीं—इस राक्षसी मायाको आप ही लोग जानें। दुःख और शोकसे आतुर मैं यह क्या जानूँ ? ॥ ७४ ॥ जानकीजीके इस प्रकार कहनेपर भयपीडिता राक्षसियोंने रावणके पास जा उसे हनुमान्‌जीकी सारी करतूत कह सुनायी ॥७५॥ वे कहने लगीं—"देव ! एक बड़े पराक्रमी वानराकार प्राणीने सीताजीसे सम्भाषण कर एक क्षणमें ही सारी अशोकवाटिका उजाड़ दी है। उस महापराक्रमीने मन्दिरके प्रासादको भी तोड़ डाला और उसके सब रक्षकोंको मारकर इस समय भी वह वहीं बैठा हुआ है।" वनविध्वंसका यह महान् अप्रिय समाचार सुनकर राक्षसराज रावण तुरन्त उठा

किङ्करान्प्रेषयामास नियुतं राक्षसाधिपः ।
निभग्नचैत्यप्रासादप्रथमान्तरसंस्थितः ॥७८॥
हनुमान्पर्वताकारो लोहस्तम्भकृतायुधः ।
किञ्चिल्लाङ्गूलचलनो रक्तास्यो भीषणाकृतिः ॥७९॥
आपतन्तं महासङ्घं राक्षसानां ददर्श सः ।
चकार सिंहनादं च श्रुत्वा ते मुमुहुर्भृशम् ॥८०॥
हनूमन्तमथो दृष्ट्वा राक्षसा भीषणाकृतिम् ।
निर्जघ्नुर्विविधास्त्रौघैः सर्वराक्षसघातिनम् ॥८१॥
तत उत्थाय हनुमान्मुद्गरेण समन्ततः ।
निष्पिपेष क्षणादेव मशकानिव यूथपः ॥८२॥
निहतान्किङ्करान् श्रुत्वा रावणः क्रोधमूर्च्छितः ।
पञ्च सेनापतींस्तत्र प्रेषयामास दुर्मदान् ॥८३॥
हनूमानपि तान्सर्वांल्लोहस्तम्भेन चाहनत् ।
ततः क्रुद्धो मन्त्रिसुतान्प्रेषयामास सप्त सः ॥८४॥
आगतानपि तान्सर्वान्पूर्ववद्वानरेश्वरः ।
क्षणान्निःशेपतो हत्वा लोहस्तम्भेन मारुतिः ॥८५॥
पूर्वस्थानमुपाश्रित्य प्रतीक्षन् राक्षसान् स्थितः ।
ततो जगाम बलवान्कुमारोऽक्षः प्रतापवान् ॥८६॥
तमुत्पपात हनुमान् दृष्ट्वाऽऽकाशे समुद्गरः ।
गगनात्त्वरितो मूर्ध्नि मुद्गरेण व्यताडयत् ॥८७॥
हत्वा तमक्षं निःशेषं बलं सर्वं चकार सः ॥८८॥
ततः श्रुत्वा कुमारस्य वधं राक्षसपुङ्गवः ।
क्रोधेन महताऽऽविष्ट इन्द्रजेतारमब्रवीत् ॥८९॥
पुत्र गच्छाम्यहं तत्र यत्रास्ते पुत्रहा रिपुः ।
हत्वा तमथवा बद्ध्वा आनयिष्यामि तेऽन्तिकम् ॥
इन्द्रजित्पितरं प्राह त्यज शोकं महामते ।
मयि स्थिते किमर्थं त्वं भाषसे दुःखितं वचः ॥९१॥

और उसने दश लाख सेवकोंको भेजा। इधर, पर्वताकार हनुमान्‌जी लोहेके खम्भको शस्त्ररूपसे लिये हुए उस टूटे-फूटे मन्दिरके प्रथम भागमें बैठे थे। उनकी पूँछ कुछ-कुछ हिल रही थी, तथा मुख अरुणवर्ण और आकृति भयानक थी ॥ ७६-७९ ॥ राक्षसोंके समूहको आया देख उन्होंने घोर सिंहनाद किया, जिसे सुनकर वे सब अत्यन्त स्तब्ध हो गये ॥ ८० ॥ फिर सम्पूर्ण राक्षसोंको मारनेवाले भीषणाकार हनुमान्‌जी-को देखकर राक्षसोंने उनपर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र छोड़े ॥ ८१ ॥ तदनन्तर, यूथपति गजराज जैसे मच्छरोंको मसल डालता है वैसे ही हनुमान्‌जीने उठकर अपने मुद्गरसे एक क्षणमें ही सबको चारों ओरसे पीस डाला ॥ ८२ ॥

अपने किङ्करोंका मरण सुनकर रावण क्रोधसे पागल हो गया और उसने वहाँ पाँच बड़े बाँके सेनापतियोंको (अपनी सेनाके साथ) भेजा ॥ ८३ ॥ हनुमान्‌जीने अपने लोह-स्तम्भसे तुरन्त ही उन सबको मार डाला। तब उसने अति क्रोधित होकर सात मन्त्रिपुत्रोंको भेजा ॥ ८४ ॥ वानराधीश पवननन्दनने, वहाँ आनेपर उन सबको भी पहलेकी भाँति एक क्षणमें ही उस लोह-स्तम्भसे मार डाला ॥ ८५ ॥ और अपने पूर्व-स्थानमें ही बैठकर अन्य राक्षसोंके आनेकी बाट देखने लगे। तब अति बलवान् और प्रतापशाली राजकुमार अक्ष आया ॥ ८६ ॥ उसे देखकर हनुमान्-जी अपना मुद्गर लेकर आकाशमें उड़ गये और बड़े वेगसे ऊपरसे ही उसके मस्तकपर मुद्गरका प्रहार किया। इस प्रकार अक्षको मारकर उसकी सेनाका भी नामो-निशान मिटा दिया ॥ ८७-८८ ॥

राजकुमार अक्षके वधका वृत्तान्त पाकर राक्षसराज रावण अत्यन्त क्रोधमें भरकर इन्द्रजित्‌से बोला—"बेटा! जहाँ मेरे पुत्रका मारनेवाला मेरा शत्रु है मैं वहाँ जाता हूँ और उसे मारकर या बाँधकर तेरे पास लाता हूँ" ॥ ८९-९० ॥ इन्द्रजित्‌ने पितासे कहा—"हे महामते! शोक न कीजिये; मेरे रहते हुए आप ऐसे दुःखमय वचन क्यों बोलते हैं? ॥ ९१ ॥ मैं उस

बद्ध्वाऽऽनेष्ये द्रुतं तात वानरं ब्रह्मपाशतः ।
इत्युक्त्वा रथमारुह्य राक्षसैर्बहुभिर्वृतः ॥९२॥
जगाम वायुपुत्रस्य समीपं वीरविक्रमः ।
ततोऽतिगर्जितं श्रुत्वा स्तम्भमुद्यम्य वीर्यवान् ॥९३॥
उत्पपात नभोदेशं गरुत्मानिव मारुतिः ।
ततो भ्रमन्तं नभसि हनूमन्तं शिलीमुखैः ॥९४॥
विद्ध्वा तस्य शिरोभागमिषुभिश्चाष्टभिः पुनः ।
हृदयं पादयुगलं पद्भिरेकेन वालधिम् ॥९५॥
भेदयित्वा ततो घोरं सिंहनादमथाकरोत् ।
ततोऽतिहर्षाद्धनुमांस्तम्भमुद्यम्य वीर्यवान् ॥९६॥
जघान सारथिं साश्वं रथं चाचूर्णयत्क्षणात् ।
ततोऽन्यं रथमादाय मेघनादो महाबलः ॥९७॥
शीघ्रं ब्रह्मास्त्रमादाय बद्ध्वा वानरपुङ्गवम् ।
निनाय निकटं राज्ञो रावणस्य महाबलः ॥९८॥

वानरको शीघ्र ही ब्रह्मपाशमें बाँधकर लिये आता हूँ ।" ऐसा कह वह महापराक्रमी वीर रथपर चढ़ा और बहुत-से राक्षसोंके साथ पवनपुत्र हनुमान्‌के पास पहुँचा। तब, वीर्यवान् हनुमान्‌जी भयङ्कर सिंहनाद सुन हाथमें स्तम्भ लिये गरुड़के समान आकाशमें उड़ गये। उन्हें आकाशमें उड़ते देख इन्द्रजित्‌ने आठ बाणोंसे उनके शिरको बींधा, फिर छः बाणोंसे उनके हृदय और दोनों चरणोंको तथा एकसे उनकी पूँछको बींधकर वह घोर सिंहनाद करने लगा। तब महाबलवान् हनुमान्‌जीने भी अति प्रसन्नतासे स्तम्भ उठाकर एक क्षणमें ही उसके सारथीको मार डाला और घोड़ोंके सहित उसके रथको चूर्ण कर दिया। तब महाबली मेघनाद (इन्द्रजित्) ने दूसरे रथपर चढ़कर तुरन्त ही वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌जीको ब्रह्मपाशसे बाँध लिया और उन्हें राक्षसराज रावणके पास ले गया ॥ ९२–९८ ॥

यस्य नाम सततं जपन्ति ये-
ऽज्ञानकर्मकृतबन्धनं क्षणात् ।
सद्य एव परिमुच्य तत्पदं
यान्ति कोटिरविभासुरं शिवम् ॥९९॥
तस्यैव रामस्य पदाम्बुजं सदा
हृत्पद्ममध्ये सुनिधाय मारुतिः ।
सदैव निर्मुक्तसमस्तबन्धनः
किं तस्य पाशैरितरैश्च बन्धनैः ॥१००॥

जिनके नामका निरन्तर जप करनेवाले भक्तजन एक क्षणमें ही अज्ञानकृत बन्धनको काटकर करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान उनके परम कल्याणमय पदको तत्काल प्राप्त कर लेते हैं, उन्हीं भगवान् रामके चरणकमलोंको सदा अपने हृदयकमलमें धारण करनेसे हनुमान्‌जी सदा ही समस्त बन्धनोंसे छूटे हुए हैं। उनका ब्रह्मपाश अथवा और किसी बन्धनसे क्या हो सकता है ? ॥ ९९-१०० ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे
सुन्दरकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थ सर्ग

हनुमान् और रावणका संवाद तथा लङ्कादहन ।

श्रीमहादेव उवाच
यान्तं कपीन्द्रं धृतपाशबन्धनं
विलोकयन्तं नगरं विभीतवत् ।
अताडयन्मुष्टितलैः सुकोपनाः
पौराः समन्तादनुयान्त ईक्षितुम् ॥ १ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! ब्रह्मपाशसे बँधे हुए श्रीहनुमान्‌जी जब डरे हुएके समान नगर देखते जा रहे थे, उस समय उन्हें देखनेके लिये इधर-उधरसे इकट्ठे हुए पुरवासी उनके पीछे-पीछे चलते हुए उन्हें क्रोधपूर्वक घूँसोंसे मारने लगे ॥ १ ॥ ब्रह्माजीके

ब्रह्मास्त्रमेनं क्षणमात्रसङ्गमं
कृत्वा गतं ब्रह्मवरेण सत्वरम् ।
ज्ञात्वा हनूमानपि फल्गुरज्जुभि-
र्धृतो ययौ कार्यविशेषगौरवात् ॥ २ ॥
सभान्तरस्थस्य च रावणस्य तं
पुरो निधायाह बलारिजित्तदा ।
वद्धो मया ब्रह्मवरेण वानरः
समागतोऽनेन हता महासुराः ॥ ३ ॥
यद्युक्तमत्रार्य विचार्य मन्त्रिभि-
र्विधीयतामेष न लौकिको हरिः ।
ततो विलोक्याह स राक्षसेश्वरः
प्रहस्तमग्रे स्थितमञ्जनाद्रिभम् ॥ ४ ॥
प्रहस्त पृच्छैनमसौ किमागतः
किमत्र कार्यं कुत एव वानरः ।
वनं किमर्थं सकलं विनाशितं
हताः किमर्थं मम राक्षसा बलात् ॥ ५ ॥
ततः प्रहस्तो हनुमन्तमादरा-
त्पप्रच्छ केन प्रहितोऽसि वानर ।
भयं च ते माऽस्तु विमोक्ष्यसे मया
सत्यं वदस्वाखिलराजसन्निधौ ॥ ६ ॥

ब्रह्मवरके प्रभावसे ब्रह्मास्त्र हनुमान्‌जीके शरीरका क्षण-भरके लिये स्पर्श कर तुरन्त चला गया। यह बात जानकर भी श्रीहनुमान्‌जी विशेष कार्य सम्पादन करनेके लिये तुच्छ रस्सियोंसे ही बँधे हुए रावणके पास चले गये ॥ २ ॥ तब इन्द्रजित् उन्हें सभामें स्थित रावणके सामने ले गया और बोला—"मैं इस वानरको ब्रह्माके वरके प्रभावसे बाँध लाया हूँ; इसीने हमारे बड़े-बड़े वीर राक्षस मारे हैं ॥ ३ ॥ महाराज ! मन्त्रियोंके साथ विचारकर इसके लिये जैसा उचित समझें वैसा विधान करें। यह कोई साधारण वानर नहीं है।" तब राक्षसराज रावणने सामने बैठे हुए कज्जलगिरिके समान कृष्णवर्ण प्रहस्तसे कहा—॥ ४ ॥ "प्रहस्त ! इस बन्दरसे पूछो तो सही, यह यहाँ क्यों आया है ? इसका क्या कार्य है ? यह कहाँसे आया है ? इसने मेरा सारा वन क्यों उजाड़ डाला ? और मेरे राक्षस वीरोंको बलात्कारसे क्यों मारा ?" ॥ ५ ॥ तब प्रहस्तने हनुमान्‌जीसे आदरपूर्वक पूछा—"वानर ! तुम्हें किसने भेजा है ? तुम डरो मत; राजराजेश्वरके सामने सब बात सच-सच बतला दो; फिर मैं तुम्हें छुड़ा दूँगा ॥ ६ ॥

ततोऽतिहर्षात्पवनात्मजो रिपुं
निरीक्ष्य लोकत्रयकण्टकासुरम् ।
वक्तुं प्रचक्रे रघुनाथसत्कथां
क्रमेण रामं मनसा स्मरन्मुहुः ॥ ७ ॥
शृणु स्फुटं देवगणाद्यमित्र हे
रामस्य दूतोऽहमशेषहृत्स्थितेः ।
यस्याखिलेशस्य हृताऽधुना त्वया
भार्या स्वनाशाय शुनेव सद्धविः ॥ ८ ॥
स राघवोऽभ्येत्य मतङ्गपर्वतं
सुग्रीवमैत्रीमनलस्य सन्निधौ ।
कृत्वैकबाणेन निहत्य वालिनं
सुग्रीवमेवाधिपतिं चकार तम् ॥ ९ ॥
स वानराणामधिपो महाबली
महाबलैर्वानरयूथकोटिभिः ।
रामेण सार्धं सह लक्ष्मणेन भो
प्रवर्षणेऽमर्षयुतोऽवतिष्ठते ॥ १० ॥

तब अपने शत्रु त्रिलोकीके कण्टकरूप राक्षसराज रावणको देखकर पवननन्दन हनुमान्‌जीने हृदयमें बार-म्बार श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण कर अति हर्षित हो क्रमसे रघुनाथजीकी सुन्दर कथा कहनी आरम्भ की ॥ ७ ॥ वे कहने लगे—"हे देवादिके शत्रु रावण ! तुम साफ-साफ सुनो; कुत्ता जिसप्रकार हविको चुरा ले जाता है उसी प्रकार तुमने अपना नाश करानेके लिये जिन अखिलेश्वरकी साध्वी भार्याको हर लिया है मैं उन्हीं सर्वान्तर्यामी भगवान् रामका दूत हूँ ॥ ८ ॥ उन श्रीरघुनाथजीने मतङ्गपर्वतपर आकर अग्निके साक्ष्यमें सुग्रीवसे मित्रता की और एक ही बाणसे बालीको मारकर सुग्रीवको वानरोंका राजा बना दिया ॥ ९ ॥ हे रावण ! इस समय वे महाबली वानरराज और भी करोड़ों महाशूरवीर वानरयूथोंके साथ राम और लक्ष्मणके सहित अति क्रोधयुक्त हो प्रवर्षण पर्वतपर विराजमान हैं ॥ १० ॥ उन्होंने श्रीजानकीजीको ढूँढनेके लिये दशों

सञ्चोदितास्तेन महाहरीश्वरा
धरासुतां मार्गयितुं दिशो दश ।
तत्राहमेकः पवनात्मजः कपिः
सीतां विचिन्वञ्छनकैः समागतः ॥११॥
दृष्टा मया पद्मपलाशलोचना
सीता कपित्वाद्विपिनं विनाशितम् ।
दृष्ट्वा ततोऽहं रभसा समागता-
न्मां हन्तुकामान् धृतचापसायकान् ॥१२॥
मया हतास्ते परिरक्षितं वपुः
प्रियो हि देहोऽखिलदेहिनां प्रभो ।
ब्रह्मास्त्रपाशेन निबध्य मां ततः
समागमन्मेघनिनादनामकः ॥१३॥
स्पृष्ट्वैव मां ब्रह्मवरप्रभावत-
स्त्यक्त्वा गतं सर्वमवैमि रावण ।
तथाप्यहं बद्ध इवागतो हितं
प्रवक्तुकामः करुणारसार्द्रधीः ॥१४॥
विचार्य लोकस्य विवेकतो गतिं
न राक्षसीं बुद्धिमुपैहि रावण ।
दैवीं गतिं संसृतिमोक्षहैतुकीं
समाश्रयात्यन्तहिताय देहिनः ॥१५॥
त्वं ब्रह्मणो ह्युत्तमवंशसम्भवः
पौलस्त्यपुत्रोऽसि कुबेरबान्धवः ।
देहात्मबुद्ध्यापि च पश्य राक्षसो
नास्यात्मबुद्ध्या किमु राक्षसो नहि ॥१६॥
शरीरबुद्धीन्द्रियदुःखसन्तति-
र्न ते न च त्वं तव निर्विकारतः ।
अज्ञानहेतोश्च तथैव सन्तते-
रसत्त्वमस्याः स्वपतो हि दृश्यवत् ॥१७॥
इदं तु सत्यं तव नास्ति विक्रिया
विकारहेतुर्न च तेऽद्वयत्वतः ।
यथा नभः सर्वगतं न लिप्यते
तथा भवान्देहगतोऽपि सूक्ष्मकः ।
देहेन्द्रियप्राणशरीरसङ्गत-
स्त्वात्मेति बुद्ध्वाऽखिलबन्धभाग्भवेत् ॥१८॥

दिशाओंमें बड़े-बड़े वानरेश्वर भेजे हैं। उन्हींमेंसे एक वानर मैं वायुका पुत्र हूँ, मैं सीताजीको ढूँढ़ता-ढूँढ़ता हुआ यहाँ आया हूँ ॥ ११ ॥ मैं कमलदललोचना जानकीजीका दर्शन कर चुका हूँ, फिर अपने वानर-स्वभावसे मैंने वन उजाड़ दिया, और जब मैंने राक्षसों-को बड़े वेगसे धनुष-बाण आदि लेकर अपनेको मारने-के लिये आते देखा, तो उन्हें मारकर अपनी शरीर-रक्षा की, क्योंकि हे राजन् ! अपना शरीर तो सभी देहधारियोंको प्यारा होता है। फिर वह मेघनाद नामक राक्षस मुझे ब्रह्मपाशमें बाँधकर यहाँ ले आया ॥ १२-१३ ॥ हे रावण ! मैं यद्यपि यह जानता था कि ब्रह्माजीके वरके प्रभावसे यह ब्रह्मपाश मुझे छूते ही चला गया, तथापि करुणावश तुम्हारे हितकी बात बतानेके लिये मैं बँधे हुएके समान यहाँ चला आया ॥ १४ ॥ हे रावण ! तुम विवेकपूर्वक संसारकी गतिका विचार करो; राक्षसी बुद्धिको अङ्गीकार मत करो और संसार-बन्धनसे छुटानेवाली प्राणियोंकी अत्यन्त हितकारिणी दैवी गतिका आश्रय लो ॥ १५ ॥ तुम ब्रह्माजीके अति उत्तम वंशमें उत्पन्न हुए हो तथा पुलस्त्यनन्दन विश्रवा-के पुत्र और कुबेरके भाई हो; अतः देखो, तुम तो देहात्मबुद्धिसे भी राक्षस नहीं हो; फिर आत्मबुद्धिसे राक्षस नहीं हो—इसमें तो कहना ही क्या है ? ॥ १६ ॥ (तुम वास्तवमें कौन हो सो मैं बतलाता हूँ—) तुम सर्वथा निर्विकार हो; इसलिये शरीर, बुद्धि, इन्द्रियाँ और दुःखादि—ये न तुम्हारे (गुण) हैं और न तुम स्वयं हो। इन सबका कारण अज्ञान है और स्वप्नदृश्यके समान ये सब असत् हैं ॥ १७ ॥ यह बिलकुल सत्य है कि तुम्हारे आत्म-स्वरूपमें कोई विकार नहीं है क्योंकि अद्वितीय होनेसे उसमें कोई विकारका कारण ही नहीं है। जिस प्रकार आकाश सर्वत्र होनेसे भी (किसी पदार्थके गुण-दोषसे) लिप्त नहीं होता उसी प्रकार तुम देहमें रहते हुए भी सूक्ष्मरूप होनेसे उसके सुख-दुःखादि विकारोंसे लिप्त नहीं होते। 'आत्मा देह, इन्द्रिय, प्राण और शरीरसे मिला हुआ है' ऐसी बुद्धि ही सारे बन्धनोंका कारण होती है ॥ १८ ॥ और 'मैं चिन्मात्र अजन्मा अविनाशी

चिन्मात्रमेवाहमजोऽहमक्षरो
ह्यानन्दभावोऽहमिति प्रमुच्यते ।
देहोऽप्यनात्मा पृथिवीविकारजो
न प्राण आत्माऽनिल एष एव सः ॥१९॥
मनोऽप्यहङ्कारविकार एव नो
न चापि बुद्धिः प्रकृतेर्विकारजा ।
आत्मा चिदानन्दमयोऽविकारवा-
न्देहादिसङ्घाद्व्यतिरिक्त ईश्वरः ॥२०॥
निरञ्जनो मुक्त उपाधितः सदा
ज्ञात्वैवमात्मानमितो विमुच्यते ।
अतोऽहमात्यन्तिकमोक्षसाधनं
वक्ष्ये शृणुष्वावहितो महामते ॥२१॥
विष्णोर्हि भक्तिः सुविशोधनं धिय-
स्ततो भवेज्ज्ञानमतीव निर्मलम् ।
विशुद्धतत्त्वानुभवो भवेत्ततः
सम्यग्विदित्वा परमं पदं व्रजेत् ॥२२॥
अतो भजस्वाद्य हरिं रमापतिं
रामं पुराणं प्रकृतेः परं विभुम् ।
विसृज्य मौर्ख्यं हृदि शत्रुभावनां
भजस्व रामं शरणागतप्रियम् ।
सीतां पुरस्कृत्य सपुत्रबान्धवो
रामं नमस्कृत्य विमुच्यसे भयात् ॥२३॥
रामं परात्मानमभावयन् जनो
भक्त्या हृदिस्थं सुखरूपमद्वयम् ।
कथं परं तीरमवाप्नुयाज्जनो
भवाम्बुधेर्दुःखतरङ्गमालिनः ॥२४॥
नो चेत्त्वमज्ञानमयेन वह्निना
ज्वलन्तमात्मानमरक्षिताऽरिवत् ।
नयस्यधोऽधः स्वकृतैश्च पातकै-
र्विमोक्षशङ्का न च ते भविष्यति ॥२५॥
श्रुत्वाऽमृतास्वादसमानभाषितं
तद्वायुसूनोर्दशकन्धरोऽसुरः ।
अमृष्यमाणोऽतिरुषा कपीश्वरं
जगाद रक्तान्तविलोचनो ज्वलन् ॥२६॥

तथा आनन्दस्वरूप ही हूँ' इस बुद्धिसे जीव मुक्त हो जाता है। पृथिवीका विकार होनेसे देह भी अनात्मा है और प्राण वायुरूप ही है, अतः यह भी आत्मा नहीं है ॥ १९ ॥ अहंकारका कार्य मन अथवा प्रकृतिके विकारसे उत्पन्न हुई बुद्धि भी आत्मा नहीं है। आत्मा तो चिदानन्दस्वरूप, अविकारी तथा देहादि संघातसे पृथक् और उसका स्वामी है ॥२०॥ वह निर्मल और सर्वदा उपाधिरहित है; उसका इस प्रकार ज्ञान होते ही मनुष्य संसारसे मुक्त हो जाता है। अतः हे महामते! मैं तुम्हें आत्यन्तिक मोक्षका साधन बतलाता हूँ, सावधान होकर सुनो ॥ २१ ॥ भगवान् विष्णुकी भक्ति, बुद्धिको अत्यन्त शुद्ध करनेवाली है, उसीसे अत्यन्त निर्मल आत्मज्ञान होता है। आत्मज्ञानसे शुद्ध आत्मतत्त्वका अनुभव होता है और उससे दृढबोध हो जानेसे मनुष्य परमपद प्राप्त करता है ॥ २२ ॥ इसलिये तुम प्रकृतिसे परे, पुराणपुरुष, सर्वव्यापक आदि-नारायण, लक्ष्मीपति, हरि भगवान् रामका भजन करो। अपने हृदयमें स्थित शत्रुभावरूप मूर्खताको छोड़ दो, और शरणागतवत्सल रामका भजन करो। सीताजीको आगेकर अपने पुत्र और बन्धु-बान्धवोंके सहित भगवान् रामकी शरण जाकर उन्हें नमस्कार करो। इससे तुम भयसे छूट जाओगे ॥ २३ ॥ जो पुरुष अपने हृदयमें स्थित अद्वितीय सुखस्वरूप परमात्मा रामका भक्तिपूर्वक ध्यान नहीं करता वह दुःख-तरङ्गावलिसे पूर्ण इस संसार-समुद्रका पार कैसे पा सकता है ? ॥ २४ ॥ यदि तुम भगवान् रामका भजन न करोगे तो अज्ञानरूपी अग्निसे जलते हुए अपने-आपको शत्रुके समान सुरक्षित नहीं रख सकोगे और उसे अपने किये हुए पापोंसे उत्तरोत्तर नीचेकी ओर ही ले जाओगे; फिर तुम्हारे मोक्षकी कोई सम्भावना न रहेगी" ॥ २५ ॥

पवनसुतके इस अमृतसदृश मधुर भाषणको सुनकर राक्षसराज रावण उसे सहन न कर सका और अत्यन्त क्रोधसे नेत्र लाल कर मन-ही-मन जलता हुआ हनुमान्‌जी-से बोला—॥२६॥ "अरे दुष्टबुद्धे! तू वानरोंमें अधम है। मेरे सामने इस प्रकार निर्भयके समान कैसे प्रलाप कर

कथं ममाग्रे विलपस्यभीतवत्
प्लवङ्गमानामधमोऽसि दुष्टधीः ।
क एष रामः कतमो वनेचरो
निहन्मि सुग्रीवयुतं नराधमम् ॥२७॥
त्वां चाद्य हत्वा जनकात्मजां ततो
निहन्मि रामं सहलक्ष्मणं ततः ।
सुग्रीवमग्रे बलिनं कपीश्वरं
सवानरं हन्म्यचिरेण वानर ।
श्रुत्वा दशग्रीववचः स मारुति-
र्विवृद्धकोपेन दहन्निवासुरम् ॥२८॥
न मे समा रावणकोटयोऽधम
रामस्य दासोऽहमपारविक्रमः ।
श्रुत्वाऽतिकोपेन हनूमतो वचो
दशाननो राक्षसमेवमब्रवीत् ॥२९॥
पार्श्वे स्थितं मारय खण्डशः कपिं
पश्यन्तु सर्वेऽसुरमित्रबान्धवाः ।
निवारयामास ततो विभीषणो
महासुरं सायुधमुद्यतं वधे ।
राजन्वधार्हो न भवेत्कथञ्चन
प्रतापयुक्तैः परराजवानरः ॥३०॥
हतेऽस्मिन्वानरे दूते वार्तां को वा निवेदयेत् ।
रामाय त्वं यमुद्दिश्य वधाय समुपस्थितः ॥३१॥
अतो वधसमं किञ्चिदन्यच्चिन्तय वानरे ।
सचिह्नो गच्छतु हरिर्यं दृष्ट्वाऽऽयास्यति द्रुतम् ॥३२॥
रामः सुग्रीवसहितस्ततो युद्धं भवेत्तव ।
विभीषणवचः श्रुत्वा रावणोऽप्येतदब्रवीत् ॥३३॥
वानराणां हि लाङ्गूले महामानो भवेत्किल ।
अतो वस्त्रादिभिः पुच्छं वेष्टयित्वा प्रयत्नतः ॥३४॥
वह्निना योजयित्वैनं भ्रामयित्वा पुरेऽभितः ।
विसर्जयत पश्यन्तु सर्वे वानरयूथपाः ॥३५॥
तथेति शणपट्टैश्च वस्त्रैरन्यैरनेकशः ।
तैलाक्तैर्वेष्टयामासुर्लाङ्गूलं मारुतेर्दृढम् ॥३६॥
पुच्छाग्रे किञ्चिदनलं दीपयित्वाऽथ राक्षसाः ।
रज्जुभिः सुदृढं बद्ध्वा धृत्वा तं बलिनोऽसुराः ॥३७॥
समन्ताद् भ्रामयामासुश्चोरोऽयमिति वादिनः ।

रहा है ? यह राम और वनचर सुग्रीव हैं क्या चीज ? उस नराधमको तो सुग्रीवके सहित मैं ही मार डालूँगा ॥ २७ ॥ पे वानर ! पहले तो आज तुझे ही मारूँगा, फिर जानकीका वध करूँगा, तदनन्तर लक्ष्मणके सहित रामको मारूँगा और उनसे पहले उस बड़े बली वानरराज सुग्रीवको उसकी वानरसेनाके सहित तुरन्त ही देरमें मार डालूँगा ।" रावणके ये वचन सुनकर हनुमान्‌जी अपने बढ़े हुए क्रोधसे उसे जलाते हुए-से बोले—॥२८॥ "अरे अधम ! मेरी समानता तो करोड़ रावण भी नहीं कर सकते; जानता नहीं, मैं भगवान् रामका दास हूँ, मेरे पराक्रमका कोई ठिकाना नहीं है ।" हनुमान्‌जीके ये वचन सुनकर रावणने अत्यन्त क्रोधपूर्वक अपनी बगलमें खड़े हुए एक राक्षससे कहा—"अरे ! इस वानरके टुकड़े-टुकड़े करके मार डाल, जिससे सब राक्षस, मित्र तथा बन्धुगण इस कौतुकको देखें ।" तब, विभीषणने, हथियार लेकर मारनेके लिये तैयार हुए उस प्रचण्ड राक्षसको रोककर कहा—"राजन् ! प्रतापी पुरुषोंको अन्य राज्यके वानर-दूतको किसी प्रकार भी न मारना चाहिये ॥ २९-३० ॥ यदि यह वानर-दूत मारा गया तो जिनका वध करनेके लिये आप उद्यत हुए हैं उन रामको यह समाचार कौन सुनावेगा ? ॥ ३१ ॥ अतः, इस वानरके लिये वधके समान ही कोई और दण्ड निश्चय कीजिये, जिसका चिह्न लेकर यह वानर जाय और उसे देखकर सुग्रीवके सहित राम तुरन्त ही आयें और फिर उनसे आपका युद्ध हो ।" विभीषणका कथन सुनकर रावण भी यों बोला—॥३२-३३॥ "वानरोंको पूँछपर बड़ी ममता होती है । अतः इसकी पूँछको वस्त्रादिसे खूब लपेट दो और फिर उसमें आग लगाकर इसे नगरमें चारों ओर घुमाकर छोड़ दो, जिससे समस्त वानरयूथपति इसकी वह दुर्दशा देखें" ॥ ३४-३५ ॥

तब राक्षसोंने 'बहुत अच्छा' कह हनुमान्‌जीकी पूँछ सनके पट्टोंसे और तेलमें भीगे हुए नाना प्रकारके चिथड़ोंसे बड़ी दृढ़तासे लपेटी; और पूँछके सिरेपर थोड़ी-सी आग लगाकर उन्हें दृढ़तापूर्वक रस्सीसे बाँधकर कुछ बलवान् राक्षस उन्हें मारते और बारम्बार तुरही

तूर्यघोषैर्घोषयन्तस्ताडयन्तो मुहुर्मुहुः ॥३८॥
हनूमताऽपि तत्सर्वं सोढं किञ्चिच्चिकीर्षुणा ।
गत्वा तु पश्चिमद्वारसमीपं तत्र मारुतिः ॥३९॥
सूक्ष्मो बभूव बन्धेभ्यो निःसृतः पुनरप्यसौ ।
बभूव पर्वताकारस्तत उत्प्लुत्य गोपुरम् ॥४०॥
तत्रैकं स्तम्भमादाय हत्वा तान् रक्षिणः क्षणात् ।
विचार्य कार्यशेषं स प्रासादाग्राद्गृहाद्गृहम् ॥४१॥
उत्प्लुत्योत्प्लुत्य सन्दीप्तपुच्छेन महता कपिः ।
ददाह लङ्कामखिलां साट्टप्रासादतोरणाम् ॥४२॥
हा तात पुत्र नाथेति क्रन्दमानाः समन्ततः ।
व्याप्ताः प्रासादशिखरेऽप्यारूढा दैत्ययोषितः ॥४३॥
देवता इव दृश्यन्ते पतन्त्यः पावकेऽखिलाः ।
विभीषणगृहं त्यक्त्वा सर्वं भस्मीकृतं पुरम् ॥४४॥
तत उत्प्लुत्य जलधौ हनूमान्मारुतात्मजः ।
लाङ्गूलं मज्जयित्वान्तः स्वस्थचित्तो बभूव सः ॥४५॥
वायोः प्रियसखित्वाच्च सीतया प्रार्थितोऽनलः ।
न ददाह हरेः पुच्छं बभूवात्यन्तशीतलः ॥४६॥

यन्नामसंस्मरणभूतसमस्तपापा-
स्तापत्रयानलमपीह तरन्ति सद्यः ।
तस्यैव किं रघुवरस्य विशिष्टदूतः
सन्तप्यते कथमसौ प्रकृतानलेन ॥४७॥

बजाकर यह कहते हुए कि 'यह चोर है' नगरमें सब ओर घुमाने लगे ॥ ३६–३८ ॥ हनुमान्‌जीने भी कुछ कौतुक करनेकी इच्छासे यह सब सहन कर लिया । जिस समय वे पश्चिमद्वारपर पहुँचे उस समय तुरन्त ही सूक्ष्मरूप होकर उन बन्धनोंमेंसे निकल गये और फिर पर्वताकार हो उछलकर द्वारके कँगूरेपर चढ़ गये ॥ ३९-४० ॥ वहाँसे उन्होंने एक स्तम्भ उखाड़कर एक क्षणमें ही उन समस्त रक्षकोंको मार डाला और फिर अपना शेष कार्य निश्चय कर उस प्रासादके अग्र-भागसे एक घरसे दूसरे घरपर छलाँग मारते हुए अपनी जलती हुई लम्बी पूँछसे महल, अटारी और बन्दनवारादिसे युक्त समस्त लंकापुरीमें आग लगा दी ॥ ४१-४२ ॥ उस समय 'हा तात ! हा पुत्र ! हा नाथ !' कहकर सब ओर फैली हुई, महलोंके ऊपर भी चढ़ी हुई तथा अग्निमें गिरती हुई समस्त दैत्यस्त्रियाँ देवताओंके समान मालूम होती थीं । इस प्रकार हनुमान्‌जीने विभीषणके घरको छोड़कर और सारा नगर भस्म कर डाला ॥ ४३-४४ ॥ तदनन्तर पवनात्मज हनुमान्‌जी उछलकर समुद्रमें कूद पड़े और अपनी पूँछ बुझाकर स्वस्थचित्त हो गये ॥ ४५ ॥ सीताजीकी प्रार्थनासे तथा वायुका प्रिय मित्र होनेके कारण अग्निने हनुमान्‌जीकी पूँछ नहीं जलायी । उनके लिये वह अत्यन्त शीतल हो गया ॥ ४६ ॥

जिनके नाम-स्मरणसे मनुष्य समस्त पापोंसे छूटकर तुरन्त ही तापत्रयरूप अग्निको पार कर जाते हैं उन्हीं श्रीरघुनाथजीके विशिष्ट दूतको यह प्राकृत अग्नि भला किस प्रकार ताप पहुँचा सकता था ? ॥ ४७ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे
सुन्दरकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चम सर्ग

हनुमान्‌जीका सीताजीसे विदा होना और श्रीरामचन्द्रजीको उनका सन्देश सुनाना।

श्रीमहादेव उवाच

ततः सीतां नमस्कृत्य हनूमानब्रवीद्वचः ।
आज्ञापयतु मां देवि भवती रामसन्निधिम् ॥ १ ॥
गच्छामि रामस्त्वां द्रष्टुमागमिष्यति सानुजः ।
इत्युक्त्वा त्रिःपरिक्रम्य जानकीं मारुतात्मजः॥२॥
प्रणम्य प्रस्थितो गन्तुमिदं वचनमब्रवीत् ।
देवि गच्छामि भद्रं ते तूर्णं द्रक्ष्यसि राघवम् ॥ ३ ॥
लक्ष्मणं च ससुग्रीवं वानरायुतकोटिभिः ।
ततः प्राह हनूमन्तं जानकी दुःखकर्शिता ॥ ४ ॥
त्वां दृष्ट्वा विस्मृतं दुःखमिदानीं त्वं गमिष्यसि ।
इतः परं कथं वर्ते रामवार्ताश्रुतिं विना ॥ ५ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! तदनन्तर श्रीहनुमान्‌जीने सीताजीके पास जाकर उन्हें प्रणाम करके कहा—"देवि ! आप मुझे आज्ञा दीजिये; अब मैं श्रीरघुनाथजीके पास जाता हूँ; वे शीघ्र ही भाई लक्ष्मणसहित आपसे मिलनेके लिये यहाँ आयेंगे ।" ऐसा कह पवननन्दन हनुमान्‌जीने जानकीजीकी तीन परिक्रमाएँ कर उन्हें प्रणाम किया और जानेके लिये कुछ दूर चलकर बोले—"देवि ! मैं जाता हूँ, आपका शुभ हो, आप शीघ्र ही सुग्रीव और करोड़ों अन्य वानरोंके सहित भगवान् राम और लक्ष्मणको देखेंगी ।" तब दुःखसे दुर्बल हुई जानकीने हनुमान्‌जीसे कहा—"तुम्हें देखकर मैं अपना दुःख भूल गयी थी । अब तुम जा रहे हो; अब, श्रीरामचन्द्रजीका समाचार सुने बिना मैं कैसे रहूँगी?" ॥ १–५ ॥

मारुतिरुवाच

यद्येवं देवि मे स्कन्धमारोह क्षणमात्रतः ।
रामेण योजयिष्यामि मन्यसे यदि जानकि॥ ६ ॥

हनुमान्‌जी बोले—हे देवि ! यदि ऐसी बात है और आप स्वीकार करें तो हे जनकनन्दिनी ! आप मेरे कन्धेपर चढ़ लीजिये, मैं एक क्षणमें ही श्रीरामचन्द्रजीसे आपको मिला दूँगा ॥ ६ ॥

सीतोवाच

रामः सागरमाशोष्य बद्ध्वा वा शरपञ्जरैः ।
आगत्य वानरैः सार्धं हत्वा रावणमाहवे ॥ ७ ॥
मां नयेद्यदि रामस्य कीर्तिर्भवति शाश्वती ।
अतो गच्छ कथं चापि प्राणान्सन्धारयाम्यहम् ॥८॥

सीताजीने कहा—यदि श्रीरामचन्द्रजी समुद्रको सुखाकर या उसे बाणोंसे बाँधकर यहाँ वानरोंके साथ आयें और रावणको युद्धमें मारकर मुझे ले जायँ तो इससे उन्हें अमर कीर्ति प्राप्त होगी । इसलिये तुम जाओ, मैं जैसे-तैसे प्राण धारण करूँगी ॥ ७-८ ॥

इति प्रस्थापितो वीरः सीतया प्रणिपत्य ताम् ।
जगाम पर्वतस्याग्रे गन्तुं पारं महोदधेः ॥ ९ ॥
तत्र गत्वा महासत्त्वः पादाभ्यां पीडयन् गिरिम् ।
जगाम वायुवेगेन पर्वतश्च महीतलम् ॥१०॥
गतो महीसमानत्वं त्रिंशद्योजनमुच्छ्रितः ।
मारुतिर्गगनान्तस्थो महाशब्दं चकार सः ॥११॥
तं श्रुत्वा वानराः सर्वे ज्ञात्वा मारुतिमागतम् ।
हर्षेण महताऽऽविष्टाः शब्दं चक्रुर्महास्वनम् ॥१२॥

सीताजीसे इस प्रकार विदा हो वीरवर हनुमान् उन्हें प्रणाम कर महासागरके पार जानेके लिये पर्वत-शिखरपर चढ़ गये ॥ ९ ॥ वहाँ पहुँचकर महावीर हनुमान्‌जी पर्वतको अपने पैरोंसे दबाकर वायुवेगसे चले और (उनके दबानेसे) वह तीस योजन ऊँचा पर्वत पृथिवीमें घुसकर समतल हो गया । हनुमान्‌जीने आकाशमें जाते समय बड़ा घोर शब्द किया ॥ १०-११ ॥ उसे सुनकर सब वानरगण, यह जानकर कि हनुमान्‌जी लौट रहे हैं, बड़े आनन्दमें भरकर घोर शब्द करने लगे ॥ १२ ॥ (वे आपसमें कहने लगे—)

शब्देनैव विजानीमः कृतकार्यः समागतः ।
हनूमानेव पश्यध्वं वानरा वानरर्षभम् ॥१३॥
एवं ब्रुवत्सु वीरेषु वानरेषु स मारुतिः ।
अवतीर्य गिरेर्मूर्ध्नि वानरानिदमब्रवीत् ॥१४॥
दृष्टा सीता मया लङ्का धर्षिता च सकानना ।
सम्भाषितो दशग्रीवस्ततोऽहं पुनरागतः ॥१५॥
इदानीमेव गच्छामो रामसुग्रीवसन्निधिम् ।
इत्युक्ता वानराः सर्वे हर्षेणालिङ्ग्य मारुतिम् ॥१६॥
केचिच्चुचुम्बुर्लाङ्गूलं ननृतुः केचिदुत्सुकाः ।
हनूमता समेतास्ते जग्मुः प्रस्रवणं गिरिम् ॥१७॥
गच्छन्तो ददृशुर्वीरा वनं सुग्रीवरक्षितम् ।
मधुसंज्ञं तदा प्राहुरङ्गदं वानरर्षभाः ॥१८॥
क्षुधिताः स्मो वयं वीर देह्यनुज्ञां महामते ।
भक्षयामः फलान्यद्य पिबामोऽमृतवन्मधु ॥१९॥
सन्तुष्टा राघवं द्रष्टुं गच्छामोऽद्यैव सानुजम् ॥२०॥

अङ्गद उवाच

हनूमान्कृतकार्योऽयं पिबतैतत्प्रसादतः ।
जक्षध्वं फलमूलानि त्वरितं हरिसत्तमाः ॥२१॥
ततः प्रविश्य हरयः पातुमारेभिरे मधु ।
रक्षिणस्ताननादृत्य दधिवक्त्रेण नोदितान् ॥२२॥
पिबतस्ताडयामासुर्वानरान्वानरर्षभाः ।
ततस्तान्मुष्टिभिः पादैश्चूर्णयित्वा पपुर्मधु ॥२३॥
ततो दधिमुखः क्रुद्धः सुग्रीवस्य स मातुलः ।
जगाम रक्षिभिः सार्धं यत्र राजा कपीश्वरः ॥२४॥
गत्वा तमब्रवीद्देव चिरकालाभिरक्षितम् ।
नष्टं मधुवनं तेऽद्य कुमारेण हनूमता ॥२५॥
श्रुत्वा दधिमुखेनोक्तं सुग्रीवो हृष्टमानसः ।

"इस सिंहनादसे ही मालूम होता है कि हनुमान्‌जी कार्य सिद्ध करके लौटे हैं । हे वानरगण ! देखो, देखो, ये कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जी ही तो हैं" ॥ १३ ॥ वानर वीरोंके इस प्रकार कहते-कहते हनुमान्‌जी उस गिरि-शिखरपर उतर आये और उनसे यों कहने लगे ॥ १४ ॥ "मैंने सीताजीको देखा, अशोकवनसहित लंकाका विध्वंस किया और रावणसे भी बातचीत की । उसके पश्चात् मैं यहाँ आया हूँ ॥ १५ ॥ अब हम इसी समय राम और सुग्रीवके पास चलेंगे ।" हनुमान्‌जीके इस प्रकार कहनेपर सब वानरोंने अत्यन्त हर्षसे उन्हें गले लगाया, किन्हींने उनकी पूँछ चूमी और कोई अति उत्साहसे नाचने लगे । तदनन्तर हनुमान्‌जीके साथ वे सब प्रस्रवण पर्वतपर गये ॥ १६-१७ ॥

जिस समय वे वीर वानरगण जा रहे थे उनकी दृष्टि सुग्रीवद्वारा सुरक्षित मधुवनपर पड़ी । उसे देखकर वे अंगदजीसे बोले ॥ १८ ॥ "हे वीर ! हमें बड़ी भूख लगी है । अतः हे महामते ! हमें आज्ञा दीजिये जिससे आज हम इस वनके फल खाकर अमृततुल्य मधु पियें ॥ १९ ॥ उसके पश्चात् हम तृप्त होकर भाई लक्ष्मणसहित रघुनाथजीके दर्शन करनेके लिये चलेंगे" ॥ २० ॥

अंगदजी बोले—हनुमान्‌जीने कार्य सिद्ध किया है, अतः हे वानरश्रेष्ठगण ! इनकी कृपासे तुम शीघ्र ही फल-मूल खाओ और मधु-पान करो ॥ २१ ॥

अंगदजीकी आज्ञा पा वानरगण उस वनमें घुसकर दधिमुखके भेजे हुए वनरक्षकोंकी उपेक्षाकर मधु पीने लगे ॥ २२ ॥ जब उन वानरोंने उन्हें मधुपान करते देखकर मारा तो वे उन्हें लात और घूँसोंसे कुचलकर मधु पीते रहे ॥ २३ ॥ तब सुग्रीवका मामा दधिमुख अन्य वनरक्षकोंके साथ अति क्रुद्ध हो जहाँ वानरराज सुग्रीव थे वहाँ गया ॥ २४ ॥ वहाँ पहुँचकर वह बोला—"राजन् ! तुमने चिरकालसे जिस मधुवनकी रक्षा की थी उसे आज युवराज अंगद और हनुमान्‌ने उजाड़ डाला" ॥ २५ ॥ दधिमुखकी बात सुनकर सुग्रीव प्रसन्न होकर कहने लगे—"इसमें सन्देह नहीं पवनकुमार सीताजीको देख आये

दृष्ट्वाऽऽगतो न सन्देहः सीतां पवननन्दनः ॥२६॥
नो चेन्मधुवनं द्रष्टुं समर्थः को भवेन्मम ।
तत्रापि वायुपुत्रेण कृतं कार्यं न संशयः ॥२७॥

श्रुत्वा सुग्रीववचनं हृष्टो रामस्तमब्रवीत् ।
किमुच्यते त्वया राजन्वचः सीताकथान्वितम् ।२८।
सुग्रीवस्त्वब्रवीद्वाक्यं देव दृष्टाऽञ्जनीसुता ।
हनूमत्प्रमुखाः सर्वे प्रविष्टा मधुकाननम् ॥२९॥
भक्षयन्ति स्म सकलं ताडयन्ति स्म रक्षिणः ।
अकृत्वा देवकार्यं ते द्रष्टुं मधुवनं मम ॥३०॥
न समर्थास्ततो देवी दृष्टा सीतेति निश्चितम् ।
राक्षिणो वो भयं माऽस्तु गत्वा ब्रूत ममाज्ञया ॥३१॥
वानरानङ्गदमुखानानयध्वं ममान्तिकम् ।
श्रुत्वा सुग्रीववचनं गत्वा ते वायुवेगतः ॥३२॥
हनुमत्प्रमुखानूचुर्गच्छतेश्वरशासनात् ।
द्रष्टुमिच्छति सुग्रीवः सरामो लक्ष्मणान्वितः ॥३३॥
युष्मानतीव हृष्टास्ते त्वरयन्ति महाबलाः ।
तथेत्यम्बरमासाद्य ययुस्ते वानरोत्तमाः ॥३४॥
हनूमन्तं पुरस्कृत्य युवराजं तथाऽङ्गदम् ।
रामसुग्रीवयोरग्रे निपेतुर्भुवि सत्वरम् ॥३५॥
हनूमान् राघवं प्राह दृष्टा सीता निरामया ।
साष्टाङ्गं प्रणिपत्याग्रे रामं पश्चाद्धरीश्वरम् ॥३६॥
कुशलं प्राह राजेन्द्र जानकी त्वां शुचान्विता ।
अशोकवनिकामध्ये शिंशपामूलमाश्रिता ॥३७॥
राक्षसीभिः परिवृता निराहारा कृशा प्रभो ।
हा राम राम रामेति शोचन्ती मलिनाम्बरा ॥३८॥
एकवेणी मया दृष्टा शनैराश्वासिता शुभा ।

हैं; नहीं तो, मेरे मधुवनकी ओर देखनेकी भला किसे सामर्थ्य थी ? और उनमें भी निस्सन्देह यह कार्य किया हनुमान्‌जीने ही है"॥ २६-२७ ॥

सुग्रीवके वचन सुनकर भगवान् रामने प्रसन्न हो उनसे पूछा—"राजन् ! यह सीता-सम्बन्धी तुम क्या बात कह रहे हो ?" ॥ २८ ॥ सुग्रीवने ने कहा—"भगवन् ! मालूम होता है भूमिसुता जानकीजीका पता लग गया है, क्योंकि हनुमान् आदि समस्त वानरगण मधुवनमें घुसकर उसके फल खा रहे हैं और उसके रक्षकोंको मारते हैं । बिना आपका कार्य किये तो वे मेरे मधुवनकी ओर देख भी नहीं सकते थे । अतः यह निश्चय होता है कि वे देवी जानकीजीसे मिल आये हैं । रक्षको ! तुम डरो मत, उन्हें जाकर मेरी आज्ञा सुनाओ और उन अंगदादि वानरोंको मेरे पास ले आओ ।" सुग्रीव-की आज्ञा सुनकर वे वायुवेग से चले और हनुमान् आदिसे कहा—"महाराजकी आज्ञा है, आपलोग तुरन्त वहाँ जाइये क्योंकि राम और लक्ष्मणके सहित महाराज सुग्रीव आपलोगोंसे मिलना चाहते हैं । हे महावीरगण ! आपलोगोंसे प्रसन्न होकर वे आपको बहुत शीघ्र बुला रहे हैं ।" तब वे वानरश्रेष्ठ 'बहुत अच्छा' कह आकाशमें चढ़कर चलने लगे । वे सब वानरगण हनुमान् और युवराज अंगदको आगे कर चले और तुरन्त ही राम और सुग्रीवके सामने पृथिवीपर उतर आये ॥ २९–३५ ॥

हनुमान्‌जीने पहले श्रीरघुनाथजीको और फिर वानरराज सुग्रीवको साष्टाङ्ग प्रणाम कर श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—"मैं सीताजीको सकुशल देख आया हूँ ॥ ३६ ॥ हे राजेन्द्र ! शोकमग्ना जानकीजीने आपको अपना कुशल-समाचार सुनानेके लिये कहा है । वे अशोक-वाटिकाके बीचमें शिंशपा वृक्षके तले बैठी हैं, और हे प्रभो ! सदा राक्षसियोंसे घिरी रहती हैं, अन्न-जल छोड़ देनेके कारण वे अत्यन्त दुर्बल हो गयी हैं, और निरन्तर 'हा राम ! हा राम !' कहकर शोक करती रहती हैं, उनके वस्त्र मलिन हो गये हैं तथा बालोंकी मिलकर एक वेणी हो गयी है—ऐसी अवस्था-

वृक्षशाखान्तरे स्थित्वा सूक्ष्मरूपेण ते कथाम्॥३९॥
जन्मारभ्य तवात्यर्थं दण्डकागमनं तथा।
दशाननेन हरणं जानक्या रहिते त्वयि ॥४०॥
सुग्रीवेण यथा मैत्री कृत्वा वालिनिबर्हणम्।
मार्गणार्थं च वैदेह्याः सुग्रीवेण विसर्जिताः ॥४१॥
महाबला महासत्त्वा हरयो जितकाशिनः।
गताः सर्वत्र सर्वे वै तत्रैकोऽहमिहागतः ॥४२॥
अहं सुग्रीवसचिवो दासोऽहं राघवस्य हि।
दृष्टा यज्जानकी भाग्यात्प्रयासः फलितोऽद्य मे ।४३।

में मैंने सीताजीको देखा और धीरे-धीरे उन्हें ढाँढ़स-बँधाया। वहाँ जाकर पहले मैंने सूक्ष्मरूपसे वृक्षके पत्तोंमें छिपे-छिपे संक्षेपमें आपकी सब कथा सुनायी, जिस प्रकार जन्मसे लेकर आपका दण्डकारण्यमें आना हुआ, आपकी अनुपस्थितिमें रावणने सीताजीको हरा, तथा जिस प्रकार सुग्रीवसे मित्रता कर आपने वालीको मारा—(वह सब सुनाकर फिर मैंने कहा कि) सुग्रीव-द्वारा सीताजीकी खोजके लिये भेजे हुए बड़े बलवान्, पराक्रमी और विजयशाली वानरगण सब दिशाओंमें गये हैं और उनमेंसे एक मैं सुग्रीवका मन्त्री और रघुनाथजीका दास यहाँ आया हूँ। आज भाग्यवश मैंने जानकीजीको देख लिया अतः मेरा प्रयास सफल हो गया ॥३७–४३॥

इत्युदीरितमाकर्ण्य सीता विस्फारितेक्षणा।
केन वा कर्णपीयूषं श्रावितं मे शुभाक्षरम् ॥४४॥
यदि सत्यं तदायातु मद्दर्शनपथं तु सः।
ततोऽहं वानराकारः सूक्ष्मरूपेण जानकीम् ॥४५॥
प्रणम्य प्राञ्जलिर्भूत्वा दूरादेव स्थितः प्रभो।
पृष्टोऽहं सीतया कस्त्वमित्यादि बहुविस्तरम्॥४६॥
मया सर्वं क्रमेणैव विज्ञापितमरिन्दम।
पश्चान्मयार्पितं देव्यै भवद्दत्ताङ्गुलीयकम् ॥४७॥
तेन मामतिविश्वस्ता वचनं चेदमब्रवीत्।
यथा दृष्टोऽसि हनुमन्पीड्यमाना दिवानिशम् ४८
राक्षसीनां तर्जनैस्तत्सर्वं कथय राघवे।
मयोक्तं देवि रामोऽपि त्वच्चिन्तापरिनिष्ठितः॥४९॥
परिशोचत्यहोरात्रं त्वद्वार्तां नाधिगम्य सः।
इदानीमेव गत्वाऽहं स्थितिं रामाय ते ब्रुवे ॥५०॥
रामः श्रवणमात्रेण सुग्रीवेण सलक्ष्मणः।
वानरानीकपैः सार्धमागमिष्यति तेऽन्तिकम्॥५१॥
रावणं सकुलं हत्वा नेष्यति त्वां स्वकं पुरम्।
अभिज्ञां देहि मे देवि यथा मां विश्वसेद्विभुः ॥५२॥
इत्युक्ता सा शिरोरत्नं चूडापाशे स्थितं प्रियम्।

"मेरा यह कथन सुनकर सीताजीके नेत्र खिल गये और वे कहने लगीं—"मुझे ये कर्णामृतरूप शुभ संवाद किसने सुनाया है? यदि यह सब सत्य है (—मुझे भ्रम नहीं हुआ है) तो इस संवादको सुनानेवाला मेरे सामने आवे।" हे प्रभो! तब मैं सूक्ष्मरूपसे बन्दरके आकारमें उनके सामने उपस्थित हुआ और दूरहीसे प्रणाम कर हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। तब जानकीजीने मुझसे 'तुम कौन हो?' इत्यादि बहुत-सी बातें पूछीं॥ ४४–४६ ॥ और हे शत्रुदमन! मैंने उन्हें क्रमशः सब बातें बतला दीं। इसके पश्चात् मैंने उन्हें आपकी दी हुई अँगूठी निवेदन की ॥४७॥ इससे उन्हें मुझपर पूर्ण विश्वास हो गया और वे मुझसे इस प्रकार कहने लगीं—"हनुमन्! जिस प्रकार इन राक्षसियों-के त्राससे तुमने मुझे अहर्निश दुःख उठाते देखा है वह सब ज्यों-का-त्यों रघुनाथजीको सुना देना।" मैंने कहा—"देवि! रघुनाथजी भी तुम्हारी ही चिन्तासे ग्रस्त रहते हैं, और तुम्हारा समाचार न मिलनेसे रात-दिन तुम्हारी ही चिन्ता करते रहते हैं। मैं अभी जाकर उन्हें तुम्हारी स्थिति सुनाऊँगा ॥ ४८–५० ॥ और रघुनाथजी उसे सुनते ही सुग्रीव, लक्ष्मण और अन्यान्य वानर सेनापतियोंके साथ तुम्हारे पास आयेंगे॥५१॥ तथा रावणको कुटुम्बसहित मारकर तुम्हें अपनी राजधानी अयोध्याको ले जायँगे। हे देवि! तुम मुझे कोई ऐसा चिह्न दो जिससे भगवान् मेरा विश्वास करें" ॥ ५२ ॥ मेरे इस प्रकार कहनेपर उन्होंने अपने केशपाशमें स्थित अपनी प्रिया चूडामणि दी और पहले

दृष्ट्वा काकेन यद्वृत्तं चित्रकूटगिरौ पुरा ॥५३॥
तदप्याहाश्रुपूर्णाक्षी कुशलं ब्रूहि राघवम् ।
लक्ष्मणं ब्रूहि मे किञ्चिद्दुरुक्तं भाषितं पुरा ॥५४॥
तत्क्षमस्वाज्ञभावेन भाषितं कुलनन्दन ।
तारयेन्मां यथा रामस्तथा कुरु कृपान्वितः ॥५५॥

चित्रकूट पर्वतपर काकके साथ जो कुछ हुआ था वह सब भी सुनाया तथा नेत्रोंमें जल भरकर कहा—"रघुनाथजीसे मेरी कुशल कहना और लक्ष्मणजीसे कहना कि हे कुलनन्दन ! मैंने पहले तुमसे जो कुछ कठोर वचन कहे थे उन अज्ञानवश कहे हुए वाक्योंके लिये मुझे क्षमा करें। इसके सिवा जिस प्रकार रघुनाथजी कृपा करके मेरा उद्धार करें वही चेष्टा करना" ॥५३–५५॥

इत्युक्त्वा रुदती सीता दुःखेन महताऽऽवृता ।
मयाऽप्याश्वासिता राम वदता सर्वमेव ते ॥५६॥
ततः प्रस्थापितो राम त्वत्समीपमिहागतः ।
तदागमनवेलायामशोकवनिकां प्रियाम् ॥५७॥
उत्पाट्य राक्षसांस्तत्र बहून्हत्वा क्षणादहम् ।
रावणस्य सुतं हत्वा रावणेनाभिभाष्य च ॥५८॥
लङ्कामशेषतो दग्ध्वा पुनरप्यगमं क्षणात् ।

"ऐसा कहकर सीताजी महान् दुःखमें भरकर रोने लगीं; मैंने भी उन्हें आपका सब वृत्तान्त सुनाकर ढाँढस बँधाया और फिर उनसे विदा होकर आपके पास चला आया। आती-बार मैंने रावणकी प्रिय अशोक वाटिका उजाड़ दी और एक क्षणमें ही बहुतसे राक्षस मार डाले। रावणके पुत्रको भी मारा और रावणसे वार्तालाप कर लंकाको सब ओरसे जलाकर फिर क्षणभरमें ही यहाँ चला आया।"

श्रुत्वा हनूमतो वाक्यं रामोऽत्यन्तप्रहृष्टधीः ॥५९॥
हनूमंस्ते कृतं कार्यं देवैरपि सुदुष्करम् ।
उपकारं न पश्यामि तव प्रत्युपकारिणः ॥६०॥
इदानीं ते प्रयच्छामि सर्वस्वं मम मारुते ।
इत्यालिङ्ग्य समाकृष्य गाढं वानरपुङ्गवम् ॥६१॥
सार्द्रनेत्रो रघुश्रेष्ठः परां प्रीतिमवाप सः ।
हनूमन्तमुवाचेदं राघवो भक्तवत्सलः ॥६२॥
परिरम्भो हि मे लोके दुर्लभः परमात्मनः ।
अतस्त्वं मम भक्तोऽसि प्रियोऽसि हरिपुङ्गव ॥६३॥

हनुमान्जीके ये वचन सुन श्रीरामचन्द्रजी अति प्रसन्न होकर कहने लगे–॥५६–५९॥ "हनुमन् ! तुमने जो कार्य किया है वह देवताओंसे भी होना कठिन है, मैं इसके बदलेमें तुम्हारा क्या उपकार करूँ—सो नहीं जानता ॥६०॥ लो, मैं अभी तुम्हें अपना सर्वस्व सौंपता हूँ।" ऐसा कह उन्होंने वानरश्रेष्ठ हनुमान्जीको खींचकर गाढ़ आलिङ्गन किया ॥ ६१ ॥ उनके नेत्रोंमें जल भर आया और हृदयमें परम प्रेम उमड़ने लगा। तब भक्तवत्सल रघुनाथजीने हनुमान्जीसे कहा–॥ ६२ ॥ "संसारमें मुझ परमात्माका आलिङ्गन मिलना अत्यन्त दुर्लभ है, हे वानरश्रेष्ठ ! (तुम्हें यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है) अतः तुम मेरे परम भक्त और प्रिय हो" ॥ ६३ ॥

यत्पादपद्मयुगलं तुलसीदलाद्यैः
सम्पूज्य विष्णुपदवीमतुलां प्रयान्ति ।
तेनैव किं पुनरसौ परिरब्धमूर्तीं
रामेण वायुतनयः कृतपुण्यपुञ्जः ॥६४॥

हे पार्वति ! जिनके चरणारविन्दयुगलका तुलसीदल आदिसे पूजन कर भक्तजन अतुलनीय विष्णुपद प्राप्त करते हैं उन्हीं रामने जिनके शरीरका आलिङ्गन किया उन पवित्र कर्म करनेवाले पवनपुत्रके विषयमें क्या कहा जाय ? ॥ ६४ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे
सुन्दरकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

समाप्तमिदं सुन्दरकाण्डम्

ॐ

अध्यात्मरामायण

युद्धकाण्ड

प्रथम सर्ग

वानर-सेनाका प्रस्थान।

श्रीमहादेव उवाच

यथावद्धापितं वाक्यं श्रुत्वा रामो हनूमतः।
उवाचानन्तरं वाक्यं हर्षेण महताऽऽवृतः॥ १॥
कार्यं कृतं हनुमता देवैरपि सुदुष्करम्।
मनसाऽपि यदन्येन स्मर्तुं शक्यं न भूतले॥ २॥
शतयोजनविस्तीर्णं लङ्घयेत्कः पयोनिधिम्।
लङ्कां च राक्षसैर्गुप्तां को वा धर्षयितुं क्षमः॥ ३॥
भृत्यकार्यं हनुमता कृतं सर्वमशेषतः।
सुग्रीवस्येदृशो लोके न भूतो न भविष्यति॥ ४॥
अहं च रघुवंशश्च लक्ष्मणश्च कपीश्वरः।
जानक्या दर्शनेनाद्य रक्षिताःस्मो हनूमता॥ ५॥
सर्वथा सुकृतं कार्यं जानक्याः परिमार्गणम्।
समुद्रं मनसा स्मृत्वा सीदतीव मनो मम॥ ६॥
कथं नक्रझषाकीर्णं समुद्रं शतयोजनम्।
लङ्घयित्वा रिपुं हन्यां कथं द्रक्ष्यामि जानकीम्॥७॥
श्रुत्वा तु रामवचनं सुग्रीवः प्राह राघवम्।
समुद्रं लङ्घयिष्यामो महानक्रझषाकुलम्॥८॥
लङ्कां च विधमिष्यामो हनिष्यामोऽद्य रावणम्।
चिन्तां त्यज रघुश्रेष्ठ चिन्ता कार्यविनाशिनी॥९॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति! हनुमान्‌जीके ज्यों-के-त्यों कहे हुए वाक्योंको सुननेके अनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने अति हर्षसे भरकर ये वचन कहे—॥ १॥ "हनुमान्‌जीने जो कार्य किया है उसका करना देवताओंको भी अति कठिन है, पृथ्वीतलपर और कोई तो उसका मनसे भी स्मरण नहीं कर सकता॥ २॥ भला ऐसा कौन है जो सौ योजन विस्तारवाले समुद्रको लाँघने और राक्षसोंसे सुरक्षिता लङ्कापुरीका ध्वंस करनेमें समर्थ हो?॥ ३॥ हनुमान्‌ने सुग्रीवके समग्र सेवक-धर्मको खूब निभाया। संसारमें ऐसा न कोई हुआ और न आगे होगा ही॥ ४॥ हनुमान्‌ने जानकीजीको देखकर आज मुझको तथा रघुवंश, लक्ष्मण और सुग्रीव आदि सभीको बचा लिया है॥५॥ जानकीजीकी खोजका कार्य तो बिलकुल ठीक हो गया, किन्तु समुद्रकी याद आनेसे मेरा मन व्यथित-सा होने लगता है॥ ६॥ नाके और मकरोंसे भरे हुए सौ योजन विस्तारवाले समुद्रको लाँघकर मैं शत्रुको कैसे मारूँगा? और जानकीजीको कैसे देख सकूँगा?॥७॥

श्रीरघुनाथजीके ये वचन सुनकर सुग्रीव उनसे बोला—"हम बड़े-बड़े नाके और मछलियोंसे पूर्ण समुद्रको लाँघ जायँगे और शीघ्र ही लङ्काको विध्वंस कर रावणका भी नाश करेंगे। रघुनाथजी! आप चिन्ता छोड़िये, चिन्ता तो कार्य बिगाड़नेवाली होती है

एतान्पश्य महासत्त्वान् शूरान्वानरपुङ्गवान् ।
त्वत्प्रियार्थं समुद्युक्तान्प्रवेष्टुमपि पावकम् ॥१०॥
समुद्रतरणे बुद्धिं कुरुष्व प्रथमं ततः ।
दृष्ट्वा लङ्कां दशग्रीवो हत इत्येव मन्महे ॥ ११ ॥
नहि पश्याम्यहं कञ्चित्त्रिषु लोकेषु राघव ।
गृहीतधनुषो यस्ते तिष्ठेदभिमुखो रणे ॥१२॥
सर्वथा नो जयो राम भविष्यति न संशयः ।
निमित्तानि च पश्यामि तथाभूतानि सर्वशः॥१३॥

॥ ८–९ ॥ आप इन महापराक्रमी और शूरवीर वानर-वीरोंको देखिये । ये आपका प्रिय करनेके लिये अग्निमें प्रवेश करनेको भी तैयार हैं ॥ १० ॥ पहले समुद्र पार करनेका विचार कीजिये, फिर लङ्काके तो दर्शन होते ही हम रावणको मरा हुआ ही समझते हैं ॥ ११ ॥ हे राघव ! त्रिलोकीमें मुझे ऐसा कोई वीर दिखायी नहीं देता जो आपके धनुष ग्रहण करनेपर युद्धमें सामने डटा रहे ॥ १२ ॥ हे राम ! इसमें तनिक भी सन्देह नहीं सब प्रकारसे जीत हमारी ही होगी, क्योंकि मुझे सब ओर ऐसे ही कारण (शकुन) दिखायी दे रहे हैं" ॥ १३ ॥

सुग्रीववचनं श्रुत्वा भक्तिवीर्यसमन्वितम् ।
अङ्गीकृत्याब्रवीद्रामो हनूमन्तं पुरःस्थितम्॥१४॥
येन केन प्रकारेण लङ्घयामो महार्णवम् ।
लङ्कास्वरूपं मे ब्रूहि दुःसाध्यं देवदानवैः ॥१५॥
ज्ञात्वा तस्य प्रतीकारं करिष्यामि कपीश्वर ।
श्रुत्वा रामस्य वचनं हनूमान्विनयान्वितः ॥१६॥
उवाच प्राञ्जलिर्देव यथा दृष्टं ब्रवीमि ते ।
लङ्का दिव्या पुरी देव त्रिकूटशिखरे स्थिता ॥१७॥
स्वर्णप्राकारसहिता स्वर्णाट्टालकसंयुता ।
परिखाभिः परिवृता पूर्णाभिर्निर्मलोदकैः ॥१८॥
नानोपवनशोभाढ्या दिव्यवापीभिरावृता ।
गृहैर्विचित्रशोभाढ्यैर्मणिस्तम्भमयैः शुभैः ॥१९॥
पश्चिमद्वारमासाद्य गजवाहाः सहस्रशः ।
उत्तरे द्वारि तिष्ठन्ति साश्ववाहाः सपत्तयः ॥२०॥
तिष्ठन्त्यर्बुदसङ्ख्याकाः प्राच्यामपि तथैव च ।
रक्षिणो राक्षसा वीर द्वारं दक्षिणमाश्रिताः ॥२१॥
मध्यकक्षेऽप्यसङ्ख्याता गजाश्वरथपत्तयः ।
रक्षयन्ति सदा लङ्कां नानास्त्रकुशलाः प्रभो ॥२२॥

सुग्रीवके ये भक्ति और पुरुषार्थसे भरे वचन सुनकर भगवान् रामने उन्हें सादर स्वीकार किया और फिर सामने खड़े हुए हनुमान्‌जीसे कहा—॥१४॥ "हम जैसे-तैसे समुद्र तो पार करेंगे ही, किन्तु तुम लङ्काका रूप तो बताओ । सुना है, उसे जीतना तो देवता और दानवोंको भी अत्यन्त कठिन है ॥ १५ ॥ हे कपीश्वर ! उसका स्वरूप विदित होनेपर मैं उसका कोई प्रतिकार सोचूँगा ।"

रामचन्द्रजीके ये वचन सुनकर हनुमान्‌जीने विनयपूर्वक हाथ जोड़कर कहा—"देव ! मैंने जैसा कुछ देखा है वह आपसे निवेदन करता हूँ । दिव्यपुरी लङ्का त्रिकूटपर्वतके शिखरपर बसी हुई है ॥१६–१७॥ उसका सोनेका परकोटा है और उसमें सोनेकी ही अट्टालिकाएँ हैं तथा वह निर्मल जलसे भरी खाइयोंसे घिरी हुई है॥ १८ ॥ अनेकों उपवनोंके कारण उसकी अत्यन्त शोभा हो रही है और उसमें जहाँ-तहाँ बहुत-सी बावड़ियाँ तथा विचित्रशोभासम्पन्न मणि-स्तम्भयुक्त भवन शोभायमान हैं ॥१९॥ उसके पश्चिम-द्वारपर हजारों गजारोही, उत्तरद्वारपर पैदल सेनाके सहित बहुत-से घुड़सवार, पूर्वद्वारपर एक अरब राक्षस वीर और दक्षिणद्वारपर भी इतने ही रक्षक रहते हैं ॥ २०–२१ ॥ हे प्रभो ! उसके मध्यभागमें भी हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंकी असंख्य सेना रहकर नगरकी रक्षा करती है । वे सब नाना प्रकारके शस्त्र चलानेमें अत्यन्त कुशल हैं ॥ २२ ॥ इस प्रकार लङ्कामें

सङ्क्रमैर्विविधैर्लङ्का शतघ्नीभिश्च संयुता ।
एवं स्थितेऽपि देवेश शृणु मे तत्र चेष्टितम् ॥२३॥
दशाननबलौघस्य चतुर्थांशो मया हतः ।
दग्ध्वा लङ्कां पुरीं स्वर्णप्रासादो धर्षितो मया ॥२४॥
शतघ्न्यः सङ्क्रमाश्चैव नाशिता मे रघूत्तम ।
देव त्वद्दर्शनादेव लङ्का भस्मीकृता भवेत् ॥२५॥
प्रस्थानं कुरु देवेश गच्छामो लवणाम्बुधेः ।
तीरं सह महावीरैर्वानरौघैः समन्ततः ॥२६॥
श्रुत्वा हनूमतो वाक्यमुवाच रघुनन्दनः ।
सुग्रीव सैनिकान्सर्वान्प्रस्थानायाभिनोदय ॥२७॥
इदानीमेव विजयो मुहूर्तः परिवर्तते ।
अस्मिन्मुहूर्ते गत्वाऽहं लङ्कां राक्षससङ्कुलाम् ॥२८॥
सप्राकारां सुदुर्धर्षां नाशयामि सरावणाम् ।
आनेष्यामि च सीतां मे दक्षिणाक्षि स्फुरत्यधः ॥२९॥
प्रयातु वाहिनी सर्वा वानराणां तरस्विनाम् ।
रक्षन्तु यूथपाः सेनामग्रे पृष्ठे च पार्श्वयोः ॥३०॥
हनूमन्तमथारुह्य गच्छाम्यग्रेऽङ्गदं ततः ।
आरुह्य लक्ष्मणो यातु सुग्रीव त्वं मया सह ॥३१॥
गजो गवाक्षो गवयो मैन्दो द्विविद एव च ।
नलो नीलः सुषेणश्च जाम्बवांश्च तथाऽपरे ॥३२॥
सर्वे गच्छन्तु सर्वत्र सेनायाः शत्रुघातिनः ।
इत्याज्ञाप्य हरीन् रामः प्रतस्थे सहलक्ष्मणः ॥३३॥
सुग्रीवसहितो हर्षात्सेनामध्यगतो विभुः ।
वारणेन्द्रनिभाः सर्वे वानराः कामरूपिणः ॥३४॥
क्ष्वेलन्तः परिगर्जन्तो जग्मुस्ते दक्षिणां दिशम् ।
भक्षयन्तो ययुः सर्वे फलानि च मधूनि च ॥३५॥
ह्रुवन्तो राघवस्याग्रे हनिष्यामोऽद्य रावणम् ।

जानेके मार्ग नाना प्रकारके संक्रम (सुरंग) और शतघ्नियों (तोपों) से सुरक्षित हैं; किन्तु हे देवेश्वर ! यह सब कुछ होते हुए भी मैंने जो कुछ किया है वह सुनिये ॥ २३ ॥ मैंने रावणकी चौथाई सेना मार डाली और लङ्कापुरीको जलाकर उसका सोनेका महल नष्ट कर दिया ॥२४॥ हे रघुश्रेष्ठ ! संक्रमों और तोपोंको मैंने तोड़ डाला। हे देव ! (मुझे तो विश्वास है) आपकी दृष्टि पड़ते ही लङ्का भस्मीभूत हो जायगी ॥ २५ ॥ हे देवेश्वर ! अब चलनेकी तैयारी कीजिये। हम सब ओरसे महाबलवान् वानर-वीरोंकी सेना लेकर क्षार (खारे पानीके) समुद्रके तटपर चलें" ॥ २६ ॥

हनुमान्‌जीका कथन सुनकर श्रीरघुनाथजीने कहा—"सुग्रीव ! सब सैनिकोंको इसी समय कूच करनेकी आज्ञा दो, क्योंकि इस समय विजयनामक मुहूर्त्त बीत रहा है। इस मुहूर्त्तमें जाकर मैं राक्षससंकुलित लङ्काको, जो परकोटे आदिके कारण अति दुर्जय है, रावणके सहित नष्ट कर दूँगा और सीताजीको ले आऊँगा। इस समय मेरी दायीं आँखका नीचेका भाग फड़क रहा है ॥ २७–२९ ॥ इसी समय बलवान् वानरोंकी सम्पूर्ण सेना चले; जो यूथपति हों वे अपने-अपने यूथकी आगे-पीछे और इधर-उधरसे रक्षा करें ॥३०॥ मैं हनुमान्‌के कन्धेपर चढ़कर सबसे आगे चलता हूँ, उसके पीछे लक्ष्मण अंगदके ऊपर चढ़कर चलें और हे सुग्रीव ! तुम मेरे साथ चलो ॥ ३१ ॥ गज, गवाक्ष, गवय, मैन्द, द्विविद, नल, नील, सुषेण और जाम्बवान् तथा शत्रुओंका नाश करनेवाले और भी समस्त सेनापतिगण सेनाके चारों ओर चलें।" वानरोंको इस प्रकार आज्ञा दे श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीके सहित कूच किया ॥ ३२–३३ ॥

भगवान् राम अति हर्षसे सुग्रीवके साथ सेनाके बीचमें जा रहे थे। समस्त वानरगण गजराजके समान बड़े डीलवाले और इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले थे ॥३४॥ वे सब बड़े वेगसे उछलते-कूदते, गरजते और फल तथा मधु खाते दक्षिण दिशाको चले ॥ ३५ ॥ इस प्रकार वे अतुल पराक्रमी वानरश्रेष्ठ श्रीरघुनाथजीके

एवं ते वानरश्रेष्ठा गच्छन्त्यतुलविक्रमाः ॥३६॥
हरिभ्यामुह्यमानौ तौ शुशुभाते रघूत्तमौ ।
नक्षत्रैः सेवितौ यद्वच्चन्द्रसूर्याविवाम्बरे ॥३७॥
आवृत्य पृथिवीं कृत्स्नां जगाम महती चमूः ।
प्रस्फोटयन्तः पुच्छाग्रानुद्वहन्तश्च पादपान् ॥३८॥
शैलानारोहयन्तश्च जग्मुर्मारुतवेगतः ।
असङ्ख्याताश्च सर्वत्र वानराः परिपूरिताः ॥३९॥
हृष्टास्ते जग्मुरत्यर्थं रामेण परिपालिताः ।
गता चमूर्दिवारात्रं क्वचिन्नासज्जत क्षणम् ॥४०॥
काननानि विचित्राणि पश्यन्मलयसह्ययोः ।
ते सह्यं समतिक्रम्य मलयं च तथा गिरीन् ॥४१॥
आययुश्चानुपूर्व्येण समुद्रं भीमनिःस्वनम् ।
अवतीर्य हनूमन्तं रामः सुग्रीवसंयुतः ॥४२॥
सलिलाभ्याशमासाद्य रामो वचनमब्रवीत् ।
आगताः स्मो वयं सर्वे समुद्रं मकरालयम् ॥४३॥
इतो गन्तुमशक्यं नो निरुपायेन वानराः ।
अत्र सेनानिवेशोऽस्तु मन्त्रयामोऽस्य तारणे ॥४४॥

सामने 'हम आज ही रावणको मार डालेंगे' ऐसा कहते हुए जा रहे थे ॥ ३६ ॥ हनुमान् और अंगदके कन्धोंपर जाते हुए वे दोनों रघुश्रेष्ठ ऐसे शोभायमान हो रहे थे मानो आकाश-मण्डलमें नक्षत्रोंसे सुसेवित सूर्य और चन्द्रमा हों ॥ ३७ ॥ वह महान् सेना सम्पूर्ण पृथिवी-को घेरकर चल रही थी । वानरगण अपनी पूँछ फटकारते और पेड़ोंको उखाड़ते हुए पर्वतोंपर उछलते-कूदते वायुवेगसे जा रहे थे । उस समय सब ओर असंख्य वानर भरे हुए दीख पड़ते थे ॥ ३८-३९ ॥ भगवान् रामसे सुरक्षित होकर वे प्रसन्नतापूर्वक बड़ी तेजीसे जा रहे थे । वह वानर-सेना रात-दिन चलती थी, कहीं एक क्षणको भी न रुकती थी ॥ ४० ॥ अन्तमें वे सबलोग मलयाचल और सह्याद्रिके विचित्र वनोंको देखते हुए उन दोनों पर्वतोंको पार कर क्रमशः भयङ्कर गर्जना करनेवाले समुद्रके तटपर पहुँच गये । तब श्रीरामचन्द्रजी हनुमान्‌जीके कन्धेसे उतरकर सुग्रीवके साथ जलके निकट आये और बोले—"हे वानरगण ! हमलोग मकरादिसे पूर्ण समुद्रके तटपर तो आ गये, किन्तु अब आगे बिना कोई विशेष उपाय किये हम नहीं जा सकते । अतः अब यहीं सेनाकी छावनी डाली जाय । हमलोग समुद्र पार करनेके विषयमें परस्पर परामर्श करेंगे" ॥ ४१–४४ ॥

श्रुत्वा रामस्य वचनं सुग्रीवः सागरान्तिके ।
सेनां न्यवेशयत्क्षिप्रं रक्षितां कपिकुञ्जरैः ॥४५॥
ते पश्यन्तो विषेदुस्तं सागरं भीमदर्शनम् ।
महोर्मितिमिरज्ञाढ्यं भीमनक्रभयङ्करम् ॥४६॥
अगाधं गगनाकारं सागरं वीक्ष्य दुःखिताः ।
तरिष्यामः कथं घोरं सागरं वरुणालयम् ॥४७॥
हन्तव्योऽस्माभिरद्यैव रावणो राक्षसाधमः ।
इति चिन्ताकुलाः सर्वे रामपार्श्वे व्यवस्थिताः ॥४८॥
रामः सीतामनुस्मृत्य दुःखेन महताऽऽवृतः ।
विलप्य जानकीं सीतां बहुधा कार्यमानुषः ॥४९॥

रामके वचन सुनकर सुग्रीवने तुरन्त ही समुद्रके निकट सेनाका पड़ाव डाला । और बहुत-से प्रधान-प्रधान वानर-वीर उसकी रक्षा करने लगे ॥ ४५ ॥ वे लोग उत्ताल तरङ्गोंसे पूर्ण तथा दारुण नाके आदिके कारण भयङ्कर समुद्रको देखकर मन-ही-मन विषाद करने लगे ॥ ४६ ॥ उस आकाशके समान अगाध समुद्रको देखकर उन्हें बड़ा दुःख हुआ और वे सोचने लगे कि 'हम इस घोर वरुणालयको कैसे पार करेंगे ॥४७॥ राक्षसाधम रावणको तो हमें आज ही मारना है (पर मारें कैसे ?)' इस प्रकार सब लोग अति चिन्ताग्रस्त हो श्रीरघुनाथजीके पास बैठ गये ॥ ४८ ॥

इधर श्रीरामचन्द्रजी भी सीताकी यादकर महान् दुःखमें डूब गये । वे यद्यपि एक अद्वितीय चिन्मात्र

अद्वितीयश्चिदात्मैकः परमात्मा सनातनः ।
यस्तु जानाति रामस्य स्वरूपं तत्त्वतो जनः ॥५०॥
तं न स्पृशति दुःखादि किमुतानन्दमव्ययम् ।
दुःखहर्षभयक्रोधलोभमोहमदादयः ॥५१॥
अज्ञानलिङ्गान्येतानि कुतः सन्ति चिदात्मनि ।
देहाभिमानिनो दुःखं न देहस्य चिदात्मनः ॥५२॥
सम्प्रसादे द्वयाभावात्सुखमात्रं हि दृश्यते ।
बुद्ध्याद्यभावात्संशुद्धे दुःखं तत्र न दृश्यते ।
अतो दुःखादिकं सर्वं बुद्धेरेव न संशयः ॥५३॥
रामः परात्मा पुरुषः पुराणो
नित्योदितो नित्यसुखो निरीहः ।
तथापि मायागुणसङ्गतोऽसौ
सुखीव दुःखीव विभाव्यतेऽबुधैः ॥५४॥

परमात्मा सनातन पुरुष थे, तथापि कार्यवश मनुष्यरूप होनेके कारण जानकीजीके लिये नाना प्रकारसे विलाप करने लगे। जो पुरुष परमात्मा रामका वास्तविक स्वरूप जानता है उसे भी दुःखादि स्पर्श नहीं कर सकते, फिर आनन्दस्वरूप अविनाशी भगवान् रामकी तो बात ही क्या है ? दुःख, हर्ष, भय, क्रोध, लोभ, मोह और मद आदि सब अज्ञानके ही चिह्न हैं; चिदात्मा राममें ये कैसे हो सकते हैं ? देहका दुःख देहाभिमानीको ही होता है, चेतन आत्माको नहीं ॥४९–५२॥ समाधि-अवस्थामें द्वैत-प्रपञ्चका अभाव हो जानेके कारण वहाँ केवल सुखका ही साक्षात्कार होता है। उस अवस्थामें बुद्धि आदिका अभाव हो जानेसे शुद्ध आत्मामें दुःखका लेश भी दिखायी नहीं देता। अतः इसमें सन्देह नहीं ये दुःखादि सब बुद्धिके ही धर्म हैं॥५३॥ भगवान् राम परमात्मा, पुराणपुरुष, नित्य-प्रकाश-स्वरूप, नित्यसुख-स्वरूप और निरीह हैं; किन्तु अज्ञानी पुरुषोंको वे मायिक गुणोंके सम्बन्धसे सुखी या दुःखी-से प्रतीत होते हैं ॥ ५४ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे
युद्धकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥१॥

द्वितीय सर्ग

रावणद्वारा विभीषणका तिरस्कार।

श्रीमहादेव उवाच

लङ्कायां रावणो दृष्ट्वा कृतं कर्म हनूमता ।
दुष्करं दैवतैर्वाऽपि हिया किञ्चिदवाङ्मुखः ॥ १ ॥
आहूय मन्त्रिणः सर्वानिदं वचनमब्रवीत् ।
हनूमता कृतं कर्म भवद्भिर्दृष्टमेव तत् ॥ २ ॥
प्रविश्य लङ्कां दुर्धर्षां दृष्ट्वा सीतां दुरासदाम् ।
हत्वा च राक्षसान्वीरानक्षं मन्दोदरीसुतम् ॥ ३ ॥
दग्ध्वा लङ्कामशेषेण लङ्घयित्वा च सागरम् ।
युष्मान्सर्वानतिक्रम्य स्वस्थोऽगात्पुनरेव सः ॥४॥
किं कर्तव्यमितोऽस्माभिर्यूयं मन्त्रविशारदाः ।
मन्त्रयध्वं प्रयत्नेन यत्कृतं मे हितं भवेत् ॥ ५ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! इधर लङ्कामें श्रीहनुमान्‌जीका देवताओंके लिये भी दुष्कर कृत्य देख रावणने अपने समस्त मन्त्रियोंको बुलाकर लज्जासे शिर नीचा करके कहा—"हनुमान्‌ने जो-जो कर्म किया वह सब आप लोगोंने देखा ही है॥१–२॥ वह दुष्प्रवेश्य लङ्कामें घुसकर सर्वथा दुष्प्राप्य सीतासे मिला तथा उसने अन्य राक्षस वीरोंके साथ मन्दोदरीके पुत्र अक्षको मारकर सम्पूर्ण लङ्काको जला दिया और फिर आप सब लोगोंका तिरस्कार कर कुशलपूर्वक समुद्र लाँघकर लौट गया ॥ ३–४ ॥ आप सब लोग नीति-निपुण हैं, अतः अब हमें क्या करना चाहिये और क्या करनेसे हमारा हित हो सकता है—इसका प्रयत्नपूर्वक विचार कीजिये" ॥ ५ ॥

रावणस्य वचः श्रुत्वा राक्षसास्तमथाब्रुवन् ।
देव शङ्का कुतो रामात्तव लोकजितो रणे ॥ ६ ॥
इन्द्रस्तु बद्ध्वा निक्षिप्तः पुत्रेण तव पत्तने ।
जित्वा कुबेरमानीय पुष्पकं भुज्यते त्वया ॥ ७ ॥
यमो जितः कालदण्डाद्भयं नाभूत्तव प्रभो ।
वरुणो हुङ्कृतेनैव जितः सर्वेऽपि राक्षसाः ॥ ८ ॥
मयो महासुरो भीत्या कन्यां दत्त्वा स्वयं तव ।
त्वद्वशे वर्ततेऽद्यापि किमुतान्ये महासुराः ॥ ९ ॥
हनूमद्धर्षणं यत्तु तदवज्ञाकृतं च नः ।
वानरोऽयं किमस्माकमस्मिन्पौरुषदर्शने ॥१०॥
इत्युपेक्षितमस्माभिर्धर्षणं तेन किं भवेत् ।
वयं प्रमत्ताः किं तेन वञ्चिताः सो हनूमता ॥११॥
जानीमो यदि तं सर्वे कथं जीवन् गमिष्यति ।
आज्ञापय जगत्कृत्स्नमवानरममानुषम् ॥१२॥
कृत्वाऽऽयास्यामहे सर्वे प्रत्येकं वा नियोजय ।

कुम्भकर्णस्तदा प्राह रावणं राक्षसेश्वरम् ॥१३॥
आरब्धं यत्त्वया कर्म स्वात्मनाशाय केवलम् ।
न दृष्टोऽसि तदा भाग्यात्त्वं रामेण महात्मना ॥१४॥
यदि पश्यति रामस्त्वां जीवन्नायासि रावण ।
रामो न मानुषो देवः साक्षान्नारायणोऽव्ययः॥१५॥
सीता भगवती लक्ष्मी रामपत्नी यशस्विनी ।
राक्षसानां विनाशाय त्वयाऽऽनीता सुमध्यमा ।१६।
विषपिण्डमिवागीर्य महामीनो यथा तथा ।
आनीता जानकी पश्चात्त्वया किं वा भविष्यति॥१७॥
यद्यप्यनुचितं कर्म त्वया कृतमजानता ।
सर्वं समं करिष्यामि स्वस्थचित्तो भव प्रभो ॥१८॥

रावणके वचन सुनकर राक्षसोंने उससे कहा—"देव ! आपको रामसे क्या शंका है ? आपने तो युद्धमें समस्त लोकोंको जीत लिया है ॥ ६ ॥ आपके पुत्रने इन्द्रको बाँधकर अपनी राजधानीमें डाल लिया था और आप स्वयं भी कुबेरको जीतकर उसका पुष्पक विमान लाकर भोगते हैं ॥ ७ ॥ हे प्रभो ! आपने यमराजको भी जीत लिया, उनके काल्दण्डसे भी आपको कोई भय नहीं हुआ तथा वरुण और समस्त राक्षसोंको आपने हुंकारसे ही जीत लिया था ॥ ८ ॥ और महासुरोंकी तो बात ही क्या है, स्वयं मयासुर भी आपके भयसे आपको अपनी कन्या देकर अबतक आपके अधीन बना हुआ है ॥ ९ ॥ हनुमान्‌ने जो हमारा तिरस्कार किया है वह तो हमारी ही उपेक्षासे हुआ है। हमने यह सोचकर कि यह वानर है इसे पुरुषार्थ दिखानेमें क्या रक्खा है उसकी उपेक्षा कर दी थी, नहीं तो वह हमारी अवज्ञा क्या कर सकता था ? ॥ १० ॥ अतः असावधान रहनेके कारण यदि हमें हनुमान्‌ने ठग लिया तो इससे क्या हुआ ? यदि हम सब उसे जानते तो वह जीता हुआ कैसे जा सकता था ? आप हमें आज्ञा दीजिये, हम सब अभी जाकर पृथिवीको वानर और मनुष्योंसे शून्य कर आते हैं । अथवा हममेंसे एक-एकको ही इस कार्यके लिये नियुक्त कीजिये ।"

तदनन्तर राक्षसराज रावणसे कुम्भकर्ण बोला— ॥ ११-१३ ॥ "आपने जो कार्य आरम्भ किया है वह केवल आपका नाश करनेके लिये ही है । सौभाग्यवश इतना ही अच्छा हुआ कि सीताजीको चुरानेके समय महात्मा रामने आपको नहीं देखा ॥ १४ ॥ हे रावण ! यदि उस समय राम आपको देख लेते तो आप जीते-जागते नहीं लौट सकते थे । राम कोई साधारण मनुष्य नहीं हैं, वे साक्षात् अव्यय नारायणदेव हैं ॥१५॥ भगवान् रामकी पत्नी यशस्विनी सीताजी साक्षात् भगवती लक्ष्मी हैं, उस सुन्दरीको आप राक्षसोंके नाशके लिये ही लाये हैं ॥ १६ ॥ जिस प्रकार कोई महामत्स्य विषका पिण्ड निगल जाय उसी प्रकार आप (अपने नाशके लिये) जानकीको ले आये हैं, न जाने आगे क्या होना है ? ॥ १७ ॥ यद्यपि आपने अनजानमें यह बड़ा ही अनुचित कार्य किया है, तथापि आप शान्त होइये, मैं सब काम ठीक किये देता हूँ"

कुम्भकर्णवचः श्रुत्वा वाक्यमिन्द्रजिदब्रवीत् ।
देहि देव ममानुज्ञां हत्वा रामं सलक्ष्मणम् ।
सुग्रीवं वानरांश्चैव पुनर्यास्यामि तेऽन्तिकम् ॥१९॥

तत्रागतो भागवतप्रधानो
विभीषणो बुद्धिमतां वरिष्ठः ।
श्रीरामपादद्वय एकतानः
प्रणम्य देवारिमुपोपविष्टः ॥२०॥

विलोक्य कुम्भश्रवणादिदैत्या-
न्मत्तप्रमत्तानतिविस्मयेन ।
विलोक्य कामातुरमप्रमत्तो
दशाननं प्राह विशुद्धबुद्धिः ॥२१॥

न कुम्भकर्णेन्द्रजितौ च राजं-
स्तथा महापार्श्वमहोदरौ तौ ।
निकुम्भकुम्भौ च तथातिकायः
स्थातुं न शक्ता युधि राघवस्य ॥२२॥

सीताऽभिधानेन महाग्रहेण
ग्रस्तोऽसि राजन् न च ते विमोक्षः ।
तामेव सत्कृत्य महाधनेन
दत्त्वाभिरामाय सुखी भव त्वम् ॥२३॥

यावन्न रामस्य शिताः शिलीमुखा
लङ्कामभिव्याप्य शिरांसि रक्षसाम् ।
छिन्दन्ति तावद्रघुनायकस्य भो
तां जानकीं त्वं प्रतिदातुमर्हसि ॥२४॥

यावन्नगाभाः कपयो महाबला
हरीन्द्रतुल्या नखदंष्ट्रयोधिनः ।
लङ्कां समाक्रम्य विनाशयन्ति ते
तावद्द्रुतं देहि रघूत्तमाय ताम् ॥२५॥

जीवन्न रामेण विमोक्ष्यसे त्वं
गुप्तः सुरेन्द्रैरपि शङ्करेण ।
न देवराजाङ्कगतो न मृत्योः
पाताललोकानपि सम्प्रविष्टः ॥२६॥

शुभं हितं पवित्रं च विभीषणवचः खलः ।
प्रतिजग्राह नैवासौ म्रियमाण इवौषधम् ॥२७॥

॥ १८ ॥ कुम्भकर्णके ये वचन सुनकर इन्द्रजित् बोला—"प्रभो ! आप मुझे आज्ञा दीजिये, मैं अभी लक्ष्मणके सहित राम, सुग्रीव और समस्त वानरोंको मारकर आपके पास लौट आता हूँ" ॥ १९ ॥

इसी समय वहाँ भागवत-प्रधान बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ विभीषणजी आये। उनके अन्तःकरणकी वृत्ति एकाग्रता-पूर्वक भगवान् रामके चरणयुगलमें लगी हुई थी। वहाँ आकर वे देवशत्रु रावणको प्रणाम कर उसके पास बैठ गये ॥ २० ॥ वहाँ बैठकर उन्होंने एक बार कुम्भकर्ण आदि समस्त मदोन्मत्त राक्षसोंको अति विस्मयके साथ देखा। फिर यह भी देखा कि रावण कामातुर है, (वह किसीकी माननेवाला नहीं है)। तथापि अति निर्मल-बुद्धि होनेसे वे अपने कर्त्तव्यमें सावधान थे, इसलिये उन्होंने रावणसे कहा—॥ २१ ॥ "हे राजन् ! युद्धमें रघुनाथजीके सामने कुम्भकर्ण, इन्द्रजित्, महापार्श्व, महोदर, निकुम्भ, कुम्भ तथा अतिकाय आदि कोई भी नहीं ठहर सकते ॥ २२ ॥ हे राजन् ! आपको सीता नामक एक प्रबल ग्रहने ग्रस्त कर लिया है, इससे आपका छुटकारा इस तरह नहीं हो सकता। अब आप उसे सत्कारपूर्वक बहुत-से धनके साथ श्रीरामचन्द्रजीको लौटा दीजिये और सुखी हो जाइये ॥ २३ ॥ जबतक श्रीरामचन्द्रजीके तीक्ष्ण बाण लंकामें व्याप्त होकर राक्षसोंके शिर नहीं काटते, तबतक ही उचित है कि आप उन्हें जानकीजीको सौंप दें ॥ २४ ॥ नख और दाढ़ोंसे ही लड़नेवाले, सिंहके समान महाबलवान् वे पर्वताकार वानर-गण जबतक लंकामें फैलकर उसे नष्ट-भ्रष्ट नहीं करते तभीतक आप सीताजीको जल्दी-से-जल्दी श्रीरघुनाथजीको सौंप दीजिये ॥ २५ ॥ नहीं तो, भले ही इन्द्र और शंकर भी आपकी रक्षा करें, अथवा देव-राज इन्द्र और मृत्यु भी आपको गोदमें लेकर बचायें, या आप पातालमें भी घुस जायँ, तो भी रामसे आप जीवित नहीं बच सकते" ॥ २६ ॥

विभीषणके इन शुभ, हितकर और पवित्र वचनोंको दुष्ट रावणने इसी प्रकार ग्रहण नहीं किया जैसे मरने-वालापुरुष औषध ग्रहण नहीं करता ॥ २७ ॥ बल्कि

कालेन नोदितो दैत्यो विभीषणमथाब्रवीत् ।
मद्दत्तभोगैः पुष्टाङ्गो मत्समीपे वसन्नपि ॥२८॥
प्रतीपमाचरत्येष ममैव हितकारिणः ।
मित्रभावेन शत्रुर्मे जातो नास्त्यत्र संशयः ॥२९॥
अनार्येण कृतघ्नेन सङ्गतिर्मे न युज्यते ।
विनाशमभिकाङ्क्षन्ति ज्ञातीनां ज्ञातयः सदा॥३०॥
योऽन्यस्त्वेवंविधं ब्रूयाद्वाक्यमेकं निशाचरः ।
हन्मि तस्मिन् क्षणे एव धिक् त्वां रक्षःकुलाधमम्३१
रावणेनैवमुक्तः सन्परुषं स विभीषणः ।
उत्पपात समामध्याद्गदापाणिर्महाबलः ॥३२॥
चतुर्भिर्मन्त्रिभिः सार्धं गगनस्थोऽब्रवीद्वचः ।
क्रोधेन महताऽऽविष्टो रावणं दशकन्धरम् ।
मा विनाशमुपैहि त्वं प्रियवादिनमेव माम् ॥३३॥
धिक्करोषि तथापि त्वं ज्येष्ठो भ्राता पितुः समः ।
कालो राघवरूपेण जातो दशरथालये ॥३४॥
काली सीताऽभिधानेन जाता जनकनन्दिनी ।
तावुभावागतावत्र भूमेर्भारापनुत्तये ॥३५॥
तेनैव प्रेरितस्त्वं तु न शृणोषि हितं मम ।
श्रीरामः प्रकृतेः साक्षात्परस्तात्सर्वदा स्थितः॥३६॥
बहिरन्तश्च भूतानां समः सर्वत्र संस्थितः ।
नामरूपादिभेदेन तत्तन्मय इवामलः ॥३७॥
यथा नानाप्रकारेषु वृक्षेष्वेको महानलः ।
तत्तदाकृतिभेदेन भिद्यतेऽज्ञानचक्षुषाम् ॥३८॥
पञ्चकोशादिभेदेन तत्तन्मय इवात्मभौ ।
नीलपीतादियोगेन निर्मलः स्फटिको यथा ॥३९॥
स एव नित्यमुक्तोऽपि स्वमायागुणबिम्बितः ।
कालः प्रधानं पुरुषोऽव्यक्तं चेति चतुर्विधः ॥४०॥

वह दुष्ट दैत्य कालकी प्रेरणासे विभीषणसे इस प्रकार कहने लगा—"देखो, यह मेरे ही दिये हुए भोगोंसे पुष्ट होकर और मेरे ही पास रहकर भी मुझ अपने हितकर्ताके ही विरुद्ध चलता है; निःसन्देह यह मित्ररूपसे मेरा शत्रु ही प्रकट हुआ है ॥ २८-२९ ॥ इस अनार्य और कृतघ्नका मेरे साथ रहना ठीक नहीं है । प्रायः यह देखनेमें आता है कि जातिवाले अपने ही जाति-भाइयोंके नाशकी सदा इच्छा किया करते हैं ॥ ३० ॥ यदि कोई और राक्षस ऐसा एक भी वाक्य कहता तो मैं उसे उसी क्षण मार डालता । अरे नीच ! तू राक्षसकुलमें अत्यन्त अधम है, तुझे धिक्कार है" ॥ ३१ ॥

रावणके इस प्रकार कटुवचन कहनेपर महाबली विभीषण हाथमें गदा लेकर सभासे उड़े ॥ ३२ ॥ और अपने चार मन्त्रियोंके साथ आकाशमें स्थित होकर अत्यन्त क्रोधमें भरकर दशशीश रावणसे कहा—॥ ३३ ॥ "मैं तुम्हारे हितकी बात कहनेवाला हूँ; फिर भी तुम मुझे धिक्कारते हो ! तथापि मैं चाहता हूँ कि तुम्हारा नाश न हो, क्योंकि तुम मेरे बड़े भाई हो;अतः पिताके समान हो । तुम्हारा काल रघुनाथजीके रूपसे महाराज दशरथके घरमें प्रकट हो गया है ॥३४॥ और महाशक्ति काली 'सीता' नामसे जनकजीकी पुत्री हुई है । ये दोनों पृथिवीका भार उतारनेके लिये ही यहाँ आये हैं ॥ ३५ ॥ उन्हींकी प्रेरणासे तुम मेरा हितकर वचन नहीं सुनते । भगवान् राम सर्वदा साक्षात् प्रकृतिसे परे हैं ॥ ३६ ॥ वे प्राणियोंके बाहर-भीतर सर्वत्र समान भावसे स्थित हैं और नित्य निर्मल होते हुए भी नाम-रूप आदि भेदसे विभिन्न-से भासते हैं ॥३७॥ जिस प्रकार अज्ञानी पुरुषोंकी दृष्टिमें एक ही महाग्नि नाना प्रकारके वृक्षोंमें उनके आकार-भेदसे भिन्न-भिन्न प्रतीत होता है, अथवा जैसे शुद्ध स्फटिक मणि नील-पीतादि रङ्गोंकी सन्निधिमात्रसे ही नील-पीत आदि वर्णोंवाली प्रतीत होती है, वैसे ही पञ्चकोश आदिके भेदसे आत्मा तद्रूप-सा भासता है ॥ ३८-३९ ॥ वे (श्रीभगवान् ही) नित्यमुक्त होकर भी अपनी मायाके गुणोंमें प्रतिबिम्बित होकर काल, प्रधान, पुरुष और अव्यक्त इन चार प्रकारके नामोंसे कहे जाते हैं ॥ ४० ॥ वे

प्रधानपुरुषाभ्यां स जगत्कृत्स्नं सृजत्यजः ।
कालरूपेण कलनां जगतः कुरुतेऽव्ययः ॥४१॥
कालरूपी स भगवान् रामरूपेण मायया ॥४२॥
ब्रह्मणा प्रार्थितो देवस्त्वद्वधार्थमिहागतः ।
अन्यथा कथं कुर्यात्सत्यसङ्कल्प ईश्वरः ॥४३॥
हनिष्यति त्वां रामस्तु सपुत्रबलवाहनम् ।
हन्यमानं न शक्नोमि द्रष्टुं रामेण रावण ॥४४॥
त्वां राक्षसकुलं कृत्स्नं ततो गच्छामि राघवम् ।
मयि याते सुखीभूत्वा रमस्व भवने चिरम् ॥४५॥

विभीषणो रावणवाक्यतः क्षणा-
द्विसृज्य सर्वं सपरिच्छदं गृहम् ।
जगाम रामस्य पदारविन्दयोः
सेवाभिकाङ्क्षी परिपूर्णमानसः ॥४६॥

अजन्मा होकर भी प्रधान और पुरुषरूपसे सम्पूर्ण जगत्की रचना करते हैं और अविनाशी होकर भी कालरूपसे जगत्का संहार करते हैं ॥ ४१ ॥ वे ही कालरूपी भगवान् ब्रह्माकी प्रार्थनासे आपका वध करनेके लिये मायासे रामरूप होकर यहाँ आये हैं। ईश्वर सत्यसंकल्प हैं, इसलिये वे अपनी प्रतिज्ञाको अन्यथा कैसे कर सकते हैं ॥ ४२-४३ ॥ अतः राम अवश्य ही आपको पुत्र, सेना और वाहनादिके सहित मारेंगे। हे रावण ! मैं रामद्वारा सम्पूर्ण राक्षसवंश और आपका संहार होता नहीं देख सकता। अतः मैं रघुनाथजीके पास जाता हूँ। मेरे चले जानेपर आप आनन्दपूर्वक अपने महलमें बहुत समयतक भोग भोगना" ॥४४-४५॥

इस प्रकार, सन्तुष्टचित्त विभीषण रावणके कठोर भाषणसे एक क्षणमें ही समस्त सामग्रीके सहित अपने घरको छोड़कर भगवान् रामके चरणकमलोंकी सेवाकी कामनासे उनके पास चले गये ॥ ४६ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे
युद्धकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीय सर्ग

विभीषणकी शरणागति, समुद्रका त्रास तथा सेतु-बन्धका आरम्भ।

श्रीमहादेव उवाच

विभीषणो महाभागश्चतुर्भिर्मन्त्रिभिः सह ।
आगत्य गगने रामसम्मुखे समवस्थितः ॥ १ ॥
उच्चैरुवाच भोः स्वामिन् राम राजीवलोचन ।
रावणस्यानुजोऽहं ते दारहर्तुर्विभीषणः ॥ २ ॥
नाम्ना भ्रात्रा निरस्तोऽहं त्वामेव शरणं गतः।
हितमुक्तं मया देव तस्य चाविदितात्मनः ॥ ३ ॥
सीतां रामाय वैदेहीं प्रेषयेति पुनः पुनः ।
उक्तोऽपि न शृणोत्येव कालपाशवशं गतः ॥ ४ ॥
हन्तुं मां खड्गमादाय प्राद्रवद्राक्षसाधमः ।

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! तदनन्तर महाभाग विभीषण अपने चार मन्त्रियोंके साथ आकर आकाशमें श्रीरघुनाथजीके सामने उपस्थित हुए ॥ १ ॥ और ऊँचे स्वरसे कहने लगे—"हे कमलनयन प्रभो राम ! मैं आपकी भार्याका हरण करनेवाले रावणका छोटा भाई हूँ। मेरा नाम विभीषण है। मुझे भाईने निकाल दिया है, इसलिये मैं आपकी शरणमें आया हूँ। हे देव ! मैंने उस अज्ञानीके हितकी बात कही थी ॥ २-३ ॥ उससे बार-बार कहा है कि 'तुम विदेहनन्दिनी सीताको रामके पास भेज दो,' तथापि कालके वशीभूत होनेके कारण वह कुछ सुनता ही नहीं है ॥४॥ इस समय वह राक्षसाधम मुझे तलवारसे मारनेके लिये दौड़ा; तब मैं भयसे तुरन्त ही

ततोऽचिरेण सचिवैश्चतुर्भिः सहितो भयात् ॥ ५ ॥
त्वामेव भवमोक्षाय मुमुक्षुः शरणं गतः ।
विभीषणवचः श्रुत्वा सुग्रीवो वाक्यमब्रवीत् ॥ ६ ॥

विश्वासार्हो न ते राम मायावी राक्षसाधमः ।
सीताहर्तुर्विशेषेण रावणस्यानुजो बली ॥ ७ ॥
मन्त्रिभिः सायुधैरस्मान् विवरे निहनिष्यति ।
तदाज्ञापय मे देव वानरैर्हन्यतामयम् ॥ ८ ॥
ममैवं भाति ते राम बुद्ध्या किं निश्चितं वद ।
श्रुत्वा सुग्रीववचनं रामः सस्मितमब्रवीत् ॥ ९ ॥
यदीच्छामि कपिश्रेष्ठ लोकान्सर्वान्सहेश्वरान्।
निमिषार्धेन संहन्यां सृजामि निमिषार्धतः ॥१०॥
अतो मयाऽभयं दत्तं शीघ्रमानय राक्षसम् ॥११॥
सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥१२॥

रामस्य वचनं श्रुत्वा सुग्रीवो हृष्टमानसः ।
विभीषणमथानाय्य दर्शयामास राघवम् ॥१३॥
विभीषणस्तु साष्टाङ्गं प्रणिपत्य रघूत्तमम् ।
हर्षगद्गदया वाचा भक्त्या च परयान्वितः ॥१४॥
रामं श्यामं विशालाक्षं प्रसन्नमुखपङ्कजम् ।
धनुर्बाणधरं शान्तं लक्ष्मणेन समन्वितम् ॥१५॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा स्तोतुं समुपचक्रमे ॥१६॥

विभीषण उवाच

नमस्ते राम राजेन्द्र नमः सीतामनोरम ।
नमस्ते चण्डकोदण्ड नमस्ते भक्तवत्सल ॥१७॥
नमोऽनन्ताय शान्ताय रामायामिततेजसे ।
सुग्रीवमित्राय च ते रघूणां पतये नमः ॥१८॥
जगदुत्पत्तिनाशानां कारणाय महात्मने ।

अपने चार मन्त्रियोंके सहित संसार-पाशसे मुक्त होनेके लिये मुमुक्षु होकर आपकी ही शरणमें चला आया हूँ।"

विभीषणके ये वचन सुनकर सुग्रीवने कहा— ॥ ५-६ ॥ "हे राम ! इस मायावी राक्षसाधमका कुछ विश्वास न करना चाहिये। (यदि कोई और होता तब कोई विशेष चिन्ताकी बात भी नहीं थी किन्तु) यह तो सीताका हरण करनेवाले रावणका ही छोटा भाई है और वैसे भी बहुत बलवान् दिखायी देता है ॥ ७ ॥ यह अपने सशस्त्र मन्त्रियोंके साथ किसी समय एकान्त-में हमें मार डालेगा। अतः हे प्रभो ! मुझे आज्ञा दीजिये मैं इसे वानरोंसे मरवा डालूँ ॥ ८ ॥ हे राम ! मुझे तो ऐसा ही जँचता है, आपका इस विषयमें क्या निश्चय है, सो कहिये।" सुग्रीवके वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने मुसकाकर कहा—॥९॥ "हे कपिश्रेष्ठ ! यदि मेरी इच्छा हो तो मैं आधे निमेषमें ही लोकपालोंके सहित सम्पूर्ण लोकोंको नष्ट कर सकता हूँ और आधे निमेषमें ही सबको रच सकता हूँ, अतः (तुम किसी प्रकारकी चिन्ता न करो) मैं इस राक्षसको अभयदान देता हूँ, तुम इसे शीघ्र ही ले आओ ॥ १०-११ ॥ मेरा यह नियम है कि जो एक बार भी मेरी शरण आकर 'मैं तुम्हारा हूँ' ऐसा कहकर मुझसे अभय माँगता है उसे मैं समस्त प्राणियोंसे निर्भय कर देता हूँ" ॥१२॥

रामके ये वचन सुनकर सुग्रीवने अति प्रसन्नचित्तसे विभीषणको लाकर रघुनाथजीसे मिलाया ॥ १३ ॥ विभीषणने रघुनाथजीको साष्टांग प्रणाम किया और हर्षसे गद्गदकण्ठ हो परम भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर शान्तमूर्ति प्रसन्नवदनारविन्द विशालनयन श्याम-सुन्दर धनुर्बाणधारी भगवान् रामकी, लक्ष्मणजीके सहित, स्तुति करनी आरम्भ की ॥ १४–१६ ॥

विभीषण बोले—"हे राजराजेश्वर राम ! आपको नमस्कार है। हे सीताके मनमें रमण करनेवाले ! आपको नमस्कार है। हे प्रचण्डधनुर्धर ! आपको नमस्कार है। हे भक्तवत्सल ! आपको बारम्बार नमस्कार है ॥ १७ ॥ हे अनन्त, शान्त, अतुलतेजोमय, सुग्रीवसखा रघुकुलनायक भगवान् राम ! आपको नमस्कार है ॥१८॥ जो संसारकी उत्पत्ति और नाशके कारण हैं, त्रिलोकी-

त्रैलोक्यगुरवेऽनादिगृहस्थाय नमोनमः ॥१९॥
त्वमादिर्जगतां राम त्वमेव स्थितिकारणम् ।
त्वमन्ते निधनस्थानं स्वेच्छाचारस्त्वमेव हि॥२०॥
वराचराणां भूतानां बहिरन्तश्च राघव ।
व्याप्यव्यापकरूपेण भवान् भाति जगन्मयः॥२१॥
त्वन्मायया हृतज्ञाना नष्टात्मानो विचेतसः ।
गतागतं प्रपद्यन्ते पापपुण्यवशात्सदा ॥२२॥
तावत्सत्यं जगद्भाति शुक्तिकारजतं यथा ।
यावन्न ज्ञायते ज्ञानं चेतसाऽनन्यगामिना ॥२३॥
त्वदज्ञानात्सदा युक्ताः पुत्रदारगृहादिषु ।
यन्ते विषयान्सर्वानन्ते दुःखप्रदान्विभो ॥२४॥
त्वमिन्द्रोऽग्निर्यमो रक्षो वरुणश्च तथानिलः ।
कुबेरश्च तथा रुद्रस्त्वमेव पुरुषोत्तम ॥२५॥
त्वमणोरप्यणीयांश्च स्थूलात् स्थूलतरः प्रभो ।
त्वं पिता सर्वलोकानां माता धाता त्वमेव हि ॥२६॥
आदिमध्यान्तरहितः परिपूर्णोऽच्युतोऽव्ययः ।
त्वं पाणिपादरहितश्चक्षुःश्रोत्रविवर्जितः ॥२७॥
श्रोता द्रष्टा ग्रहीता च जवनस्त्वं खरान्तक ।
कोशेभ्यो व्यतिरिक्तस्त्वं निर्गुणो निरुपाश्रयः॥२८॥
निर्विकल्पो निर्विकारो निराकारो निरीश्वरः ।
षड्भावरहितोऽनादिः पुरुषः प्रकृतेः परः ॥२९॥
मायया गृह्यमाणस्त्वं मनुष्य इव भाव्यसे ।
ज्ञात्वा त्वां निर्गुणमजं वैष्णवा मोक्षगामिनः॥३०॥
अहं त्वत्पादसद्भक्तिनिःश्रेणीं प्राप्य राघव ।
इच्छामि ज्ञानयोगाख्यं सौधमारोढुमीश्वर ॥३१॥
नमः सीतापते राम नमः कारुणिकोत्तम ।
रावणारे नमस्तुभ्यं त्राहि मां भवसागरात् ॥३२॥

के गुरु और अनादिकालीन गृहस्थ* हैं उन महात्मा रामको बारम्बार नमस्कार है ॥ १९ ॥ हे राम ! आप संसारकी उत्पत्ति और स्थितिके कारण हैं तथा अन्तमें-आप ही उसके लयस्थान हैं; आप अपनी इच्छानुसार विहार करनेवाले हैं॥ २० ॥ हे राघव ! चराचर भूतोंके भीतर और बाहर व्याप्य-व्यापक-रूपसे आप विश्वरूप ही भास रहे हैं ॥ २१ ॥ आपकी मायाने जिनका सदसद्विवेक हर लिया है वे नष्ट-बुद्धि मूढ पुरुष अपने पाप-पुण्यके वशीभूत होकर संसारमें बारम्बार आते-जाते रहते हैं ॥ २२ ॥ जबतक मनुष्य एकाग्र चित्तसे आपके ज्ञानस्वरूपको नहीं जानता तभीतक सीपीमें चाँदीके समान यह संसार सत्य प्रतीत होता है ॥ २३ ॥ हे विभो ! आपको न जाननेसे ही लोग पुत्र, स्त्री और गृह आदिमें आसक्त होकर अन्तमें दुःख देनेवाले विषयोंमें सुख मानते हैं॥ २४ ॥ हे पुरुषोत्तम ! आप ही इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण और वायु हैं तथा आप ही कुबेर और रुद्र हैं॥ २५ ॥ हे प्रभो ! आप अणु-से-अणु और महान्-से-महान् हैं तथा आप ही समस्त लोकोंके पिता, माता और धाता (धारण-पोषण करनेवाले) हैं ॥२६॥आप आदि, मध्य और अन्तसे रहित सर्वत्र परिपूर्ण अच्युत और अविनाशी हैं । आप हाथ-पाँवसे रहित तथा नेत्र और कर्णहीन हैं ॥ २७ ॥ तथापि हे खरान्तक ! आप सब कुछ देखनेवाले, सब कुछ सुननेवाले, सब कुछ ग्रहण करनेवाले और बड़े वेगवान् हैं । हे प्रभो ! आप अन्नमय आदि पाँचों कोशोंसे रहित तथा निर्गुण और निराश्रय हैं ॥ २८ ॥ आप निर्विकल्प, निर्विकार और निराकार हैं, आपका कोई प्रेरक नहीं है, आप (उत्पत्ति, वृद्धि, परिणाम, क्षय, जीर्णता और नाश—इन) छः भाव-विकारोंसे रहित हैं तथा प्रकृतिसे अतीत अनादि पुरुष हैं ॥ २९ ॥ मायाके कारण ही आप साधारण मनुष्यके समान प्रतीत होते हैं; वैष्णवजन आपको निर्गुण और अजन्मा जानकर मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥३०॥ हे राघव ! हे प्रभो ! मैं आपके चरण-कमलकी विशुद्ध भक्तिरूप सीढ़ी पाकर ज्ञानयोग नामक राजभवनके शिखरपर चढ़ना चाहता हूँ ॥ ३१ ॥ हे कारुणिकश्रेष्ठ सीतापते राम ! आपको नमस्कार है; हे रावणारे ! आपको बारम्बार नमस्कार है; आप इस संसार-सागरसे मेरी रक्षा कीजिये"॥३२॥

* प्रकृतिरूपा पत्नीके साथ भगवान्का अनादि सम्बन्ध है, इसलिये वे अनादि गृहस्थ हैं।

ततः प्रसन्नः प्रोवाच श्रीरामो भक्तवत्सलः ।
वरं वृणीष्व भद्रं ते वाञ्छितं वरदोऽस्म्यहम् ॥३३॥

तब भक्तवत्सल भगवान् रामने प्रसन्न होकर कहा—"विभीषण ! तेरा कल्याण हो, मैं तुझे वर देना चाहता हूँ; अतः तेरी जो इच्छा हो वही वर माँग ले" ॥३३॥

विभीषण उवाच

धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि कृतकार्योऽस्मि राघव ।
त्वत्पाददर्शनादेव विमुक्तोऽस्मि न संशयः ॥३४॥
नास्ति मत्सदृशो धन्यो नास्ति मत्सदृशः शुचिः।
नास्ति मत्सदृशो लोके राम त्वन्मूर्तिदर्शनात्॥३५॥
कर्मबन्धविनाशाय त्वज्ज्ञानं भक्तिलक्षणम् ।
त्वद्ध्यानं परमार्थं च देहि मे रघुनन्दन ॥३६॥
न याचे राम राजेन्द्र सुखं विषयसम्भवम् ।
त्वत्पादकमले सक्ता भक्तिरेव सदास्तु मे ॥३७॥
ओमित्युक्त्वा पुनः प्रीतो रामः प्रोवाच राक्षसम् ।
शृणु वक्ष्यामि ते भद्र रहस्यं मम निश्चितम् ॥३८॥
मद्भक्तानां प्रशान्तानां योगिनां वीतरागिणाम् ।
हृदये सीतया नित्यं वसाम्यत्र न संशयः ॥३९॥
तस्मात्त्वं सर्वदा शान्तः सर्वकल्मषवर्जितः ।
मां ध्यात्वा मोक्ष्यसे नित्यं घोरसंसारसागरात्॥४०॥
स्तोत्रमेतत्पठेद्यस्तु लिखेद्यः शृणुयादपि ।
मत्प्रीतये ममाभीष्टं सारूप्यं समवाप्नुयात् ॥४१॥

तब रघुनाथजीने 'तथास्तु' कहकर विभीषणसे प्रसन्न होकर कहा—"भद्र ! सुनो, मैं तुम्हें अपना निश्चित रहस्य सुनाता हूँ ॥ ३८ ॥ जो मेरे शान्तस्वभाव, विरक्त और योगनिष्ठ भक्त हैं, उनके हृदयमें मैं सीताजीके सहित सदा रहता हूँ—इसमें सन्देह नहीं ॥ ३९ ॥ अतः तुम सर्वदा शान्त और पापरहित रहकर मेरा ध्यान करनेसे घोर संसार-सागरसे पार हो जाओगे ॥ ४० ॥ जो पुरुष मुझे प्रसन्न करनेके लिये इस स्तोत्रको पढ़ता, लिखता अथवा सुनता है वह मेरा प्रिय सारूप्यपद प्राप्त करता है" ॥ ४१ ॥

इत्युक्त्वा लक्ष्मणं प्राह श्रीरामो भक्तभक्तिमान् ।
पश्यत्विदानीमेवैष मम सन्दर्शने फलम् ॥४२॥
लङ्काराज्येऽभिषेक्ष्यामि जलमानय सागरात् ।
यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च यावत्तिष्ठति मेदिनी ॥४३॥
यावन्मम कथा लोके तावद्राज्यं करोत्वसौ ।
इत्युक्त्वा लक्ष्मणेनाम्बु ह्यानाय्य कलशेन तम्।४४।
लङ्काराज्याधिपत्यार्थमभिषेकं रमापतिः ।
कारयामास सचिवैर्लक्ष्मणेन विशेषतः ॥४५॥

विभीषणसे ऐसा कह भक्तवत्सल श्रीरामने लक्ष्मणजीसे कहा—"लक्ष्मण ! यह अभी मेरे दर्शनका फल देखे ॥ ४२ ॥ तुम समुद्रसे जल ले आओ; मैं इसे लंकाके राज्यपर अभिषिक्त किये देता हूँ। जबतक चन्द्र-सूर्य और पृथिवीकी स्थिति है तथा जबतक लोकमें मेरी कथा रहेगी तबतक यह लंकाका राज्य करेगा।"

ऐसा कह श्रीरमापतिने लक्ष्मणजीसे कलशमें जल मँगवाया और मन्त्रियों तथा विशेषतः लक्ष्मणजीसे उसे लंकाके राज्यपदपर अभिषिक्त कराया ॥ ४३–४५ ॥ उस समय समस्त वानर प्रसन्न होकर 'धन्य है, धन्य

साधुसाध्विति ते सर्वे वानरास्तुष्टुवुर्भृशम् ।
सुग्रीवोऽपि परिष्वज्य विभीषणमथाब्रवीत् ॥४६॥
विभीषण वयं सर्वे रामस्य परमात्मनः ।
किङ्करास्तत्र मुख्यस्त्वं भक्त्या रामपरिग्रहात् ।
रावणस्य विनाशे त्वं साहाय्यं कर्तुमर्हसि ॥४७॥

है' ऐसा कहने लगे; और सुग्रीवने विभीषणको गले लगाकर कहा—॥ ४६ ॥ "विभीषण ! हम सब परमात्मा रामके दास हैं, तथापि तुम हम सबमें प्रधान हो क्योंकि तुमने केवल भक्तिसे ही उनकी शरण ली है । अब तुम्हें रावणका नाश करानेमें हमारी सहायता करनी चाहिये" ॥ ४७ ॥

विभीषण उवाच

अहं कियान्सहायत्वे रामस्य परमात्मनः ।
किं तु दास्यं करिष्येऽहं भक्त्या शक्त्या ह्यमायया॥४८

विभीषण बोले—"मैं परमात्मा रामकी क्या सहायता कर सकता हूँ, तथापि मुझसे जैसी कुछ बनेगी निष्कपट होकर भक्तिभावसे उनकी सेवा करता रहूँगा" ॥ ४८ ॥

दशग्रीवेण सन्दिष्टः शुको नाम महासुरः ।
संस्थितो ह्यम्बरे वाक्यं सुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥४९॥
त्वामाह रावणो राजा भ्रातरं राक्षसाधिपः ।
महाकुलप्रसूतस्त्वं राजाऽसि वनचारिणाम् ॥५०॥
मम भ्रातृसमानस्त्वं तव नास्त्यर्थविप्लवः ।
अहं यदहरं भार्यां राजपुत्रस्य किं तव ॥५१॥
किष्किन्धां याहि हरिभिर्लङ्का शक्या न दैवतैः।
प्राप्तुं किं मानवैरल्पसत्त्वैर्वानरयूथपैः ॥५२॥
तं प्रापयन्तं वचनं तूर्णमुत्प्लुत्य वानराः ।
प्रापद्यन्त तदा क्षिप्रं निहन्तुं दृढमुष्टिभिः ॥५३॥
वानरैर्हन्यमानस्तु शुको राममथाब्रवीत् ।
न दूतान् घ्नन्ति राजेन्द्र वानरान्वारय प्रभो ॥५४॥
रामः श्रुत्वा तदा वाक्यं शुकस्य परिदेवितम् ।
मा वधिष्टेति रामस्तान्वारयामास वानरान् ॥५५॥
पुनरम्बरमासाद्य शुकः सुग्रीवमब्रवीत् ।
ब्रूहि राजन्दशग्रीवं किं वक्ष्यामि व्रजाम्यहम्॥५६॥

इसी समय रावणका भेजा हुआ शुक नामक महादैत्य आकाशमें स्थित होकर सुग्रीवसे इस प्रकार बोला—॥ ४९ ॥ "राक्षसराज रावण तुम्हें अपने भाईके समान मानते हैं, उन्होंने तुम्हारे लिये कहा है कि तुम बड़े कुलमें उत्पन्न हुए हो और वानरोंके राजा हो ॥ ५० ॥ तुम मेरे भाईके समान हो और तुम्हारा कोई स्वार्थघात भी नहीं हुआ है । यदि मैंने किसी राजकुमारकी स्त्रीको हर ही लिया तो उससे तुम्हें क्या ? ॥५१॥ अतः तुम अपने वानरोंके सहित किष्किन्धाको लौट जाओ । लंकाको पाना तो देवताओंके लिये भी कठिन है, फिर अल्पशक्ति मनुष्य और वानरयूथपोंकी तो बात ही क्या है ?" ॥५२॥ जिस समय शुक इस प्रकार सन्देश सुना रहा था, वानरोंने अपने सुदृढ घूँसोंसे मारनेके लिये उसे तुरन्त ही उछलकर पकड़ लिया ॥ ५३ ॥ वानरोंके मारनेपर शुकने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—"हे राजेन्द्र ! (विज्ञजन) दूतको मारा नहीं करते, अतः हे प्रभो ! इन वानरोंको रोकिये" ॥ ५४ ॥ शुकका यह करुणायुक्त वचन सुनकर रामने 'इसे मत मारो' ऐसा कहकर वानरोंको रोक दिया ॥ ५५ ॥ तब शुकने फिर आकाशमें चढ़कर सुग्रीवसे कहा—"हे राजन् ! मैं जाता हूँ; कहिये, रावणको आपकी ओरसे क्या उत्तर दूँ ?" ॥ ५६ ॥

सुग्रीव उवाच

यथा वाली मम भ्राता तथा त्वं राक्षसाधम ।
हन्तव्यस्त्वं मया यत्नात्सपुत्रबलवाहनः ॥५७॥

सुग्रीवने कहा—उससे कहना, जिस प्रकार मैंने अपने भाई वालीको मारा था, हे राक्षसाधम ! उसी प्रकार तू भी अपने पुत्र, सेना और वाहनादिके सहित

ब्रूहि मे रामचन्द्रस्य भार्यां हृत्वा क्व यास्यसि ।
ततो रामाज्ञया धृत्वा शुकं बध्वान्वरक्षयत् ॥५८॥

शार्दूलोऽपि ततः पूर्वं दृष्ट्वा कपिबलं महत् ।
यथावत्कथयामास रावणाय स राक्षसः ॥५९॥

दीर्घचिन्तापरो भूत्वा निःश्वसन्नास मन्दिरे ।
ततः समुद्रमावेक्ष्य रामो रक्तान्तलोचनः ॥६०॥
पश्य लक्ष्मण दुष्टोऽसौ वारिधिर्मामुपागतम् ।
नाभिनन्दति दुष्टात्मा दर्शनार्थं ममानघ ॥६१॥
जानाति मानुषोऽयं मे किं करिष्यति वानरैः ।
अद्य पश्य महाबाहो शोषयिष्यामि वारिधिम् ॥६२॥
पादेनैव गमिष्यन्ति वानरा विगतज्वराः ।
इत्युक्त्वा क्रोधताम्राक्ष आरोपितधनुर्धरः ॥६३॥
तूणीराद्बाणमादाय कालाग्निसदृशप्रभम् ।
सन्धाय चापमाकृष्य रामो वाक्यमथाब्रवीत् ॥६४॥
पश्यन्तु सर्वभूतानि रामस्य शरविक्रमम् ।
इदानीं भस्मसात्कुर्यां समुद्रं सरितां पतिम् ॥६५॥
एवं ब्रुवति रामे तु सशैलवनकानना ।
चचाल वसुधा द्यौश्च दिशश्च तमसाऽऽवृताः ॥६६॥
चुक्षुभे सागरो वेलां भयाद्योजनमत्यगात् ।
तिमिनक्रझषा मीनाः प्रतप्ताः परितत्रसुः ॥६७॥
एतस्मिन्नन्तरे साक्षात्सागरो दिव्यरूपधृक् ।
दिव्याभरणसम्पन्नः स्वभासा भासयन् दिशः ॥६८॥
स्वान्तःस्थदिव्यरत्नानि कराभ्यां परिगृह्य सः ।
पादयोः पुरतः क्षिप्त्वा रामस्योपायनं बहु ॥६९॥
दण्डवत्प्रणिपत्याह रामं रक्तान्तलोचनम् ।

ब्रूहि मे रामचन्द्रस्य भार्यां हृत्वा क्व यास्यसि ।
ततो रामाज्ञया धृत्वा शुकं बध्वान्वरक्षयत् ॥५८॥

मेरे हाथसे मारा जायगा । तू हमारे रामचन्द्रजीकी भार्याका हरण करके अब कहाँ जा सकता है ? तदनन्तर भगवान् रामकी आज्ञासे शुकको पकड़ उन्होंने बन्धनमें डालकर वानरोंकी रक्षामें छोड़ दिया ॥५७-५८॥

शार्दूलोऽपि ततः पूर्वं दृष्ट्वा कपिबलं महत् ।
यथावत्कथयामास रावणाय स राक्षसः ॥५९॥

शुकसे पहले ही शार्दूल नामक राक्षसने वानरोंकी महान् सेना देखकर रावणसे उसका यथावत् वर्णन कर दिया था ॥ ५९ ॥ यह सब सुनकर रावणको बड़ी चिन्ता हुई और वह दीर्घ निःश्वास छोड़ता अपने महलमें बैठा रहा । इसी समय भगवान् रामने समुद्रकी ओर देखकर क्रोधसे नेत्र लाल कर कहा—

दीर्घचिन्तापरो भूत्वा निःश्वसन्नास मन्दिरे ।
ततः समुद्रमावेक्ष्य रामो रक्तान्तलोचनः ॥६०॥
पश्य लक्ष्मण दुष्टोऽसौ वारिधिर्मामुपागतम् ।
नाभिनन्दति दुष्टात्मा दर्शनार्थं ममानघ ॥६१॥
जानाति मानुषोऽयं मे किं करिष्यति वानरैः ।
अद्य पश्य महाबाहो शोषयिष्यामि वारिधिम् ॥६२॥
पादेनैव गमिष्यन्ति वानरा विगतज्वराः ।
इत्युक्त्वा क्रोधताम्राक्ष आरोपितधनुर्धरः ॥६३॥
तूणीराद्बाणमादाय कालाग्निसदृशप्रभम् ।
सन्धाय चापमाकृष्य रामो वाक्यमथाब्रवीत् ॥६४॥
पश्यन्तु सर्वभूतानि रामस्य शरविक्रमम् ।
इदानीं भस्मसात्कुर्यां समुद्रं सरितां पतिम् ॥६५॥

॥ ६० ॥ "लक्ष्मण ! देखो, यह समुद्र कैसा दुष्ट है ? मैं इसके तीरपर आया हूँ किन्तु हे अनघ ! इस दुरात्माने दर्शन करके भी मेरा अभिनन्दन नहीं किया ॥ ६१ ॥ यह समझता है, 'यह एक मनुष्य ही तो है, वानरोंके साथ मिलकर भी यह मेरा क्या कर सकता है ?' सो हे महाबाहो ! देखो, आज मैं इसे सुखाये डालता हूँ ॥ ६२ ॥ फिर वानरगण निश्चिन्त होकर पैदल ही इसके पार चले जायँगे ।" ऐसा कह भगवान् रामने क्रोधसे नेत्र लाल कर अपना धनुष चढ़ाया और तूणीरसे एक कालाग्निके समान तेजोमय बाण निकालकर उसे धनुषपर रखकर खींचते हुए कहा—॥६३-६४॥ "समस्त प्राणी रामके बाणका पराक्रम देखें; मैं इसी समय नदीपति समुद्रको भस्म किये डालता हूँ" ॥६५॥

एवं ब्रुवति रामे तु सशैलवनकानना ।
चचाल वसुधा द्यौश्च दिशश्च तमसाऽऽवृताः ॥६६॥
चुक्षुभे सागरो वेलां भयाद्योजनमत्यगात् ।
तिमिनक्रझषा मीनाः प्रतप्ताः परितत्रसुः ॥६७॥
एतस्मिन्नन्तरे साक्षात्सागरो दिव्यरूपधृक् ।
दिव्याभरणसम्पन्नः स्वभासा भासयन् दिशः ॥६८॥
स्वान्तःस्थदिव्यरत्नानि कराभ्यां परिगृह्य सः ।
पादयोः पुरतः क्षिप्त्वा रामस्योपायनं बहु ॥६९॥
दण्डवत्प्रणिपत्याह रामं रक्तान्तलोचनम् ।

भगवान् रामके ऐसा कहते ही वन और पर्वतादिके सहित सम्पूर्ण पृथिवी हिलने लगी तथा आकाश और दिशाओंमें अन्धकार छा गया ॥६६॥ समुद्र क्षुभित हो गया और भयके कारण अपने तटसे एक योजन आगे बढ़ आया; तथा बड़े-बड़े मत्स्य, नाके, मकर और मछलियाँ सन्तप्त होकर भयभीत हो गये ॥ ६७ ॥ इसी समय नाना प्रकारके दिव्य आभूषण धारण किये दिव्यरूपधारी समुद्र, हाथोंमें अपने ही भीतर स्थित दिव्य रत्न लिये, अपने प्रकाशसे दशों दिशाओंको प्रकाशित करता, स्वयं उपस्थित हुआ और भगवान् रामचन्द्रजीके चरणोंके आगे नाना प्रकारके उपहार रख, जिनके नेत्रोंके मध्यभाग क्रोधसे लाल

त्राहि त्राहि जगन्नाथ राम त्रैलोक्यरक्षक ॥७०॥
जडोऽहं राम ते सृष्टः सृजता निखिलं जगत् ।
स्वभावमन्यथा कर्तुं कः शक्तो देवनिर्मितम् ॥७१॥
स्थूलानि पञ्चभूतानि जडान्येव स्वभावतः ।
सृष्टानि भवतैतानि त्वदाज्ञां लङ्घयन्ति न ॥७२॥
तामसादहमो राम भूतानि प्रभवन्ति हि ।
कारणानुगमात्तेषां जडत्वं तामसं स्वतः ॥७३॥
निर्गुणस्त्वं निराकारो यदा मायागुणान्प्रभो ।
लीलयाङ्गीकरोषि त्वं तदा वैराजनामवान् ॥७४॥
गुणात्मनो विराजश्च सत्त्वाद्देवा बभूविरे ।
रजोगुणात्प्रजेशाद्या मन्योर्भूतपतिस्तव ॥७५॥
त्वामहं मायया छन्नं लीलया मानुषाकृतिम् ॥७६॥
जडबुद्धिर्जडो मूर्खः कथं जानामि निर्गुणम् ।
दण्ड एव हि मूर्खाणां सन्मार्गप्रापकः प्रभो ॥७७॥
भूतानाममरश्रेष्ठ पशूनां लगुडो यथा ।
शरणं ते व्रजामीश शरण्यं भक्तवत्सल ।
अभयं देहि मे राम लङ्कामार्गं ददामि ते ॥७८॥

श्रीराम उवाच

अमोघोऽयं महाबाणः कस्मिन्देशे निपात्यताम्।
लक्ष्यं दर्शय मे शीघ्रं बाणस्यामोघपातिनः ॥७९॥
रामस्य वचनं श्रुत्वा करे दृष्ट्वा महाशरम् ।
महोदधिर्महातेजा राघवं वाक्यमब्रवीत् ॥८०॥
रामोत्तरप्रदेशे तु द्रुमकुल्य इति श्रुतः ।
प्रदेशस्तत्र बहवः पापात्मानो दिवानिशम् ॥८१॥
बाधन्ते मां रघुश्रेष्ठ तत्र ते पात्यतां शरः ।
रामेण सृष्टो बाणस्तु क्षणादाभीरमण्डलम् ॥८२॥
हत्वा पुनः समागत्य तूणीरे पूर्ववत्स्थितः ।

हो रहे हैं उन रघुनाथजीको साष्टाङ्ग दण्डवत् कर बोला—"हे त्रैलोक्यरक्षक जगत्पति राम ! मेरी रक्षा करो, रक्षा करो ॥ ६८—७० ॥ हे राम ! सम्पूर्ण संसारकी रचना करते समय आपने मुझे जड ही बनाया था; फिर आपके बनाये स्वभावको कोई कैसे बदल सकता है ? ॥ ७१ ॥ पाँचों स्थूल भूतोंको आपने स्वभावसे जड ही बनाया है, वे आपकी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं कर सकते ॥ ७२ ॥ हे राम ! भूत तामस अहंकारसे उत्पन्न होते हैं, अतः अपने कारणका अनुगमन करनेसे उनमें तमोरूप जडत्व तो स्वतःसिद्ध है ॥७३॥ हे प्रभो ! आप निर्गुण और निराकार हैं । जिस समय आप लीलासे ही मायिक गुणोंको अङ्गीकार करते हैं उस समय आपका नाम 'वैराज' पड़ जाता है ॥ ७४ ॥ उस गुणमय विराट्के सात्त्विकांशसे देवगण, राजसांशसे प्रजापतिगण और तामसांशसे रुद्रगण उत्पन्न होते हैं । ॥७५॥ हे नाथ ! लीलावश मायासे आच्छन्न होकर मनुष्यरूप हुए आप निर्गुण परमात्माको मैं जडबुद्धि मूर्ख कैसे जान सकता हूँ ? हे अमरश्रेष्ठ प्रभो ! पशुओंको जैसे लाठी ठीक-ठीक मार्गमें ले जाती है उसी प्रकार (मुझ-जैसे) मूर्ख जीवोंके लिये तो दण्ड ही सन्मार्गपर लानेवाला होता है । हे भक्तवत्सल भगवान् राम ! आप शरणागतरक्षककी मैं शरण हूँ । आप मुझे अभयदान दीजिये । मैं आपको लंकामें जानेका मार्ग दूँगा" ॥ ७६—७८॥

श्रीरामचन्द्रजी बोले—मेरा यह महाबाण व्यर्थ जानेवाला नहीं है; अतः शीघ्र ही मुझे इस अमोघ बाणका लक्ष्य बताओ । ॥ ७९ ॥

रामका यह वचन सुनकर और उनके हाथमें वह महाबाण देखकर महातेजस्वी समुद्रने रघुनाथजीसे कहा—॥ ८० ॥ "हे राम ! उत्तरकी ओर एक 'द्रुमकुल्य' नामक देश है । वहाँ बहुत-से पापी रहते हैं। वे मुझे रात-दिन पीड़ा पहुँचाते हैं । हे रघुश्रेष्ठ ! आप अपना यह बाण वहीं गिराइये ।" तदनन्तर रामका छोड़ा हुआ वह बाण एक क्षणमें ही समस्त आभीरमण्डलको मारकर फिर पूर्ववत् तरकशमें लौट आया । तब समुद्रने रघुनाथजीसे अति विनीत भावसे कहा—

ततोऽब्रवीद्रघुश्रेष्ठं सागरो विनयान्वितः ॥८३॥
नलः सेतुं करोत्वस्मिन् जले मे विश्वकर्मणः ।
सुतो धीमान् समर्थोऽस्मिन्कार्ये लब्धवरो हरिः॥८४॥
कीर्तिं जानन्तु ते लोकाः सर्वलोकमलापहाम् ।
इत्युक्त्वा राघवं नत्वा ययौ सिन्धुरदृश्यताम्॥८५॥

॥ ८१–८३ ॥ "हे राम ! विश्वकर्माका पुत्र नल मेरे जलपर पुल निर्माण करे । वह चतुर वानर वरके प्रभावसे इस कार्यको करनेमें समर्थ है ॥ ८४ ॥ इससे सब लोग आपकी संसार-मलापहारिणी कीर्ति जान जायँगे ।" रघुनाथजीसे इस प्रकार कह समुद्र उन्हें प्रणाम कर अन्तर्धान हो गया ॥ ८५ ॥

ततो रामस्तु सुग्रीवलक्ष्मणाभ्यां समन्वितः ।
नलमाज्ञापयच्छीघ्रं वानरैः सेतुबन्धने ॥८६॥
ततोऽतिहृष्टः प्लवगेन्द्रयूथपै-
र्महानगेन्द्रप्रतिमैर्युतो नलः ।
बबन्ध सेतुं शतयोजनायतं
सुविस्तृतं पर्वतपादपैर्दृढम् ॥८७॥

तदनन्तर, सुग्रीव और लक्ष्मणके सहित श्रीरामचन्द्रजीने नलको वानरोंकी सहायतासे तुरन्त पुल बाँधनेकी आज्ञा दी ॥ ८६ ॥ तब नलने, महापर्वतके समान अन्य वानरयूथपतियोंके साथ, अति प्रसन्नतापूर्वक पर्वत और वृक्षादिकोंसे एक सौ योजन लम्बा अति विस्तीर्ण और सुदृढ पुल बनाया ॥८७॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे
युद्धकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥३॥

चतुर्थ सर्ग

समुद्र-तरण, लङ्का-निरीक्षण तथा रावण-शुकसंवाद ।

श्रीमहादेव उवाच

सेतुमारभमाणस्तु तत्र रामेश्वरं शिवम् ।
संस्थाप्य पूजयित्वाऽऽह रामो लोकहिताय च ॥१॥
प्रणमेत्सेतुबन्धं यो दृष्ट्वा रामेश्वरं शिवम् ।
ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यते मदनुग्रहात् ॥ २ ॥
सेतुबन्धे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा रामेश्वरं हरम् ।
सङ्कल्पनियतो भूत्वा गत्वा वाराणसीं नरः॥ ३ ॥
आनीय गङ्गासलिलं रामेशमभिषिच्य च ।
समुद्रे क्षिप्ततद्धारो ब्रह्म प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ ४ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! सेतुबन्धके आरम्भ होनेपर भगवान् रामने रामेश्वर महादेवकी स्थापना कर उनका पूजन करते हुए लोकहितके लिये इस प्रकार कहा—॥ १ ॥ "जो पुरुष रामेश्वर शिवका दर्शन कर सेतुबन्धको प्रणाम करेगा वह मेरी कृपासे ब्रह्महत्या आदि पापोंसे मुक्त हो जायगा ॥ २ ॥ यदि कोई पुरुष सेतुबन्धमें स्नान कर रामेश्वर महादेवके दर्शन करे और फिर संकल्पपूर्वक काशी जाकर वहाँसे गंगाजल लावे तथा उससे रामेश्वरका अभिषेक कर उस जलके पात्रको समुद्रमें डाल दे तो वह निःसन्देह ब्रह्मको प्राप्त कर लेता है" ॥ ३-४ ॥

कृतानि प्रथमेनाह्ना योजनानि चतुर्दश ।
द्वितीयेन तथा चाह्ना योजनानि तु विंशतिः ॥ ५ ॥
तृतीयेन तथा चाह्ना योजनान्येकविंशतिः ।
चतुर्थेन तथा चाह्ना द्वाविंशतिरिति श्रुतम् ॥ ६ ॥
पञ्चमेन त्रयोविंशद्योजनानि समन्ततः ।
बबन्ध सागरे सेतुं नलो वानरसत्तमः ॥ ७ ॥
तेनैव जग्मुः कपयो योजनानां शतं द्रुतम् ।
असङ्ख्याताः सुवेलाद्रिं रुरुधुः प्लवगोत्तमाः ॥ ८ ॥

सुना जाता है, वानरश्रेष्ठ नलने पहले दिन चौदह योजन, दूसरे दिन बीस योजन, तीसरे दिन इक्कीस योजन, चौथे दिन बाईस योजन और पाँचवें दिन तेईस योजन समुद्रपर पुल बाँधा ॥ ५–७ ॥ उसी पुलसे वानरगण तुरन्त ही सौ योजन समुद्रके उसपार चले गये । और फिर असंख्य वानरवीरोंने सुवेल-पर्वतको घेर लिया ॥ ८ ॥

आरुह्य मारुतिं रामो लक्ष्मणोऽप्यङ्गदं तथा ।
दिदृक्षू राघवो लङ्कामारुरोहाचलं महत् ॥ ९ ॥
दृष्ट्वा लङ्कां सुविस्तीर्णां नानाचित्रध्वजाकुलाम् ।
चित्रप्रासादसम्बाधां स्वर्णप्राकारतोरणाम् ॥१०॥
परिखाभिः शतघ्नीभिः सङ्क्रमैश्च विराजिताम् ।
प्रासादोपरि विस्तीर्णप्रदेशे दशकन्धरः ॥११॥
मन्त्रिभिः सहितो वीरैः किरीटदशकोज्ज्वलः ।
नीलाद्रिशिखराकारः कालमेघसमप्रभः ॥१२॥
रत्नदण्डैः सितच्छत्रैरनेकैः परिशोभितः ।
एतस्मिन्नन्तरे बद्धो मुक्तो रामेण वै शुकः ॥१३॥
वानरैस्ताडितः सम्यक् दशाननमुपागतः ।
प्रहसन् रावणः प्राह पीडितः किं परैः शुक॥१४॥
रावणस्य वचः श्रुत्वा शुको वचनमब्रवीत् ।
सागरस्योत्तरे तीरेऽध्रुवं ते वचनं यथा ॥
तत उत्प्लुत्य कपयो गृहीत्वा मां क्षणात्ततः ॥१५॥
मुष्टिभिर्नखदन्तैश्च हन्तुं लोतुं प्रचक्रमुः ।
ततो मां राम रक्षेति क्रोशन्तं रघुपुङ्गवः ॥१६॥
विमुञ्यतामिति प्राह विसृष्टोऽहं कपीश्वरैः।
ततोऽहमागतो भीत्या दृष्ट्वा तद्वानरं बलम् ॥१७॥
राक्षसानां बलौघस्य वानरेन्द्रबलस्य च ।
नैतयोर्विद्यते सन्धिर्देवदानवयोरिव ॥१८॥
पुरप्राकारमायान्ति क्षिप्रमेकतरं कुरु ।
सीतां वाऽस्मै प्रयच्छाशु युद्धं वा दीयतां प्रभो ।१९।
मामाह रामस्त्वं ब्रूहि रावणं मद्वचः शुक ।
यद्बलं च समाश्रित्य सीतां मे हृतवानसि ॥२०॥
तद्दर्शय यथाकामं ससैन्यः सहबान्धवः ।

फिर, श्रीरामकी लंका देखनेकी इच्छा होनेपर रामचन्द्रजी हनुमान्‌के और लक्ष्मणजी अङ्गदके ऊपर बैठकर उस महान् पर्वतपर चढ़ गये ॥ ९ ॥ उन्होंने देखा कि लङ्कापुरी अति विस्तीर्ण है । वह नाना प्रकारकी ध्वजाओं, विचित्र प्रासादों तथा सुवर्णनिर्मित परकोटों और तोरणोंसे सुसज्जित है ॥१०॥ वह (सब ओरसे) खाइयों, तोपों और संक्रमों (सुरंगों) से सुशोभित है। उसके एक राजभवनके ऊपर अति विस्तृत भागमें अपने वीर मन्त्रियोंके सहित रावण बैठा है । उसके शिरोंपर दश मुकुट सुशोभित हैं, वह नीलाचलके शिखरके समान आकारवाला एवं श्याम मेघकी-सी आभावाला है ॥ ११-१२ ॥ नाना प्रकारके रत्नदण्डयुक्त श्वेत छत्रोंसे उसकी अपूर्व शोभा हो रही है। इसी समय भगवान् रामद्वारा बाँधकर छोड़ा हुआ शुकनामक दैत्य वानरोंसे भली प्रकार मार खाकर रावणके पास पहुँचा । उसे देखकर रावणने हँसते हुए पूछा—"शुक ! क्या शत्रुओंने तुम्हें कुछ कष्ट पहुँचाया है ?" ॥ १३-१४ ॥

रावणके वचन सुनकर शुकने कहा—"समुद्रके उत्तरतटपर जाकर ज्यों ही मैं आपका सन्देश सुनाने लगा त्यों ही कुछ वानरोंने उछलकर मुझे तत्क्षण पकड़ लिया ॥१५॥ और मुझे घूँसों, नखों एवं दाँतोंसे मारने-तथा लुप्त करनेका आयोजन करने लगे । तब, 'हे राम ! मेरी रक्षा करो' इस प्रकार मुझे पुकारते सुन रघुश्रेष्ठ रामने कहा, "इसे छोड़दो ।" इससे उन वानरोंने मुझे छोड़ दिया । तब मैं वानरोंकी सेना देखकर बड़ा डरता-डरता यहाँ आया हूँ ॥ १६-१७ ॥ मेरे विचारसे देव और दानवोंके समान राक्षसोंके दलबल और वानरोंकी सेनामें किसी प्रकार मेल नहीं हो सकता ॥ १८ ॥ हे प्रभो ! वे शीघ्र ही नगरके परकोटपर आनेवाले हैं, आप दोनोंमेंसे कोई एक काम कीजिये—या तो उन्हें सीता दे दीजिये और या उनके साथ युद्ध कीजिये ॥ १९ ॥ रामने मुझसे कहा है कि 'शुक ! रावणसे मेरी ओरसे कहना कि जिस शक्तिके भरोसे तुमने हमारी जानकीको हरा है उसे भली प्रकार अपनी सेना और बन्धु-बान्धवोंके सहित मुझे दिखलाना । तू कल ही प्राकार और

श्वःकाले नगरीं लङ्कां सप्राकारां सतोरणाम्॥२१॥
राक्षसं च बलं पश्य शरैर्विध्वंसितं मया।
घोररोषमहं मोक्ष्ये बलं धारय रावण॥२२॥
इत्युक्त्वोपरराम अथ रामः कमललोचनः।

तोरणादिके सहित लंकापुरी और राक्षसोंकी सेनाको मेरे बाणोंसे विध्वस्त हुई देखेगा। रावण! उस समय मैं भयंकर क्रोध छोड़ूँगा, तू अपने बलको स्थिर रखना' ॥२०–२२॥ ऐसा कहकर कमलनयन भगवान् राम चुप हो गये।

एकस्थानगता यत्र चत्वारः पुरुषर्षभाः॥२३॥
श्रीरामो लक्ष्मणश्चैव सुग्रीवश्च विभीषणः।
एत एव समर्थास्ते लङ्कां नाशयितुं प्रभो॥२४॥
उत्पाट्य भस्मीकरणे सर्वे तिष्ठन्तु वानराः।
तस्य यादृग् बलं दृष्टं रूपं प्रहरणानि च॥२५॥
वधिष्यति पुरं सर्वमेकस्तिष्ठन्तु ते त्रयः।
पश्य वानरसेनां तामसङ्ख्यातां प्रपूरिताम्॥२६॥
गर्जन्ति वानरास्तत्र पश्य पर्वतसन्निभाः।
न शक्यास्ते गणयितुं प्राधान्येन ब्रवीमि ते॥२७॥
एष योऽभिमुखो लङ्कां नदंस्तिष्ठति वानरः।
यूथपानां सहस्राणां शतेन परिवारितः॥२८॥
सुग्रीवसेनाधिपतिर्नीलो नामाग्निनन्दनः।
एष पर्वतशृङ्गाभः पद्मकिञ्जल्कसन्निभः॥२९॥
स्फोटयत्यभिसंरब्धो लाङ्गूलं च पुनः पुनः।
युवराजोऽङ्गदो नाम वालिपुत्रोऽतिवीर्यवान्॥३०॥
येन दृष्टा जनकजा रामस्यातीववल्लभा।
हनूमानेष विख्यातो हतो येन तवात्मजः॥३१॥
श्वेतो रजतसङ्काशो महाबुद्धिपराक्रमः।
तूर्णं सुग्रीवमागम्य पुनर्गच्छति वानरः॥३२॥
यस्त्वेष सिंहसङ्काशः पश्यत्यतुलविक्रमः।
रम्भो नाम महासत्त्वो लङ्कां नाशयितुं क्षमः॥३३॥
एष पश्यति वै लङ्कां दिधक्षन्निव वानरः।
शरभो नाम राजेन्द्र कोटियूथपनायकः॥३४॥
पनसश्च महावीर्यो मैन्दश्च द्विविदस्तथा।
नलश्च सेतुकर्ताऽसौ विश्वकर्मसुतो बली॥३५॥

"हे प्रभो! और सब वानर एक ओर रहें तो भी, एक साथ मिल जानेपर, लंकाको जड़से उखाड़कर उसे भस्म और नष्ट करनेमें तो राम, लक्ष्मण, सुग्रीव और विभीषण ये चार पुरुषश्रेष्ठ ही पर्याप्त हैं। और मैंने, जैसे उनके बल, रूप और अस्त्र-शस्त्रादि देखे हैं उससे तो यही मालूम होता है कि और तीनों अन्यत्र रहें, अकेले राम ही समस्त नगरको नष्ट कर सकते हैं। अब, सब ओर फैली हुई वानरोंकी उस असंख्य सेनाको देखिये ॥ २३–२६ ॥ देखिये, ये पर्वतसदृश वानर वीर कैसे गर्ज रहे हैं। इन्हें गिना नहीं जा सकता, इसलिये मैं आपको इनमेंसे प्रधान-प्रधान बतलाता हूँ ॥२७॥ यह वानर, जो लंकाकी ओर देखकर बारम्बार गर्ज रहा है और एक लाख यूथपतियोंसे घिरा हुआ है, वानरराज सुग्रीवका सेनापति अग्निनन्दन 'नील' है। जो कमल-केशरकी-सी आभावाला तथा पर्वत-शिखरके समान विशालकाय है एवं रोषपूर्वक बारम्बार अपनी पूँछ पटक रहा है वह अति वीर्यवान् वालिपुत्र युवराज 'अङ्गद' है ॥ २८–३० ॥ जिसने रामकी अत्यन्त प्रिया जनक-नन्दिनी सीताको देखा और आपके पुत्रका वध किया, यह वही विख्यात वीर 'हनुमान्' है ॥ ३१ ॥ जिसकी कान्ति चाँदीके समान शुक्ल वर्ण है, जो बड़ी शीघ्रतासे सुग्रीवके पास आकर फिर लौट जाता है तथा जो महाबुद्धिमान् पुरुषार्थी और सिंहके समान अतुलित पराक्रमी वानर इधर देख रहा है वह 'रम्भ' है। लंकाको नष्ट करनेमें यह अकेला ही समर्थ है ॥ ३२-३३ ॥ हे राजेश्वर! यह दूसरा वानर, जो लंकाकी ओर इस प्रकार देखता है मानो जला ही डालेगा, करोड़ यूथपतियोंका नायक 'शरभ' है ॥ ३४ ॥ इनके अतिरिक्त महापराक्रमी पनस, मैन्द, द्विविद और सेतु बाँधनेवाला विश्वकर्माका पुत्र महाबली नल—ये सब भी प्रधान-प्रधान योद्धा हैं ॥३५॥

वानराणां वर्णने वा सङ्ख्याने वा क ईश्वरः ।
शूराः सर्वे महाकायाः सर्वे युद्धाभिकाङ्क्षिणः॥३६॥
शक्ताः सर्वे चूर्णयितुं लङ्कां रक्षोगणैः सह ।
एतेषां बलसङ्ख्यानं प्रत्येकं वच्मि ते शृणु ॥३७॥
एषां कोटिसहस्राणि नव पञ्च च सप्त च ।
ऽर्या शङ्खसहस्राणि तथार्बुदशतानि च ॥३८॥

इन वानरोंका वर्णन करने और गिननेकी सामर्थ्य किसमें है । ये सभी बड़े शूरवीर, विशालकाय और युद्धके लिये उत्सुक हैं ॥३६॥ राक्षसोंके सहित लंका-को चूर्ण करनेमें ये सभी समर्थ हैं । अब मैं इनमेंसे प्रत्येककी सेनाकी संख्या बतलाता हूँ, सावधान होकर सुनिये ॥ ३७ ॥ इनमेंसे प्रत्येकके नीचे इक्कीस हजार करोड़, हजारों शंख और सैकड़ों अरब सेना है॥३८॥

सुग्रीवसचिवानां ते बलमेतत्प्रकीर्तितम् ।
अन्येषां तु बलं नाहं वक्तुं शक्तोऽस्मि रावण ॥३९॥
रामो न मानुषः साक्षादादिनारायणः परः ।
सीता साक्षाज्जगद्धेतुश्चिच्छक्तिर्जगदात्मिका॥४०॥
ताभ्यामेव समुत्पन्नं जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
तस्माद्रामश्च सीता च जगतस्तस्थुषश्च तौ ॥४१॥
'पितरौ पृथिवीपाल तयोर्वैरी कथं भवेत् ।
अज्ञानता त्वयाऽऽनीता जगन्मातैव जानकी॥४२॥
क्षणनाशिनि संसारे शरीरे क्षणभङ्गुरे ।
पञ्चभूतात्मके राजंश्चतुर्विंशतितत्त्वके ॥४३॥
मलमांसास्थिदुर्गन्धभूयिष्ठेऽहङ्कृतालये ।
किंवास्था व्यतिरिक्तस्य काये तव जडात्मके ॥४४॥
यत्कृते ब्रह्महत्यादिपातकानि कृतानि ते ।
भोगभोक्ता तु यो देहः स देहोऽत्र पतिष्यति॥४५॥
पुण्यपापे समायातो जीवेन सुखदुःखयोः ।
कारणे देहयोगादिनाऽऽत्मनः कुरुतोऽनिशम् ।४६।
यावद्देहोऽस्मि कर्तास्मीत्यात्माऽहङ्कुरुतेऽवशः ।
अध्यासात्तावदेव स्याज्जन्मनाशादिसम्भवः॥४७॥

"हे रावण ! यह तो मैंने सुग्रीवके मन्त्रियोंकी ही सेना बतायी है; उनके अतिरिक्त औरोंकी सेना गिनानेमें तो मैं सर्वथा असमर्थ हूँ ॥ ३९ ॥ राम भी कोई साधारण मनुष्य नहीं हैं, वे साक्षात् आदिनारायण परमात्मा हैं; और सीताजी जगत्की कारणरूपा साक्षात् जगद्रूपिणी चित्-शक्ति हैं ॥ ४० ॥ इन दोनोंसे ही समस्त स्थावर-जंगम संसार उत्पन्न हुआ है, अतः राम और सीता स्थावर-जंगम जगत्के माता-पिता हैं । हे पृथिवीपते ! सोचो तो, उनका बैरी कोई कैसे हो सकता है ? आप जिस जानकीको अनजानमें ले आये हैं वह साक्षात् जगन्माता ही हैं॥४१-४२॥ हे राजन् ! क्षण-क्षणमें नष्ट होनेवाले संसारमें चौबीस तत्त्वों*के समूहरूप इस क्षणभंगुर पाञ्चभौतिक शरीरमें जिसमें मल, मांस, अस्थि आदि दुर्गन्धयुक्त पदार्थोंकी ही अधिकता है और जो अहंकारका आश्रय-स्थान तथा जडरूप है आप क्या आस्था करते हैं ? आप तो इससे सर्वथा पृथक् हैं ॥ ४३-४४ ॥ हाय ! जिस शरीरके लिये आपने ब्रह्महत्यादि अनेकों पाप किये हैं, सम्पूर्ण भोगोंका भोक्ता वह शरीर तो यहीं पड़ा रह जायगा ! ॥ ४५ ॥ सुख-दुःखके कारण-रूप (पूर्वजन्मकृत) पाप-पुण्य जीवके साथ ही आते हैं और वे ही देह-सम्बन्ध आदिके द्वारा जीवको अहर्निश सुख-दुःखकी प्राप्ति कराते हैं ॥ ४६ ॥ जब-तक अज्ञानजन्य अध्यासके कारण जीव 'मैं देह हूँ, मैं कर्त्ता हूँ' ऐसा अभिमान करता है तभीतक उसे विवश होकर जन्म-मृत्यु आदि भोगने पड़ते हैं

* प्रकृति, बुद्धि, अहंकार, ग्यारह इन्द्रियाँ, पञ्चभूत और शब्द-स्पर्श आदि उनके पाँच विषय—ये सब मिलाकर चौबीस तत्त्व कहलाते हैं ।

तस्मात्त्वं त्यज देहादावभिमानं महामते ।
आत्माऽतिनिर्मलः शुद्धो विज्ञानात्माऽचलोऽव्ययः
स्वाज्ञानवशतो बन्धं प्रतिपद्य विमुह्यति ।
तस्मात्त्वं शुद्धभावेन ज्ञात्वाऽऽत्मानं सदा स्मर॥४९॥

विरतिं भज सर्वत्र पुत्रदारगृहादिषु ।
निरयेष्वपि भोगः स्याच्छ्वशूकरतनावपि ॥५०॥
देहं लब्ध्वा विवेकाढ्यं द्विजत्वं च विशेषतः ।
तत्रापि भारते वर्षे कर्मभूमौ सुदुर्लभम् ॥५१॥
को विद्वानात्मसात्कृत्वा देहं भोगानुगो भवेत् ।
अतस्त्वं ब्राह्मणो भूत्वा पौलस्त्यतनयश्च सन्॥५२॥
अज्ञानीव सदा भोगाननुधावसि किं मुधा ।
इतः परं वा त्यक्त्वा त्वं सर्वसङ्गं समाश्रय ॥५३॥
राममेव परात्मानं भक्तिभावेन सर्वदा ।
सीतां समर्प्य रामाय तत्पादानुचरो भव ॥५४॥
विमुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं प्रयास्यसि ।
नो चेद्वमिष्यसेऽधोऽधः पुनरावृत्तिवर्जितः ।
अङ्गीकुरुष्व मद्वाक्यं हितमेव वदामि ते ॥५५॥

सत्सङ्गतिं कुरु भजस्व हरिं शरण्यं
श्रीराघवं मरकतोपलकान्तिकान्तम् ।
सीतासमेतमनिशं धृतचापबाणं
सुग्रीवलक्ष्मणविभीषणसेविताङ्घ्रिम्॥५६

॥ ४७ ॥ अतः हे महामते ! आप देह आदिमें अभिमान छोड़िये । आत्मा तो अत्यन्त निर्मल, शुद्ध-स्वरूप, विज्ञानमय, अविचल और अविकारी है ॥ ४८ ॥ अपने अज्ञानके कारण ही वह बन्धनमें पड़कर मोहको प्राप्त होता है । अतः आप आत्माको शुद्ध भावसे जानकर नित्य उसीका स्मरण कीजिये ॥ ४९ ॥ पुत्र, स्त्री और गृह आदि सभीसे उपराम हो जाइये क्योंकि भोग तो कुत्ते और शूकरादिकी योनिमें तथा नरकादिमें भी मिल सकते हैं ॥ ५० ॥ सदसद्-विवेक-बुद्धिसे युक्त मनुष्य-शरीर पाकर, उसमें भी विशेषतः द्विजत्व पाकर और अति दुर्लभ कर्मभूमि भारतवर्षमें जन्म ग्रहण कर, ऐसा कौन बुद्धिमान् होगा जो देहमें आत्मबुद्धि कर भोगोंका सेवन करेगा ?

"अतः आप ब्राह्मण-शरीर और सो भी पुलस्त्य-नन्दन विश्रवाके पुत्र होकर अज्ञानीके समान सदा ही इन भोगोंकी ओर व्यर्थ क्यों दौड़ते हैं ? आजसे आप सब प्रकारका संग छोड़कर अति भक्तिभावसे सदा परमात्मा रामका ही आश्रय लीजिये और श्रीसीताजी-को भगवान् रामके अर्पण कर उनके चरणकमलोंकी सेवा कीजिये ॥ ५१–५४ ॥ यदि आप ऐसा करेंगे तो सब पापोंसे छूटकर विष्णुलोक प्राप्त करेंगे, नहीं तो पुनः ऊपर लौटनेसे वञ्चित रहकर उत्तरोत्तर नीचेके लोकोंमें ही जाते रहेंगे । मैं आपके हितकी ही बात कहता हूँ, आप इसे स्वीकार कीजिये ॥ ५५ ॥ हे रावण ! आप अहर्निश सत्संग कीजिये और जिनके शरीरकी कान्ति मरकतमणिके समान है तथा सुग्रीव, लक्ष्मण और विभीषण जिनके चरणकमलोंकी सेवा कर रहे हैं उन शरणागतवत्सल, धनुर्बाणधारी श्रीरघुनाथजीका सीताजी-के सहित भजन कीजिये" ॥ ५६ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे
युद्धकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चम सर्ग

शुकका पूर्व-चरित्र, माल्यवान्‌का रावणको समझाना तथा वानर-राक्षस-संग्राम ।

श्रीमहादेव उवाच

श्रुत्वा शुकमुखोद्गीतं वाक्यमज्ञाननाशनम् ।
रावणः क्रोधताम्राक्षो दहन्निव तमब्रवीत् ॥ १ ॥
अनुजीव्य सुदुर्बुद्धे गुरुवद्ब्रूषसे कथम् ।
शासिताऽहं त्रिजगतां त्वं मां शिक्षन्न लज्जसे ॥ २ ॥
इदानीमेव हन्मि त्वां किन्तु पूर्वकृतं तव ।
स्मरामि तेन रक्षामि त्वां यद्यपि वधोचितम् ॥ ३ ॥
इतो गच्छ विमूढ त्वमेवं श्रोतुं न मे क्षमम् ।
महाप्रसाद इत्युक्त्वा वेपमानो गृहं ययौ ॥ ४ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! शुकके मुखसे निकले हुए इन अज्ञाननाशक वचनोंको सुनकर रावण क्रोधसे मानो जलता हुआ उससे आँखें लाल करके बोला—॥१॥ "अरे दुर्बुद्धे ! मेरे ही टुकड़ोंसे पलकर तू इस प्रकार गुरुकी भाँति कैसे बोलता है ? तीनों लोकोंका शासन करनेवाला तो मैं हूँ, मुझे उपदेश देते हुए तुझको लज्जा नहीं आती ? ॥ २ ॥ तू यद्यपि वध करनेयोग्य है और मैं तुझे अभी मार डालता, परन्तु तेरे पूर्व-कृत्योंको याद करके मैं तुझे छोड़े देता हूँ ॥ ३ ॥ अरे मूढ़ ! तू तुरन्त यहाँसे टल जा, मैं ऐसी बातें नहीं सुनना चाहता ।" रावणके ये वचन सुनकर शुक 'महाराजकी बड़ी कृपा है' ऐसा कहकर काँपता हुआ अपने घर चला गया ॥ ४ ॥

शुकोऽपि ब्राह्मणः पूर्वं ब्रह्मिष्ठो ब्रह्मवित्तमः ।
वानप्रस्थविधानेन वने तिष्ठन् स्वकर्मकृत् ॥ ५ ॥
देवानामभिवृद्ध्यर्थं विनाशाय सुरद्विषाम् ।
चकार यज्ञविततिमविच्छिन्नां महामतिः ॥ ६ ॥
राक्षसानां विरोधोऽभूच्छुको देवहितोद्यतः ।
वज्रदंष्ट्र इति ख्यातस्तत्रैको राक्षसो महान् ॥ ७ ॥
अन्तरं प्रेप्सुरातिष्ठच्छुकापकरणोद्यतः ।
कदाचिदागतोऽगस्त्यस्तस्याश्रमपदं मुनेः ॥ ८ ॥
तेन सम्पूजितोऽगस्त्यो भोजनार्थं निमन्त्रितः ।
गते स्नातुं मुनौ कुम्भसम्भवे प्राप्य चान्तरम् ॥ ९ ॥
अगस्त्यरूपधृक् सोऽपि राक्षसः शुकमब्रवीत् ।
यदि दास्यसि मे ब्रह्मन् भोजनं देहि सामिषम् ॥ १० ॥
बहुकालं न भुक्तं मे मांसं छागाङ्गसम्भवम् ।
तथेति कारयामास मांसभोज्यं सविस्तरम् ॥ ११ ॥

पूर्व-जन्ममें शुक एक वेदज्ञ और ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण था, तथा वानप्रस्थ-विधिसे अपने धर्म-कर्ममें तत्पर हुआ वनमें रहता था ॥ ५ ॥ इस महामतिने देवताओंकी वृद्धि और दैत्योंके नाशके लिये लगातार बहुत-से बड़े-बड़े यज्ञ किये ॥ ६ ॥ अतः देवताओंके हितमें लगे रहने-के कारण शुकका राक्षसोंसे विरोध हो गया । उस समय वज्रदंष्ट्र नामक एक महान् राक्षस शुकका अपकार करनेपर उतारू होकर अवसर देखने लगा ।

एक दिन मुनिवर शुकके आश्रममें महर्षि अगस्त्य पधारे ॥७-८॥ शुकने अगस्त्यजीकी पूजा कर उन्हें भोजन के लिये निमन्त्रित किया । जिस समय महर्षि अगस्त्य स्नानके लिये गये हुए थे उस राक्षस (वज्रदंष्ट्र) ने अपना मौका देखकर अगस्त्यका रूप बनाया और शुकसे कहा—"हे ब्रह्मन् ! यदि तुम मुझे भोजन कराना चाहते हो तो मांसयुक्त अन्न खिलाओ ॥ ९-१० ॥ मैंने बहुत दिनोंसे छाग (बकरे) का मांस नहीं खाया है ।" तब शुकने 'जो आज्ञा' कह बड़ी तैयारीसे मांसमय भोजन बनवाया ॥ ११ ॥

उपविष्टे मुनौ भोक्तुं राक्षसोऽतीव सुन्दरम् ।
शुकभार्यावपुर्धृत्वा तां चान्तर्मोहयन् खलः ॥१२॥
नरमांसं ददौ तस्मै सुपक्वं बहुविस्तरम् ।
दत्त्वैवान्तर्दधे रक्षस्ततो दृष्ट्वा चुकोप सः ॥१३॥
अमेध्यं मानुषं मांसमगस्त्यः शुकमब्रवीत् ।
अभक्ष्यं मानुषं मांसं दत्तवानसि दुर्मते ॥१४॥
मह्यं त्वं राक्षसो भूत्वा तिष्ठ त्वं मानुषाशनः ।
इति शप्तः शुको भीत्या प्राहागस्त्यं मुने त्वया ।१५।
इदानीं भाषितं मेऽद्य मांसं देहीति विस्तरम् ।
तथैव दत्तं मे देव किं मे शापं प्रदास्यसि ॥१६॥
श्रुत्वा शुकस्य वचनं मुहूर्तं ध्यानमास्थितः ।
ज्ञात्वा रक्षःकृतं सर्वं ततः प्राह शुकं सुधीः ॥१७॥
तवापकारिणा सर्वं राक्षसेन कृतं त्विदम् ।
अविचार्यैव मे दत्तः शापस्ते मुनिसत्तम ॥१८॥
तथापि मे वचोऽमोघमेवमेव भविष्यति ।
राक्षसं वपुरास्थाय रावणस्य सहायकृत् ॥१९॥
तिष्ठ तावद्यदा रामो दशाननवधाय हि ।
आगमिष्यति लङ्कायाः समीपं वानरैः सह ॥२०॥
प्रेषितो रावणेन त्वं चारो भूत्वा रघूत्तमम् ।
दृष्ट्वा शापाद्विनिर्मुक्तो बोधयित्वा च रावणम् ॥२१॥
तत्त्वज्ञानं ततो मुक्तः परं पदमवाप्स्यसि ।
इत्युक्तोऽगस्त्यमुनिना शुको ब्राह्मणसत्तमः ॥२२॥
बभूव राक्षसः सद्यो रावणं प्राप्य संस्थितः ।
इदानीं चाररूपेण दृष्ट्वा रामं सहानुजम् ॥२३॥
रावणं तत्त्वविज्ञानं बोधयित्वा पुनर्द्रुतम् ।
पूर्ववद्ब्राह्मणो भूत्वा स्थितो वैखानसैः सह ॥२४॥

जिस समय मुनि भोजन करने बैठे उस दुष्ट राक्षसने शुककी पत्नीका अति सुन्दर रूप धारण किया, और उसे (शुककी स्त्रीको) आश्रमके भीतर ही मूर्च्छित कर मुनिवरको नाना प्रकारसे बनाया हुआ नरमांस परोसा। उसे परोसकर वह राक्षस अन्तर्धान हो गया। मुनिवर अगस्त्य अपने आगे अभक्ष्य नरमांस देखकर अति क्रोधित हुए और शुकसे बोले—"हे दुर्मते ! तुमने मुझे अभक्ष्य नरमांस खानेको दिया है, अतः तुम मनुष्यभोजी राक्षस होकर रहो।" अगस्त्यजीके इस प्रकार शाप देनेपर शुकने डरते-डरते कहा—"मुने ! आपने अभी कहा था कि आज मुझे नाना प्रकारका मांस खानेको दो; हे देव ! मैंने आपकी आज्ञानुसार ही आपको मांस दिया है फिर आप मुझे शाप क्यों देते हैं ?" ॥ १२–१६ ॥

शुकके वचन सुनकर महाबुद्धिमान् अगस्त्यजीने एक मुहूर्त्ततक ध्यानस्थ होकर राक्षसकी सब करतूत जान ली। तब वे शुकसे बोले ॥ १७ ॥ "हे मुनिश्रेष्ठ ! यह सब करतूत तुम्हारे अपकार-कर्त्ता राक्षसकी है, मैंने तुम्हें बिना विचारे ही शाप दे दिया ॥ १८ ॥ तथापि मेरा वचन वृथा जानेवाला नहीं है, इसलिये होगा ऐसा ही। तुम राक्षसका शरीर धारण कर रावण-की तबतक सहायता करते रहो जबतक कि उसका नाश करनेके लिये श्रीरामचन्द्रजी वानरोंके सहित लंकाके समीप न आयें ॥ १९-२० ॥ इसके पश्चात् तुम रावणके भेजनेसे उसके दूत होकर रघुनाथजीके पास जाओगे और उनका दर्शन कर शापसे मुक्त हो जाओगे, फिर रावणको तत्त्वज्ञानका उपदेश कर मुक्त होकर परमपद प्राप्त करोगे।"

मुनिवर अगस्त्यके ऐसा कहनेपर विप्रवर शुक राक्षस होकर तुरन्त रावणके पास आकर रहने लगे। इस समय रावणके दूतरूपसे लक्ष्मणसहित भगवान् रामका दर्शन कर तथा रावणको तत्त्वज्ञानका उपदेश दे वे फिर शीघ्र ही पूर्ववत् ब्राह्मण-शरीर हो वानप्रस्थोंके साथ रहने लगे ॥ २१–२४ ॥

ततः समागमद्वृद्धो माल्यवान् राक्षसो महान्।
बुद्धिमान्नीतिनिपुणो राज्ञो मातुःप्रियः पिता॥२५॥
प्राह तं राक्षसं वीरं प्रशान्तेनान्तरात्मना।
शृणु राजन्वचो मेऽद्य श्रुत्वा कुरु यथेप्सितम्॥२६॥
यदा प्रविष्टा नगरीं जानकी रामवल्लभा।
तदादि पुर्यां दृश्यन्ते निमित्तानि दशानन॥२७॥
घोराणि नाशहेतूनि तानि मे वदतः शृणु।
खरस्तनितनिर्घोपा मेघा अतिभयङ्कराः॥२८॥
शोणितेनाभिवर्षन्ति लङ्कामुष्णेन सर्वदा।
रुदन्ति देवलिङ्गानि स्विद्यन्ति प्रचलन्ति च॥२९॥
कालिका पाण्डुरैर्दन्तैः प्रहसन्त्यग्रतः स्थिता।
खरा गोषु प्रजायन्ते मूषका नकुलैः सह॥३०॥
मार्जारेण तु युध्यन्ति पन्नगा गरुडेन तु।
करालो विकटो मुण्डः पुरुषः कृष्णपिङ्गलः॥३१॥
कालो गृहाणि सर्वेषां काले काले त्ववेक्षते।
एतान्यन्यानि दृश्यन्ते निमित्तान्युद्भवन्ति च॥३२॥
अतः कुलस्य रक्षार्थं शान्तिं कुरु दशानन।
सीतां सत्कृत्य सधनां रामायाशु प्रयच्छ भोः॥३३॥
रामं नारायणं विद्धि विद्वेषं त्यज राघवे।
यत्पादपोतमाश्रित्य ज्ञानिनो भवसागरम्॥३४॥
तरन्ति भक्तिपूतान्तास्ततो रामो न मानुषः।
भजस्व भक्तिभावेन रामं सर्वहृदालयम्॥३५॥
यद्यपि त्वं दुराचारो भक्त्या पूतो भविष्यसि।
मद्वाक्यं कुरु राजेन्द्र कुलकौशलहेतवे॥३६॥
तत्तु माल्यवतो वाक्यं हितमुक्तं दशाननः।
न मर्षयति दुष्टात्मा कालस्य वशमागतः॥३७॥

(शुकके चले जानेपर) राजा रावणकी माताका प्रिय पिता अति बुद्धिमान् और नीतिनिपुण वृद्ध राक्षस माल्यवान् वहाँ आया ॥ २५ ॥ वह शान्त-चित्तसे उस राक्षसवीर (रावण) से बोला—"हे राजन् ! मेरी प्रार्थना सुनिये, फिर आपकी जैसी इच्छा हो वह करना ॥ २६ ॥ हे दशानन ! जबसे नगरमें राम-भार्या जानकीका प्रवेश हुआ है तभीसे यहाँ बड़े भयंकर नाशकारी हेतु दिखायी दे रहे हैं, सो मैं आपको बतलाता हूँ, सुनिये—अति भयंकर मेघगण तीक्ष्ण कड़कके साथ गर्जते हैं और सर्वदा लंकाके ऊपर गर्म-गर्म रक्तकी वर्षा करते हैं। देवमूर्तियाँ रोती हैं, उनके शरीरमें पसीना आ जाता है और वे अपने स्थानसे स्खलित हो जाती हैं ॥ २७-२९ ॥ कालिकाएँ राक्षसोंके आगे अपने पीले-पीले दाँत निकालकर हँसती हैं, गौओंके गधे उत्पन्न होते हैं और चूहे न्यौले तथा बिल्लीसे एवं सर्प गरुडसे युद्ध करते हैं। समस्त राक्षसोंके घरोंको समय-समयपर काले और पीले रंगका एक महाभयंकर विकरालवदन मुण्डित-केश कालपुरुष देखा करता है। इस प्रकार ये तथा और भी बहुत-से अपशकुन उत्पन्न होते और दिखायी देते हैं ॥ ३०-३२ ॥ अतः हे दशशीश ! अपने कुलकी रक्षाके लिये इनकी शान्ति कीजिये और तुरन्त ही सीताको सत्कारपूर्वक बहुत-से धनके सहित रघुनाथजीको दे दीजिये ॥ ३३ ॥ रामको आप साक्षात् नारायण समझिये, इसलिये उनमें द्वेषभाव छोड़ दीजिये। इन रघुनाथजीके चरण-कमल-रूप नौकाका आश्रय लेकर भक्तिसे पवित्र अन्तःकरण हुए योगिजन संसारसागरको पार कर जाते हैं। अतः ये कोई साधारण पुरुष नहीं हैं। ये सबके अन्तःकरणोंमें विराजमान हैं, आप भक्तिभावसे इन रघुनाथजीका भजन कीजिये ॥ ३४-३५ ॥ यद्यपि आपका आचरण अच्छा नहीं है, तथापि उनकी भक्तिसे आप पवित्र हो जायँगे। हे राजेन्द्र ! अपने कुलकी कुशलताके लिये मेरा यह वचन मान लीजिये" ॥ ३६ ॥

किन्तु माल्यवान्के ये हितकर वाक्य दुष्टचित्त रावणको सहन न हुए, क्योंकि वह कालके वशीभूत हो रहा था ॥ ३७ ॥ वह बोला—"इस बेचारे एक तुच्छ

मानवं कृपणं राममेकं शाखामृगाश्रयम् ।
समर्थं मन्यसे केन हीनं पित्रा मुनिप्रियम् ॥३८॥
रामेण प्रेषितो नूनं भाषसे त्वमनर्गलम् ।
गच्छ वृद्धोऽसि बन्धुस्त्वं सोढं सर्वं त्वयोदितम् ३९
इतो मत्कर्णपदवीं दहत्येतद्वचस्तव ।
इत्युक्त्वा सर्वसचिवैः सहितः प्रस्थितस्तदा ॥४०॥
प्रासादाग्रे समासीनः पश्यन्वानरसैनिकान् ।
युद्धायायोजयत्सर्वराक्षसान्समुपस्थितान् ॥४१॥
रामोऽपि धनुरादाय लक्ष्मणेन समाहृतम् ।
दृष्ट्वा रावणमासीनं कोपेन कलुषीकृतः ॥४२॥
किरीटिनं समासीनं मन्त्रिभिः परिवेष्टितम् ।
शशाङ्कार्धनिभेनैव बाणेनैकेन राघवः ॥४३॥
श्वेतच्छत्रसहस्राणि किरीटदशकं तथा ।
चिच्छेद निमिषार्धेन तदद्भुतमिवाभवत् ॥४४॥
लज्जितो रावणस्तूर्णं विवेश भवनं स्वकम् ।
आहूय राक्षसान् सर्वान्प्रहस्तप्रमुखान् खलः॥४५॥
वानरैः सह युद्धाय नोदयामास सत्वरः ।

ततो भेरीमृदङ्गाद्यैः पणवानकगोमुखैः ॥४६॥
महिषोष्ट्रैः खरैः सिंहैर्द्वीपिभिः कृतवाहनाः ।
खड्गशूलधनुःपाशयष्टितोमरशक्तिभिः ॥४७॥
लक्षिताः सर्वतो लङ्कां प्रतिद्वारमुपाययुः ।
तत्पूर्वमेव रामेण नोदिता वानरर्षभाः ॥४८॥
उद्यम्य गिरिशृङ्गाणि शिखराणि महान्ति च ।
तरूंश्चोत्पाटय विविधान्युद्धाय हरियूथपाः ॥४९॥
प्रेक्षमाणा रावणस्य तान्यनीकानि भागशः ।
राघवप्रियकामार्थं लङ्कामारुरुहुस्तदा ॥५०॥
ते द्रुमैः पर्वताग्रैश्च मुष्टिभिश्च प्लवङ्गमाः ।
ततः सहस्रयूथाश्च कोटियूथाश्च यूथपाः ॥५१॥

मनुष्य रामको, जिसने वन्दरका आश्रय लिया हुआ है और जिसे उसके पिताने भी निकाल दिया है, तुम किस बातमें समर्थ मानते हो ? वह तो केवल वनवासी मुनिजनोंका ही प्यारा है ॥ ३८ ॥ मालूम होता है, तुम्हें रामने ही भेजा है इसीलिये तुम इस प्रकार ऊटपटांग बातें बनाते हो । जाओ, तुम बूढ़े और अपने सम्बन्धी हो इसलिये मैंने तुम्हारी सब बातें सहन कर ली हैं ॥ ३९ ॥ किन्तु अब तुम्हारे वचन मेरे कानोंको जलाते हैं ।" ऐसा कहकर वह अपने समस्त मन्त्रियोंसहित वहाँसे चल दिया ॥ ४० ॥ और अपने राजभवनके सर्वोच्च तलपर बैठकर वानर-सैनिकोंको देखता हुआ अपने आस-पास बैठे हुए राक्षसोंको युद्धके लिये नियुक्त करने लगा ॥ ४१ ॥

इधर, रामचन्द्रजीने रावणको बैठा देख अति क्रोधातुर हो लक्ष्मणजीका लाया हुआ धनुष उठाया ॥ ४२ ॥ वह शिरपर मुकुट धारण किये अपने अनेकों मन्त्रियोंसे घिरा हुआ बैठा था भगवान् रामने आधे निमेषमें ही एक अर्द्धचन्द्राकार बाणसे उसके हजारों श्वेत छत्र और दसों मुकुट काट डाले । यह बड़ा आश्चर्य-सा हो गया ॥४३-४४॥ इससे लज्जित होकर रावण तुरन्त अपने घरमें घुस गया; और उस दुष्टने शीघ्र ही प्रहस्त आदि मुख्य-मुख्य राक्षसोंको बुलाकर वानरोंके साथ युद्ध करनेकी आज्ञा दी ।

तब राक्षसलोग भेरी, मृदंग, पणव, आनक और गोमुख आदि बाजे बजाते भैंसों, ऊँटों, गधों, सिंहों और हाथियोंपर चढ़कर खड्ग, शूल, धनुष, पाश, यष्टि (डण्डे), तोमर और शक्ति आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित हो लङ्काके प्रत्येक द्वारपर आ गये । भगवान् रामने वानरोंको पहले ही आज्ञा दे दी थी ॥४५–४८॥ अतः वे पर्वतोंकी शिलाएँ तथा बड़े-बड़े शिखर उठा कर और नाना प्रकारके वृक्ष उखाड़कर युद्धके लिये चले और रावणकी वह पृथक्-पृथक् सेना देखकर रघुनाथजीका प्रिय कार्य करनेके लिये लंकापर चढ़ गये ॥ ४९-५० ॥ उनमेंसे कोई सहस्रयूथपति, कोई कोटियूथप और कोई शतकोटि-यूथनायक थे । उन वानरोंने उछलते-कूदते और गर्जते हुए

कोटीशतयुताश्चान्ये रुरुधुर्नगरं भृशम् ।
आप्लवन्तः प्लवन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवङ्गमाः ॥५२॥
रामो जयत्यतिबलो लक्ष्मणश्च महाबलः ।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणानुपालितः ॥५३॥
इत्येवं घोषयन्तश्च समं युयुधिरेऽरिभिः ।
हनूमानङ्गदश्चैव कुमुदो नील एव च ॥५४॥
नलश्च शरभश्चैव मैन्दो द्विविद एव च ।
जाम्बवान्दधिवक्त्रश्च केसरी तार एव च ॥५५॥
अन्ये च बलिनः सर्वे यूथपाश्च प्लवङ्गमाः ।
द्वाराण्युत्प्लुत्य लङ्कायाः सर्वतो रुरुधुर्भृशम् ।
तदा वृक्षैर्महाकायाः पर्वताग्रैश्च वानराः ॥५६॥
निजघ्नुस्तानि रक्षांसि नखैर्दन्तैश्च वेगिताः ।
राक्षसाश्च तदा भीमा द्वारेभ्यः सर्वतो रुषा ॥५७॥
निर्गत्य भिन्दिपालैश्च खड्गैः शूलैः परश्वधैः ।
निजघ्नुर्वानरानीकं महाकाया महाबलाः ॥५८॥
राक्षसांश्च तथा जघ्नुर्वानरा जितकाशिनः ।
तदा बभूव समरो मांसशोणितकर्दमः ॥५९॥
रक्षसां वानराणां च सम्बभूवाद्भुतोपमः ।
ते हयैश्च गजैश्चैव रथैः काञ्चनसन्निभैः ॥६०॥
रक्षोव्याघ्रा युयुधिरे नादयन्तो दिशो दश ।
राक्षसाश्च कपीन्द्राश्च परस्परजयैषिणः ॥६१॥
राक्षसान्वानरा जघ्नुर्वानरांश्चैव राक्षसाः ।
रामेण विष्णुना दृष्टा हरयो दिविजांशजाः ॥६२॥
बभूवुर्बलिनो हृष्टास्तदा पीतामृता इव ।
सीताभिमर्शपापेन रावणेनाभिपालितान् ॥६३॥
हृतश्रीकान्हतबलान् राक्षसान् जघ्नुरोजसा ।
चतुर्थांशावशेषेण निहतं राक्षसं बलम् ॥६४॥
स्वसैन्यं निहतं दृष्ट्वा मेघनादोऽथ दुष्टधीः ।
ब्रह्मदत्तवरः श्रीमानन्तर्धानं गतोऽसुरः ॥६५॥

वृक्ष, पर्वतशिखर और मुट्ठियाँ तानकर नगरको सब ओरसे घेर लिया ॥५१-५२॥ 'महाबली राम और वीरवर लक्ष्मणकी जय हो, रघुनाथजीसे सुरक्षित राजा सुग्रीवकी जय हो' इस प्रकार शब्द करते हुए वे शत्रुओंसे लड़ने लगे । हनुमान्, अंगद, कुमुद, नील, नल, शरभ, मैन्द, द्विविद, जाम्बवान्, दधिमुख, केसरी, तार तथा अन्य समस्त बलवान् वानर और यूथपतियोंने उछल-उछलकर लंकाके सब द्वारोंको चारों ओरसे घेर लिया । तब वे महाकाय वानरगण वृक्ष, पर्वतशिखर और नख तथा दाँतोंसे अति वेगपूर्वक उन राक्षसोंको मारने लगे ।

तब, महाभयानक और बड़े-बड़े डीलवाले महाबली राक्षसगण भी अति रोषपूर्वक सब द्वारोंसे निकलकर भिन्दिपाल, खड्ग, शूल और परशु आदि विविध अस्त्र-शस्त्रोंसे वानर-सेनापर प्रहार करने लगे ॥ ५३–५८ ॥ इसी प्रकार विजयी वानरवीर भी राक्षसोंको मारने लगे । उस समय वहाँ राक्षसों और वानरोंका बड़ा विचित्र युद्ध छिड़ गया, जिससे उस रणभूमिमें रक्त और मांसकी कीच हो गयी । वीर राक्षसकेसरी घोड़ों, हाथियों और सुवर्णमय रथोंपर चढ़कर अपने शब्दसे दशों दिशाओंको गुञ्जायमान करते हुए लड़ रहे थे, और राक्षस तथा वानर दोनों ही परस्पर एक दूसरेको जीतना चाहते थे ॥ ५९–६१ ॥ वानरगण राक्षसोंको और राक्षसलोग वानरोंको मारने लगे । विष्णुरूप भगवान् रामकी दृष्टि पड़नेसे देवताओंके अंशसे उत्पन्न हुए वानरगण बड़े प्रबल हो गये; और मानो अमृतपान कर अति हर्षसे उत्साहपूर्वक, सीताजीको (हरण करते समय) स्पर्श करनेके कारण महापापी रावणसे पालित निस्तेज और बलहीन राक्षसोंको मारने लगे । धीरे-धीरे राक्षसोंकी सेना नष्ट होकर केवल एक चौथाई रह गयी ॥ ६२–६४॥

अपनी सेनाको नष्ट हुई देख ब्रह्माजीके वरसे श्रीसम्पन्न हुआ दुष्टबुद्धि राक्षस मेघनाद अन्तर्धान हो गया ॥६५॥ वह दैत्य सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्र चलानेमें

सर्वास्त्रकुशलो व्योम्नि ब्रह्मास्त्रेण समन्ततः ।
नानाविधानि शस्त्राणि वानरानीकमर्दयन् ॥६६॥
ववर्ष शरजालानि तदद्भुतमिवाभवत् ।
रामोऽपि मानयन्ब्राह्ममस्त्रमस्त्रविदां वरः ॥६७॥
क्षणं तूष्णीमुवासाथ ददर्श पतितं बलम् ।
वानराणां रघुश्रेष्ठश्चुकोपानलसन्निभः ॥६८॥
चापमानय सौमित्रे ब्रह्मास्त्रेणासुरं क्षणात् ।
अक्षीकरोमि मे पश्य बलमद्य रघूत्तम ॥६९॥
मेघनादोऽपि तच्छ्रुत्वा रामवाक्यमतन्द्रितः ।
तूर्णं जगाम नगरं मायया मायिकोऽसुरः ॥७०॥
पतितं वानरानीकं दृष्ट्वा रामोऽतिदुःखितः ।
उवाच मारुतिं शीघ्रं गत्वा क्षीरमहोदधिम् ॥७१॥
तत्र द्रोणगिरिर्नाम दिव्यौषधिसमुद्भवः ।
तमानय द्रुतं गत्वा सञ्जीवय महामते ॥७२॥
वानरौघान्महासत्त्वान्कीर्तिस्ते सुस्थिरा भवेत् ।
आज्ञाप्रमाणमित्युक्त्वा जगामानिलनन्दनः॥७३॥
आनीय च गिरिं सर्वान्वानरान्वानरर्षभः ।
जीवयित्वा पुनस्तत्र स्थापयित्वाऽऽययौ द्रुतम्॥७४॥
पूर्ववद्भैरवं नादं वानराणां बलौघतः ।
श्रुत्वा विस्मयमापन्नो रावणो वाक्यमब्रवीत्॥७५॥
राघवो मे महान् शत्रुः प्राप्तो देवविनिर्मितः ।
हन्तुं तं समरे शीघ्रं गच्छन्तु मम यूथपाः ॥७६॥
मन्त्रिणो बान्धवाः शूरा ये च मत्प्रियकाङ्क्षिणः ।
सर्वे गच्छन्तु युद्धाय त्वरितं मम शासनात् ॥७७॥
ये न गच्छन्ति युद्धाय भीरवः प्राणविप्लवात् ।
तान्हनिष्याम्यहं सर्वान्मच्छासनपराङ्मुखान् ।७८।
तच्छ्रुत्वा भयसन्त्रस्ता निर्जग्मू रणकोविदाः ।

कुशल था। अतः वह आकाशमें चढ़कर ब्रह्मास्त्रद्वारा वानर-सेनाको दलित करता हुआ सब ओर नाना प्रकारके शस्त्र और बाणसमूह बरसाने लगा। यह बड़ा आश्चर्य-सा होने लगा। अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ भगवान् राम भी ब्रह्मास्त्रका मान रखनेके लिये एक क्षणतक चुपचाप वानर-सेनाका पतन देखते रहे। अन्तमें वे रघुश्रेष्ठ क्रोधसे अग्निके समान प्रज्वलित हो उठे ॥ ६६–६८ ॥ और बोले—"लक्ष्मण! मेरा धनुष तो लाओ, मैं एक क्षणमें ही इस दुष्ट दानवको ब्रह्मास्त्रसे भस्म कर डालूँगा। हे रघुश्रेष्ठ! आज तुम मेरा पराक्रम देखना" ॥ ६९ ॥

मेघनाद भी बहुत सावधान था; रामचन्द्रजीके ये वाक्य सुनते ही वह मायामयी दैत्य मायापूर्वक तुरन्त अपने नगरको चला गया ॥ ७० ॥ वानर-सेनाको नष्ट हुई देख श्रीरामचन्द्रजी अति दुःखित होकर हनुमान्‌जीसे बोले—"हनुमान्! तुम तुरन्त ही क्षीर-सागरपर जाओ। वहाँ द्रोणाचल नामक पर्वत है, जिसपर नाना प्रकारकी दिव्य ओषधियाँ उत्पन्न होती हैं। हे महामते! तुम झटपट जाकर उस पर्वतको ले आओ और इन महापराक्रमी वानरयूथोंको जीवित करो। इससे तुम्हारी कीर्ति अविचल हो जायगी।" यह सुनकर पवन-कुमार 'जो आज्ञा' ऐसा कहकर चल दिये ॥ ७१–७३ ॥ और तुरन्त ही उस पर्वतको लाकर (उसकी ओषधियों-से) समस्त वानरोंको जीवित कर उसे फिर वहीं रख आये ॥ ७४ ॥

तब वानर-सेनाका फिर पूर्ववत् भयानक शब्द सुनकर रावण अति विस्मित होकर कहने लगा—॥७५॥ "देवताओंका प्रकट किया हुआ यह राम मेरा महान् शत्रु आया है। इसे युद्धमें मारनेके लिये मेरे सेनापति, मन्त्री, बन्धु-बान्धव तथा और भी जो शूरवीर मेरा हित चाहते हों, वे सब मेरी आज्ञा मानकर तुरन्त जायँ ॥७६-७७॥ जो डरपोक अपने प्राणोंके भयसे युद्ध करने नहीं जायँगे, अपनी आज्ञा न माननेवाले उन सबको मैं मार डालूँगा" ॥ ७८ ॥ रावणकी यह आज्ञा सुनकर अतिकाय, प्रहस्त, महानाद, महोदर,

अतिकायः प्रहस्तश्च महानादमहोदरौ ॥७९॥
देवशत्रुर्निकुम्भश्च देवान्तकनरान्तकौ ।
अपरे बलिनः सर्वे ययुर्युद्धाय वानरैः ॥८०॥
एते चान्ये च बहवः शूराः शतसहस्रशः ।
प्रविश्य वानरं सैन्यं ममन्थुर्बलदर्पिताः ॥८१॥
भुशुण्डीभिन्दिपालैश्च बाणैः खड्गैः परश्वधैः ।
अन्यैश्च विविधैरस्त्रैर्निजघ्नुर्हरियूथपान् ॥८२॥
ते पादपैः पर्वताग्रैर्नखदंष्ट्रैश्च मुष्टिभिः ।
प्राणैर्विमोचयामासुः सर्वराक्षसयूथपान् ॥८३॥
रामेण निहताः केचित्सुग्रीवेण तथाऽपरे ।
हनूमता चाङ्गदेन लक्ष्मणेन महात्मना ।
यूथपैर्वानराणां ते निहताः सर्वराक्षसाः ॥८४॥
रामतेजः समाविश्य वानरा बलिनोऽभवन् ।
रामशक्तिविहीनानामेवं शक्तिः कुतो भवेत् ॥८५॥
सर्वेश्वरः सर्वमयो विधाता
मायामनुष्यत्वविडम्बनेन ।
सदा चिदानन्दमयोऽपि रामो
युद्धादिलीलां वितनोति मायाम् ॥८६॥

देवशत्रु, निकुम्भ, देवान्तक और नरान्तक आदि रणकुशल वीर तथा और भी समस्त बलवान् योद्धा भयभीत होकर वानरोंके साथ युद्ध करनेके लिये चले ॥७९-८०॥ ये तथा और भी बहुत-से सैकड़ों-सहस्रों शूरवीर अपने-अपने बलके गर्वसे उन्मत्त हो वानर-सेनामें घुसकर उसे दलित करने लगे ॥ ८१ ॥ वे भुशुण्डी, भिंदिपाल, बाण, खड्ग, परशु तथा और भी नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे वानर-यूथपतियोंपर प्रहार करने लगे ॥ ८२ ॥

इधर, वानरवीर भी वृक्षों, पर्वतशिखरों, नखों, दाढ़ों और मुट्ठियोंसे समस्त राक्षस-यूथपोंको निष्प्राण करने लगे ॥ ८३ ॥ उन राक्षसोंमेंसे कोई श्रीरामके हाथसे, कोई सुग्रीवके द्वारा, कोई हनुमान् और अंगदके द्वारा, कोई महात्मा लक्ष्मणजीके हाथसे और कोई अन्यान्य वानर-यूथपोंके द्वारा मारे गये । इस प्रकार उन समस्त राक्षसोंका अन्त हो गया ॥ ८४ ॥ राम-तेजके समावेश-से वानरगण अत्यन्त प्रबल हो रहे थे । राम-शक्तिसे शून्य होनेपर उनमें इतनी सामर्थ्य कैसे हो सकती थी ? ॥ ८५ ॥ भगवान् राम सर्वेश्वर, सर्वमय, सबके नियन्ता और सर्वदा चिदानन्दमय हैं, तथापि मायासे मानव-चरित्रका अनुकरण करते हुए युद्धादि लीलाका विस्तार करते हैं ॥ ८६ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे
युद्धकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठ सर्ग

लक्ष्मण-मूर्च्छा, राम-रावण-संग्राम, हनुमान्‌जीका ओषधि लेने जाना और रावण-कालनेमि-संवाद ।

श्रीमहादेव उवाच

श्रुत्वा युद्धे बलं नष्टमतिकायमुखं महत् ।
रावणो दुःखसन्तप्तः क्रोधेन महताऽऽवृतः ॥ १ ॥
निधायेन्द्रजितं लङ्कारक्षणार्थं महाद्युतिः ।
स्वयं जगाम युद्धाय रामेण सह राक्षसः ॥ २ ॥

श्रीमहादेवजी बोले-हे पार्वति ! युद्धमें अतिकाय आदि राक्षसोंकी महती सेनाको नष्ट हुई सुन रावण अति दुःखातुर हो महान् क्रोधसे भर गया ॥ १ ॥ और वह महातेजस्वी राक्षस लङ्काकी रक्षाके लिये इन्द्रजीतको नियुक्त कर स्वयं रघुनाथजीसे लड़नेके लिये चला ॥ २ ॥ महाबली राक्षसराज समस्त शस्त्रास्त्र-

दिव्यं स्यन्दनमारुह्य सर्वशस्त्रास्त्रसंयुतम् ।
राममेवाभिदुद्राव राक्षसेन्द्रो महाबलः ॥ ३ ॥
वानरान्बहुशो हत्वा बाणैराशीविषोपमैः ।
पातयामास सुग्रीवप्रमुखान्यूथनायकान् ॥ ४ ॥
गदापाणिं महासत्त्वं तत्र दृष्ट्वा विभीषणम् ।
उत्ससर्ज महाशक्तिं मयदत्तां विभीषणे ॥ ५ ॥
तामापतन्तीमालोक्य विभीषणविघातिनीम् ।
दत्ताभयोऽयं रामेण वधार्हो नायमासुरः ॥ ६ ॥
इत्युक्त्वा लक्ष्मणो भीमं चापमादाय वीर्यवान् ।
विभीषणस्य पुरतः स्थितोऽकम्प इवाचलः ॥ ७ ॥
सा शक्तिर्लक्ष्मणतनुं विवेशामोघशक्तितः ।
यावन्त्यः शक्तयो लोके मायायाः सम्भवन्ति हि ॥ ८ ॥
तासामाधारभूतस्य लक्ष्मणस्य महात्मनः ।
मायाशक्त्या भवेत्किं वा शेषांशस्य हरेस्तनोः ॥ ९ ॥
तथापि मानुषं भावमापन्नस्तदनुव्रतः ।
मूर्च्छितः पतितो भूमौ तमादातुं दशाननः ॥ १० ॥
हस्तैस्तोलयितुं शक्तो न बभूवातिविस्मितः ।
सर्वस्य जगतः सारं विराजं परमेश्वरम् ॥ ११ ॥
कथं लोकाश्रयं विष्णुं तोलयेल्लघुराक्षसः ।
ग्रहीतुकामं सौमित्रिं रावणं वीक्ष्य मारुतिः ॥ १२ ॥
आजघानोरसि क्रुद्धो वज्रकल्पेन मुष्टिना ।
तेन मुष्टिप्रहारेण जानुभ्यामपतद्भुवि ॥ १३ ॥
आस्यैश्च नेत्रश्रवणैरुद्वमन् रुधिरं बहु ।
वेघूर्णमाननयनो रथोपस्थ उपाविशत् ॥ १४ ॥
अथ लक्ष्मणमादाय हनूमान् रावणार्दितम् ।

से सुसज्जित एक दिव्य रथपर आरूढ़ हो श्रीरामचन्द्रजी-की ओर ही दौड़ा ॥ ३ ॥ उसने अपने सर्पके समान उग्र बाणोंसे बहुत-से वानरोंको मारकर सुग्रीव आदि यूथपतियोंको भी पृथिवीपर गिरा दिया ॥ ४ ॥ फिर महापराक्रमी विभीषणको वहाँ गदा लिये खड़ा देख उसने उसकी ओर मयदानवकी दी हुई महान् शक्ति छोड़ी ॥ ५ ॥ उस शक्तिको विभीषणका नाश करनेके लिये बढ़ती देख 'रामने इसे अभय दिया है, यह असुरकुमार वध किये जानेयोग्य नहीं है' ऐसा कहते हुए महावीर्यवान् लक्ष्मणजी अपना प्रचण्ड धनुष लेकर विभीषणके आगे पर्वतके समान अचल होकर खड़े हो गये ॥ ६–७ ॥

उस शक्तिकी सामर्थ्य अमोघ (कभी व्यर्थ न जानेवाली) थी, अतः वह लक्ष्मणजीके शरीरमें घुस गयी । संसारमें मायासे जितनी शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं महात्मा लक्ष्मणजी, उन सबके आधार भगवान् विष्णुके स्वरूप भूत शेषनागके अंशावतार हैं । उनका उस मायाशक्तिसे क्या बिगड़ सकता था ? ॥ ८-९ ॥ तथापि इस समय मनुष्यभाव अंगीकार करनेसे उसका अनुकरण करते हुए वे मूर्च्छित होकर पृथिवीपर गिर पड़े । लक्ष्मणजीको ले जानेके लिये रावण उन्हें अपने हाथोंसे उठानेमें सफल न हुआ, अतः उसे बड़ा ही विस्मय हुआ । भला, जो सम्पूर्ण जगत्का सार परमेश्वर विराट् पुरुष है, उस निखिल लोकाधार विष्णुको एक क्षुद्र राक्षस कैसे उठा सकता था ?

जब हनुमान्जीने देखा कि रावण लक्ष्मणजीको ले जाना चाहता है तो उन्होंने अति क्रुद्ध होकर उसकी छातीमें एक वज्र-सदृश घूँसा मारा । उस घूँसेके आघातसे रावण घुटनोंके बल पृथिवीपर गिर पड़ा ॥ १०–१२ ॥ और अपने मुख, नेत्र और कानोंसे बहुत-सा रुधिर वमन करता हुआ घूमती हुई आँखोंसे रथके पिछले भागमें बैठ गया ॥ १४ ॥ तदनन्तर हनुमान्जी रावणद्वारा आहत लक्ष्मणजीको अपनी भुजाओंपर उठाकर श्रीरामचन्द्रजी-

आनयद्रामसांनीप्यं बाहुभ्यां परिगृह्य तम् ॥१५॥
हनूमतः सुहृत्त्वेन भक्त्या च परमेश्वरः ।
लघुत्वमगमद्देवो गुरूणां गुरुरप्यजः ॥१६॥
सा शक्तिरपि तं त्यक्त्वा ज्ञात्वा नारायणांशजम् ।
रावणस्य रथं प्रागाद्रावणोऽपि शनैस्ततः॥१७॥
संज्ञामवाप्य जग्राह बाणासनमथो रुषा ।
राममेवाभिदुद्राव दृष्ट्वा रामोऽपि तं क्रुधा ॥१८॥
आरुह्य जगतां नाथो हनूमन्तं महाबलम् ।
रथस्थं रावणं दृष्ट्वा अभिदुद्राव राघवः ॥१९॥
ज्याशब्दमकरोत्तीव्रं वज्रनिष्पेषनिष्ठुरम् ।
रामो गम्भीरया वाचा राक्षसेन्द्रमुवाच ह ॥२०॥
राक्षसाधम तिष्ठाद्य क्व गमिष्यसि मे पुरः ।
कृत्वाऽपराधमेवं मे सर्वत्र समदर्शिनः ॥२१॥
येन बाणेन निहता राक्षसास्ते जनालये ।
तेनैव त्वां हनिष्यामि तिष्ठाद्य मम गोचरे ॥२२॥
श्रीरामस्य वचः श्रुत्वा रावणो मारुतात्मजम् ।
वहन्तं राघवं संख्ये शरैस्तीक्ष्णैरताडयत् ॥२३॥
हतस्यापि शरैस्तीक्ष्णैर्वायुसूनोः स्वतेजसा ।
व्यवर्धत पुनस्तेजो ननर्द च महाकपिः ॥२४॥
ततो दृष्ट्वा हनूमन्तं सव्रणं रघुसत्तमः ।
क्रोधमाहारयामास कालरुद्र इवापरः ॥२५॥
साश्वं रथं ध्वजं सूतं शस्त्रौघं धनुरञ्जसा ।
छत्रं पताकां तरसा चिच्छेद शितसायकैः ॥२६॥
ततो महाशरेणाशु रावणं रघुसत्तमः ।
विव्याध वज्रकल्पेन पाकारिरिव पर्वतम् ॥२७॥
रामबाणहतो वीरश्चचाल च मुमोह च ।

के पास ले आये ॥ १५ ॥ हनुमान्‌जीके लिये, उनके सौहार्द और भक्तिभावके कारण वे अजन्मा और प्रकाश-स्वरूप परमेश्वर (लक्ष्मणजी) भारी-से-भारी होनेपर भी अत्यन्त लघु (हल्के) हो गये ॥ १६ ॥ श्रीलक्ष्मण-जीको साक्षात् नारायणका अंश जानकर वह शक्ति भी उन्हें छोड़कर फिर रावणके रथपर चली गयी । इधर, रावणको भी जब धीरे-धीरे कुछ चेत हुआ तो उसने अत्यन्त क्रोधसे अपना धनुष उठाया और रामचन्द्रजीकी ओर दौड़ा । उसे (अपनी ओर आता) देख जगत्पति भगवान् राम अति क्रुद्ध होकर महाबली हनुमान्‌जीके कन्धेपर चढ़े और रावणको रथमें बैठा देख उसकी ओर दौड़े॥ १७–१९॥ भगवान् रामने अपने धनुषकी प्रत्यञ्चाका ऐसा कठोर शब्द किया जो मानो वज्र-को भी चूर्ण करनेवाला था, और फिर अति गम्भीर वाणीसे राक्षसराज रावणसे ऐसा कहा—॥ २० ॥ "अरे राक्षसा-धम ! जरा ठहर तो, मुझ सर्वत्र समदर्शीका ऐसा अपराध करके तू कहाँ जा सकता है ? ॥ २१ ॥ अरे ! तू तनिक मेरे सामने खड़ा रह, जिस बाणसे मैंने जन-स्थानमें (खर-दूषणादिसे युद्ध करते समय) तेरे राक्षसोंको मारा था आज उसीसे तुझे भी मार डालूँगा" ॥ २२ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके ये वचन सुनकर रावणने उन्हें वहन करनेवाले हनुमान्‌जीके बड़े तीखे बाण मारे ॥ २३ ॥ किन्तु उन तीक्ष्ण बाणोंके लगनेपर भी पवन-पुत्रका तेज अपने प्रभावसे बराबर बढ़ता ही गया और वे महान् कपीश्वर बड़े जोरसे गर्जने लगे ॥ २४ ॥ जब रघुनाथजीने हनुमान्‌जीको क्षत-विक्षत देखा तो दूसरे कालरुद्रके समान बड़ा भयंकर क्रोध धारण किया ॥ २५ ॥ और अपने तीक्ष्ण बाणोंसे बड़ी फुर्तीके साथ सुगमतासे ही रावणके घोड़ेसहित रथ, ध्वजा, सारथी, शस्त्रसमूह, धनुष, छत्र और पताका आदि काट डाले ॥२६॥ फिर इन्द्रने जैसे पर्वतोंपर आक्रमण किया था वैसे ही उन्होंने एक वज्रतुल्य महाबाणसे रावणको वेध डाला ॥ २७ ॥ भगवान् रामका बाण लगने-से वह वीर विचलित हो गया, उसे मूर्च्छा आ गयी और उसके हाथसे धनुष छूट गया ।

हस्तान्निपतितश्चापस्तं समीक्ष्य रघूत्तमः ॥२८॥
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद तत्किरीटं रविप्रभम् ।
अनुजानामि गच्छ त्वमिदानीं बाणपीडितः॥२९॥
प्रविश्य लङ्कामाश्वास्य श्वः पश्यसि बलं मम ।
रामबाणेन संविद्धो हृतदर्पोऽथ रावणः ॥३०॥
महत्या लज्जया युक्तो लङ्कां प्राविशदातुरः ।
रामोऽपि लक्ष्मणं दृष्ट्वा मूर्च्छितं पतितं भुवि॥३१॥
मानुषत्वमुपाश्रित्य लीलयानुशुशोच ह ।
ततः प्राह हनूमन्तं वत्स जीवय लक्ष्मणम् ॥३२॥
महौषधीः समानीय पूर्ववद्वानरानपि ।
तथेति राघवेणोक्तो जगामाशु महाकपिः ॥३३॥
हनूमान्वायुवेगेन क्षणात्तीर्त्वा महोदधिम् ।
एतस्मिन्नन्तरे चारा रावणाय न्यवेदयन् ॥३४॥
रामेण प्रेषितो देव हनूमान् क्षीरसागरम् ।
गतो नेतुं लक्ष्मणस्य जीवनार्थं महौषधीः ॥३५॥
श्रुत्वा तच्चारवचनं राजा चिन्तापरोऽभवत् ।
जगाम रात्रावेकाकी कालनेमिगृहं क्षणात् ॥३६॥
गृहागतं समालोक्य रावणं विस्मयान्वितः ।
कालनेमिरुवाचेदं प्राञ्जलिर्भयविह्वलः ।
अर्घ्यादिकं ततः कृत्वा रावणस्याग्रतः स्थितः॥३७॥
किं ते करोमि राजेन्द्र किमागमनकारणम् ।
कालनेमिमुवाचेदं रावणो दुःखपीडितः ॥३८॥
ममापि कालवशतः कष्टमेतदुपस्थितम् ।
मया शक्त्या हतो वीरो लक्ष्मणः पतितो भुवि ।३९।
तं जीवयितुमानेतुमोषधीर्हनुमान् गतः ।
यथा तस्य भवेद्विघ्नं तथा कुरु महामते ॥४०॥
मायया मुनिवेषेण मोहयस्व महाकपिम् ।
कालात्ययो यथा भूयात्तथा कृत्वैहि मन्दिरे ॥४१॥

उसकी ऐसी दशा देखकर रघुनाथजीने एक अर्द्धचन्द्राकार बाणसे उसका सूर्यसदृश प्रकाशमान मुकुट काट डाला और कहा—"रावण ! तुम मेरे बाणसे पीड़ित हो; अतः मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ, इस समय तुम जाओ ॥ २८-२९ ॥ आज लंकामें जाकर विश्राम करो, फिर कल मेरा पराक्रम देखना ।"

तब, श्रीरामचन्द्रजीके बाणसे विद्ध होनेके कारण सारा दर्प चूर्ण हो जानेपर रावणने लज्जित और व्याकुल हो लंकामें प्रवेश किया । इधर रामचन्द्रजी भी लक्ष्मणजीको मूर्च्छित अवस्थामें पृथिवीपर पड़े देख मनुष्यभावका आश्रय ले लीलासे शोक करने लगे और हनुमान्‌जीसे बोले—"वत्स ! पहली तरह ही (द्रोणाचलसे) महौषधि लाकर लक्ष्मण और वानरोंको जीवित करो ।" रघुनाथजीके इस प्रकार कहनेपर महाकपि हनुमान्‌जी 'बहुत अच्छा' कह एक क्षणमें ही महासागरको पारकर वायुवेगसे चले । इसी समय रावणके गुप्तचरोंने उससे कहा—॥३०-३४॥ "स्वामिन् ! रामने हनुमान्‌को क्षीर-समुद्रपर भेजा है और वह लक्ष्मणको जीवित करनेके लिये महौषधि लेने गया है" ॥ ३५ ॥ उनके ये वचन सुनकर राक्षसराज अति चिन्तातुर हुआ और उसी क्षण रात्रिमें ही अकेला कालनेमिके घर गया ॥ ३६ ॥

रावणको घर आया देख कालनेमिको बड़ा आश्चर्य हुआ; वह उसे अर्घ्यादि दे उसके सामने खड़ा हो गया और अति भयभीत हो हाथ जोड़कर बोला ॥३७॥ "राजराजेश्वर ! आज किस निमित्तसे आना हुआ ? कहिये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ ?" तब रावणने अति दुःखित होकर कालनेमिसे कहा ॥३८॥"आज कालक्रमसे मुझे भी यह कष्ट उपस्थित हो गया । मेरी शक्तिसे आहत होकर वीर लक्ष्मण पृथिवीपर गिर पड़ा है ॥३९॥ उसे जीवित करनेके लिये हनुमान् ओषधि लेने गया है । हे महामते ! तुम कोई ऐसा उपाय करो जिससे उसके लानेमें विघ्न खड़ा हो जाय ॥ ४० ॥ तुम मायासे मुनि-वेष बनाकर हनुमान्‌को मोहित करो जिससे (उस ओषधिके प्रयोगका) समय निकल जाय । यह कार्य करके फिर अपने घर लौट आना" ॥ ४१ ॥

रावणस्य वचः श्रुत्वा कालनेमिरुवाच तम् ।
रावणेश वचो मेऽद्य शृणु धारय तत्त्वतः ॥४२॥
प्रियं ते करवाण्येव न प्राणान् धारयाम्यहम् ।
मारीचस्य यथाऽरण्ये पुराभून्मृगरूपिणः ॥४३॥
तथैव मे न सन्देहो भविष्यति दशानन ।
हताः पुत्राश्च पौत्राश्च बान्धवा राक्षसाश्च ते ॥४४॥
घातयित्वाऽसुरकुलं जीवितेनापि किं तव ।
राज्येन वा सीतया वा किं देहेन जडात्मना ॥४५॥
सीतां प्रयच्छ रामाय राज्यं देहि विभीषणे ।
वनं याहि महाबाहो रम्यं मुनिगणाश्रयम् ॥४६॥
स्नात्वा प्रातः शुभजले कृत्वा सन्ध्यादिकाः क्रियाः
तत एकान्तमाश्रित्य सुखासनपरिग्रहः ॥४७॥
विसृज्य सर्वतः सङ्गमितरान्विषयान्बहिः ।
बहिःप्रवृत्ताक्षगणं शनैः प्रत्यक् प्रवाहय ॥४८॥
प्रकृतेर्भिन्नमात्मानं विचारय सदाऽनघ ।
चराचरं जगत्कृत्स्नं देहबुद्धीन्द्रियादिकम् ॥४९॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं दृश्यते श्रूयते च यत् ।
सैषा प्रकृतिरित्युक्ता सैव मायेति कीर्तिता ॥५०॥
सर्गस्थितिविनाशानां जगद्वृक्षस्य कारणम् ।
लोहितश्वेतकृष्णादि प्रजाः सृजति सर्वदा ॥५१॥
कामक्रोधादिपुत्राद्यान्हिंसातृष्णादिकन्यकाः ।
मोहयन्त्यनिशं देवमात्मानं स्वैर्गुणैर्विभुम् ॥५२॥
कर्तृत्वभोक्तृत्वमुखान् स्वगुणानात्मनीश्वरे ।
आरोप्य स्ववशं कृत्वा तेन क्रीडति सर्वदा ॥५३॥
शुद्धोऽप्यात्मा यया युक्तः पश्यतीव सदा बहिः ।
विस्मृत्य च स्वमात्मानं मायागुणविमोहितः ॥५४॥
यदा सद्गुरुणा युक्तो बोध्यते बोधरूपिणा ।

रावणके वचन सुनकर कालनेमिने उससे कहा—"महाराज रावण ! मेरी बात सुनिये और उसे यथार्थ समझकर धारण कीजिये ॥ ४२ ॥ मैं आपका प्रिय करूँगा ही, उसके लिये मैं अपने प्राणोंकी परवा नहीं करता, (तथापि उससे क्या लाभ होगा ?) हे दशानन ! इसमें सन्देह नहीं जो कुछ दण्डकारण्यमें मृगरूपधारी मारीचका हुआ था वही दशा मेरी भी होगी । देखिये, आपके पुत्र, पौत्र और अनेकों सगे-सम्बन्धी राक्षसलोग मारे गये ॥ ४३-४४ ॥ इस प्रकार राक्षसवंशका नाश कराकर आपके जीवन, राज्य, सीता अथवा इस जड देहसे भी क्या लाभ है ? ॥ ४५ ॥ हे महाबाहो ! आप रामचन्द्रजीको सीता और विभीषणको राज्य देकर मुनिगणसेवित सुरम्य तपोवनको जाइये ॥ ४६ ॥ वहाँ प्रातःकाल शुद्ध जलमें स्नान कर तथा सन्ध्योपासनादि नित्य-कर्मोंसे निवृत्त हो एकान्त देशमें सुखमय आसनसे बैठिये ॥ ४७ ॥ और सब ओरसे निःसंग हो बाह्य विषयोंको छोड़ अपनी बाह्य वृत्तिवाली इन्द्रियोंको धीरे-धीरे अन्तर्मुख कीजिये ॥ ४८ ॥ हे अनघ ! अपने आत्माको सदा प्रकृतिसे भिन्न विचारिये । देह, बुद्धि और इन्द्रियादिसे युक्त सम्पूर्ण चराचर जगत् अर्थात् ब्रह्मासे लेकर स्तम्ब (कीटविशेष) पर्यन्त जो कुछ दिखायी या सुनायी देता है वह सब प्रकृति है और वही माया भी कहलाती है ॥ ४९-५० ॥ वही सर्वदा संसार-रूपी वृक्षकी उत्पत्ति, स्थिति और विनाशकी कारणरूप श्वेत (सात्त्विक) लोहित (राजस) और कृष्णवर्ण (तामस) प्रजा उत्पन्न करती है ॥ ५१ ॥ तथा वही अपने गुणोंसे अहर्निश सर्वव्यापक आत्मदेवको मोहित कर काम-क्रोधादि पुत्रों और हिंसा-तृष्णादि कन्याओंको उत्पन्न करती है ॥ ५२ ॥ वह कर्तृत्व और भोक्तृत्व आदि अपने गुणोंको अपने प्रभु आत्मामें आरोपित कर उसे अपने वशीभूत कर उससे सदा खेलती रहती है ॥ ५३ ॥ जिससे युक्त होकर आत्मा मायिक गुणोंसे मोहित होकर अपने स्वरूपको भूल जाता है, और नित्य-शुद्ध होता हुआ भी सदा बाह्य विषयोंको देखने लगता है ॥ ५४ ॥ जिस समय सद्गुरुका साक्षात्कार होता है और वे इसे निर्मल ज्ञानदृष्टिसे जागृत करते हैं उस समय यह बाह्य विषयों-

निवृत्तदृष्टिरात्मानं पश्यत्येव सदा स्फुटम् ॥५५॥

जीवन्मुक्तः सदा देही मुच्यते प्राकृतैर्गुणैः ।

त्वमप्येवं सदात्मानं विचार्य नियतेन्द्रियः ॥५६॥

प्रकृतेरन्यमात्मानं ज्ञात्वा मुक्तो भविष्यसि ।

ध्यातुं यद्यसमर्थोऽसि सगुणं देवमाश्रय ॥५७॥

हृत्पद्मकर्णिके स्वर्णपीठे मणिगणान्विते ।

मृदुश्लक्ष्णतरे तत्र जानक्या सह संस्थितम् ॥५८॥

वीरासनं विशालाक्षं विद्युत्पुञ्जनिभाम्बरम् ।

किरीटहारकेयूरकौस्तुभादिभिरन्वितम् ॥५९॥

नूपुरैः कटकैर्भान्तं तथैव वनमालया ।

लक्ष्मणेन धनुर्द्वन्द्वकरेण परिसेवितम् ॥६०॥

एवं ध्यात्वा सदाऽऽत्मानं रामं सर्वहृदि स्थितम् ।

भक्त्या परमया युक्तो मुच्यते नात्र संशयः ॥६१॥

शृणु वै चरितं तस्य भक्तैर्नित्यमनन्यधीः ।

एवं चेत्कृतपूर्वाणि पापानि च महान्त्यपि ।

क्षणादेव विनश्यन्ति यथाऽग्नेस्तूलराशयः ॥६२॥

भजस्व रामं परिपूर्णमेकं
विहाय वैरं निजभक्तियुक्तः ।
हृदा सदा भावितभावरूप-
मनामरूपं पुरुषं पुराणम् ॥६३॥

से अपनी दृष्टि हटाकर अपने आपको ही स्पष्ट देखता है ॥ ५५ ॥ और फिर यह देहधारी जीव जीवन्मुक्त होकर प्राकृत गुणोंसे छूट जाता है ।

हे रावण ! आप भी संयतेन्द्रिय होकर इसी प्रकार अपने वास्तविक आत्मस्वरूपका चिन्तन कीजिये ॥५६॥ इससे आत्माको प्रकृतिसे भिन्न जानकर आप मुक्त हो जायँगे । और यदि आप इस प्रकार ध्यान करनेमें असमर्थ हों तो सगुण भगवान्‌का आश्रय लीजिये ॥५७॥ (उस सगुण ध्यानकी विधि इस प्रकार है) हृदयकमलकी कर्णिकाओंमें मणिगणजटित अति मृदुल और स्वच्छ सुवर्ण-सिंहासनपर जो जानकीजीसहित विराजमान हैं, जो वीरासनसे बैठे हैं, जिनके नेत्र अति विशाल और वस्त्र विद्युल्लताके समान तेजोमय हैं तथा जो किरीट, हार, केयूर और कौस्तुभमणि आदि आभूषणोंसे सुशोभित हैं; नूपुर, कटक और वनमाला आदिसे जिनकी अपूर्व शोभा हो रही है तथा लक्ष्मणजी अपने हाथोंमें दो धनुष (एक अपना और एक प्रभु रामका) लिये जिनकी सेवामें खड़े हैं, उन सबके हृदयमें विराजमान अपने आत्मारूप भगवान् रामका इस प्रकार सर्वदा अत्यन्त भक्तिपूर्वक ध्यान करनेसे आप मुक्त हो जायँगे—इसमें सन्देह नहीं ॥ ५८–६१ ॥ नित्य अनन्यबुद्धि होकर उनके भक्तोंके मुखारविन्दसे उनके पवित्र चरित्र सुनिये । ऐसा करनेसे आपके पूर्वकृत महान् पाप भी एक क्षणमें ही इस प्रकार भस्म हो जायँगे जैसे अग्निसे रूईका ढेर भस्म हो जाता है ॥ ६२ ॥ जो सर्वत्र परिपूर्ण हैं उन अद्वितीय भगवान् रामके साथ वैर छोड़कर आत्मप्रेम-पूर्वक उन नामरूपरहित पुराणपुरुषकी हृदयमें सगुण-भावसे भावना कर उनका सर्वदा भजन कीजिये" ॥६३॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे
युद्धकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तम सर्ग

कालनेमिका कपट, हनुमान्‌जीद्वारा उसका वध, लक्ष्मणजीका सचेत होना और रावणका कुम्भकर्णको जगाना।

श्रीमहादेव उवाच

कालनेमिवचः श्रुत्वा रावणोऽमृतसन्निभम् ।
जज्वाल क्रोधताम्राक्षः सर्पिरद्भिरिवाग्निमत् ॥ १ ॥
निहन्मि त्वां दुरात्मानं मच्छासनपराङ्मुखम् ।
परैः किञ्चिद्गृहीत्वा त्वं भाषसे रामकिंकरः ॥ २ ॥
कालनेमिरुवाचेदं रावणं देव किं क्रुधा ।
न रोचते मे वचनं यदि गत्वा करोमि तत् ॥ ३ ॥
इत्युक्त्वा प्रययौ शीघ्रं कालनेमिर्महासुरः ।
नोदितो रावणेनैव हनूमद्विघ्नकारणात् ॥ ४ ॥
स गत्वा हिमवत्पार्श्वं तपोवनमकल्पयत् ।
तत्र शिष्यैः परिवृतो मुनिवेषधरः खलः ॥ ५ ॥
गच्छतो मार्गमासाद्य वायुसूनोर्महात्मनः ।

ततो गत्वा ददर्शाथ हनूमानाश्रमं शुभम् ॥ ६ ॥
चिन्तयामास मनसा श्रीमान्पवननन्दनः ।
पुरा न दृष्टमेतन्मे मुनिमण्डलमुत्तमम् ॥ ७ ॥
मार्गो विभ्रंशितो वा मे भ्रमो वा चित्तसम्भवः ।
यद्वाऽऽविश्याश्रमपदं दृष्ट्वा मुनिमशेषतः ॥ ८ ॥
पीत्वा जलं ततो यामि द्रोणाचलमनुत्तमम् ।
इत्युक्त्वा प्रविवेशाथ सर्वतो योजनायतम् ॥ ९ ॥
आश्रमं कदलीशालखर्जूरपनसादिभिः ।
समावृतं पक्वफलैर्नम्रशाखैश्च पादपैः ॥१०॥
वैरभावविनिर्मुक्तं शुद्धं निर्मललक्षणम् ।
तस्मिन्महाश्रमे रम्ये कालनेमिः स राक्षसः ॥११॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! जैसे अग्निसे तपाया हुआ घृत जल डालनेसे छुनछुनाने लगता है वैसे ही कालनेमिके ये अमृततुल्य वचन सुनकर रावण जल उठा और क्रोधसे उसके नेत्र लाल हो गये ॥१॥ वह कहने लगा—"अरे ! मालूम होता है तू शत्रुसे कुछ लेकर ही इस प्रकार रामके दासकी भाँति बातें बनाता है । याद रख, मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेवाले तुझ दुष्टको मैं अभी मार डालूँगा" ॥२॥ तब कालनेमिने रावणसे कहा—"देव ! क्रोधकी क्या बात है ? यदि आपको मेरा कथन अच्छा नहीं लगता तो मैं अभी जाकर (आप जैसा कहते हैं) वही करता हूँ" ॥ ३ ॥ इतना कह महादैत्य कालनेमि रावणकी ही प्रेरणासे हनुमान्‌जीके कार्यमें विघ्न करनेके लिये वहाँसे तुरन्त चल दिया ॥ ४ ॥

उसने हिमालयकी तराईमें पहुँचकर उधरसे जाते हुए वायुपुत्र महात्मा हनुमान्‌के मार्गमें एक तपोवन बनाया और वहाँ वह दुष्ट स्वयं मुनिवेष बनाकर शिष्यवर्गसे घिरकर बैठ गया ।

जिस समय हनुमान्‌जी वहाँ पहुँचे तो उन्होंने वह सुन्दर आश्रम देखा ॥५-६॥ उसे देखकर श्रीमान् पवननन्दन मन-ही-मन सोचने लगे, 'मैंने पहले तो यह उत्तम मुनिमण्डल देखा नहीं था ॥ ७ ॥ क्या मैं मार्ग भूल गया हूँ, या मेरे चित्तमें कोई भ्रम हो गया है ? अथवा चलो, इस आश्रममें चलकर सब मुनीश्वरोंका दर्शन करूँ और जल पीऊँ, तदुपरान्त पर्वतश्रेष्ठ द्रोणाचलपर चलूँगा ।' ऐसा विचार वे उस आश्रममें गये, वह सब ओरसे एक योजन विस्तारवाला था तथा उसमें सब ओर, पके हुए फलोंसे जिनकी शाखाएँ झुकी हुई हैं ऐसे कदली, शाल, खजूर और कटहल आदिके वृक्ष लगे हुए थे ॥ ८–१० ॥ वह शुद्ध और निर्मल आश्रम वैरभावसे सर्वथा रहित था । उस अति सुरम्य महाश्रममें राक्षस कालनेमि इन्द्रजाल विद्याका आश्रय कर शिवजीका

इन्द्रयोगं समास्थाय चकार शिवपूजनम् ।
हनूमानभिवाद्याह गौरवेण महासुरम् ॥१२॥
भगवन् रामदूतोऽहं हनूमान्नाम नामतः ।
रामकार्येण महता क्षीराब्धिं गन्तुमुद्यतः ॥१३॥
तृषा मां बाधते ब्रह्मन्नुदकं कुत्र विद्यते ।
यथेच्छं पातुमिच्छामि कथ्यतां मे मुनीश्वर ॥१४॥
तच्छ्रुत्वा मारुतेर्वाक्यं कालनेमिस्तमब्रवीत् ।
कमण्डलुगतं तोयं मम त्वं पातुमर्हसि ॥१५॥
भुङ्क्ष्व चेमानि पक्वानि फलानि तदनन्तरम् ।
निवसस्व सुखेनात्र निद्रामेहि त्वरास्तु मा ॥१६॥
भूतं भव्यं भविष्यं च जानामि तपसा स्वयम् ।
उत्थितो लक्ष्मणः सर्वे वानरा रामवीक्षिताः ॥१७॥
तच्छ्रुत्वा हनुमानाह कमण्डलुजलेन मे ।
न शाम्यत्यधिका तृष्णा ततो दर्शय मे जलम् ॥१८॥
तथेत्याज्ञापयामास बटुं मायाविकल्पितम् ।
वटो दर्शय विस्तीर्णं वायुसूनोर्जलाशयम् ॥१९॥
निमील्य चाक्षिणी तोयं पीत्वाऽऽगच्छ ममान्तिकम् ।
उपदेक्ष्यामि ते मन्त्रं येन द्रक्ष्यसि चौषधीः ॥२०॥
तथेति दर्शितं शीघ्रं बटुना सलिलाशयम् ।
प्रविश्य हनुमांस्तोयमपिबन्मीलितेक्षणः ॥२१॥
ततश्चागत्य मकरी महामाया महाकपिम् ।
अग्रसत्तं महावेगान्मारुतिं घोररूपिणी ॥२२॥
ततो ददर्श हनुमान् ग्रसन्तीं मकरीं रुषा ।
दारयामास हस्ताभ्यां वदनं सा ममार ह ॥२३॥
ततोऽन्तरिक्षे ददृशे दिव्यरूपधराङ्गना ।
धान्यमालीति विख्याता हनूमन्तमथाब्रवीत् ॥२४॥

पूजन कर रहा था । हनुमान्‌जीने उस महादैत्यको बड़े गौरवसे नमस्कार कर कहा—॥११-१२॥ "भगवन् ! मैं भगवान् रामका दूत हूँ, मेरा नाम हनुमान् है और मैं श्रीरामचन्द्रजीके एक महान् कार्यसे क्षीर-सागरको जा रहा हूँ ॥१३॥ ब्रह्मन् ! मुझे बहुत प्यास लगी हुई है, मैं खूब जल पीना चाहता हूँ । हे मुनीश्वर ! कृपया बतलाइये यहाँ जल कहाँ है ?" ॥१४॥

हनुमान्‌जीके ये वचन सुनकर कालनेमिने कहा—"तुम मेरे कमण्डलुका जल पी सकते हो ॥१५॥ यहाँ ये फल मौजूद हैं, इन्हें खाओ और फिर सुखपूर्वक यहाँ विश्राम लेकर कुछ सो लो, ऐसी जल्दी मत करो ॥१६॥ मैं अपने तपोबलसे भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीनों कालोंकी बात जानता हूँ । इस समय रामचन्द्रजीके देखनेसे ही लक्ष्मणजी और समस्त वानर-गण सचेत होकर उठ बैठे हैं" ॥१७॥ यह सुनकर हनुमान्‌जीने कहा—"मुझे बड़े जोरकी प्यास लगी हुई है, इस कमण्डलुके जलसे वह शान्त नहीं हो सकती, अतः मुझे जलाशय ही दिखला दीजिये" ॥१८॥ तब 'अच्छी बात है' ऐसा कहकर उसने एक माया-कल्पित ब्रह्मचारीको आज्ञा दी, "ब्रह्मचारिन् ! हनुमान्‌जी-को वह विस्तृत जलाशय दिखला दो" ॥१९॥ (फिर हनुमान्‌जीसे बोला—) "देखो, तुम आँखें मूँदकर जल पीना और फिर तुरन्त मेरे पास चले आना । मैं तुम्हें एक मन्त्रका उपदेश करूँगा, जिससे तुम ओषधिको देख सकोगे" ॥२०॥

तब बटुने 'जो आज्ञा' कह तुरन्त ही जलाशय दिखला दिया । उसमें घुसकर हनुमान्‌जी आँख मूँदकर जल पीने लगे ॥२१॥ इतनेहीमें वहाँ एक महामायाविनी घोररूपिणी मकरी आकर बड़ी शीघ्रतासे महाकपि हनुमान्‌जीको निगलने लगी ॥२२॥ हनुमान्‌जीने उस मकरीको अपनेको निगलते देख अति क्रुद्ध अपने हाथोंसे उसका मुख फाड़ डाला, जिससे तत्काल मर गयी ॥२३॥

इसी समय आकाशमें एक दिव्यरूप स्त्री दिखलायी दी, उसका नाम धान्

त्वत्प्रसादादहं शापाद्विमुक्ताऽस्मि कपीश्वर ।
शप्ताऽहं मुनिना पूर्वमप्सरा कारणान्तरे ॥२५॥
आश्रमे यस्तु ते दृष्टः कालनेमिर्महासुरः ।
रावणप्रहितो मार्गे विघ्नं कर्तुं तवानघ ॥२६॥
मुनिवेषधरो नासौ मुनिर्विप्रविहिंसकः ।
जहि दुष्टं गच्छ शीघ्रं द्रोणाचलमनुत्तमम् ॥२७॥
गच्छाम्यहं ब्रह्मलोकं त्वत्स्पर्शाद्धूतकल्मषा ।
इत्युक्त्वा सा ययौ स्वर्गं हनूमानप्यथाश्रमम् ॥२८॥
आगतं तं समालोक्य कालनेमिरभाषत ।
किं विलम्बेन महता तव वानरसत्तम ॥२९॥
गृहाण मत्तो मन्त्रांस्त्वं देहि मे गुरुदक्षिणाम् ।
इत्युक्तो हनुमान्मुष्टिं दृढं बद्ध्वाऽऽह राक्षसम् ॥३०॥
गृहाण दक्षिणामेतामित्युक्त्वा निजघान तम् ।
विसृज्य मुनिवेषं स कालनेमिर्महासुरः ॥३१॥
युयुधे वायुपुत्रेण नानामायाविधानतः ।
महामायिकदूतोऽसौ हनूमान्मायिनां रिपुः ॥३२॥
जघान मुष्टिना शीर्ष्णि भग्नमूर्धा ममार सः ।
ततः क्षीरनिधिं गत्वा दृष्ट्वा द्रोणं महागिरिम् ॥३३॥
अदृष्ट्वा चौषधीस्तत्र गिरिमुत्पाट्य सत्वरः ।
गृहीत्वा वायुवेगेन गत्वा रामस्य सन्निधिम् ॥३४॥
उवाच हनुमान् राममानीतोऽयं महागिरिः ।
यदुक्तं कुरु देवेश विलम्बो नात्र युज्यते ॥३५॥
श्रुत्वा हनूमतो वाक्यं रामः सन्तुष्टमानसः ।
गृहीत्वा चौषधीः शीघ्रं सुषेणेन महामतिः ॥३६॥

हनुमान्‌जीसे बोली—॥२४॥ "हे कपीश्वर ! आपकी कृपासे मैं आज शाप-मुक्त हो गयी । पहले मैं एक अप्सरा थी । किसी कारणवश मुझे एक मुनीश्वरने शाप दिया था । (इसीसे मैं मकरी हो गयी थी) ॥२५॥ इस आश्रममें आपने जिस पुरुषको देखा है वह कालनेमि नामक महादैत्य है । हे अनघ ! इसे रावणने आपके मार्गमें विघ्न डालनेके लिये भेजा है ॥२६॥ यह मुनिवेष धारण करनेवाला वस्तुतः कोई मुनि नहीं है, बल्कि ब्राह्मणोंकी हिंसा करनेवाला है । इस दुष्टको शीघ्र ही मारकर आप पर्वतश्रेष्ठ द्रोणाचल को जाइये ॥२७॥ मैं आपके स्पर्शसे निष्पाप होकर अब ब्रह्मलोकको जाती हूँ ।" ऐसा कह वह स्वर्गलोक-को चली गयी और हनुमान्‌जी भी आश्रमको चले ॥२८॥

हनुमान्‌जीको आये देख कालनेमिने कहा—"हे वानर श्रेष्ठ ! अब बहुत विलम्ब करनेसे तुम्हें क्या लाभ है ? ॥२९॥ लो, मुझसे मन्त्र ग्रहण करो और मुझे गुरुदक्षिणा दो !" उसके इस प्रकार कहनेपर हनुमान्‌जीने अपनी मुट्ठी कसकर बाँधी और उस राक्षससे कहा—॥३०॥ "लो दक्षिणा तो यह लो"—ऐसा कह उसके एक मुक्का मारा । उसके लगते ही महादैत्य कालनेमि मुनिवेष त्यागकर नाना प्रकारकी मायाओंसे पवनपुत्रके साथ लड़ने लगा । किन्तु हनुमान्‌जी तो महामायावी (मायापति भगवान् राम) के दूत और इन तुच्छ मायावी राक्षसोंके शत्रु थे, (उनपर इन तुच्छ मायाओं-का क्या प्रभाव हो सकता था ?) ॥३१-३२॥ उन्होंने उसके शिरमें एक मुक्का मारा जिससे मस्तक फट जानेके कारण वह तुरन्त मर गया ।

तदनन्तर वे क्षीर-समुद्रपर पहुँचे और महापर्वत द्रोणाचलको देखा । किन्तु उन्हें वह ओषधि न मिली । अतः फौरन ही उस पर्वतको उखाड़ लिया और उसे वायुवेगसे रामचन्द्रजीके पास ले जाकर उनसे कहा—"हे देवेश्वर ! मैं इस महापर्वतको ले आया हूँ । आप जो उचित समझें शीघ्र ही करें, इस कार्यमें विलम्ब करना ठीक नहीं है" ॥३३-३५॥

हनुमान्‌जीका यह वचन सुनकर भगवान् राम अति प्रसन्न हुए और उन महामति प्रभुने तुरन्त ही

चिकित्सां कारयामास लक्ष्मणाय महात्मने ।
ततः सुप्तोत्थित इव श्रुत्वा प्रोवाच लक्ष्मणः ।३७।
तिष्ठ तिष्ठ क्व गन्तासि हन्मीदानीं दशानन ।
इति ब्रुवन्तमालोक्य मूर्ध्न्यवघ्राय राघवः ॥३८॥
मारुतिं प्राह वत्साद्य त्वत्प्रसादान्महाकपे ।
निरामयं प्रपश्यामि लक्ष्मणं भ्रातरं मम ॥३९॥
इत्युक्त्वा वानरैः सार्धं सुग्रीवेण समन्वितः ।
विभीषणमतेनैव युद्धाय समवस्थितः ॥४०॥
पाषाणैः पादपैश्चैव पर्वताग्रैश्च वानराः ।
युद्धायाभिमुखा भूत्वा ययुः सर्वे युयुत्सवः ॥४१॥

रावणो विव्यथे रामबाणैर्विद्धो महासुरः ।
मातङ्ग इव सिंहेन गरुडेनेव पन्नगः ॥४२॥
अभिभूतोऽगसद्राजा राघवेण महात्मना ।
सिंहासने समाविश्य राक्षसानिदमब्रवीत् ॥४३॥
मानुषेणैव मे मृत्युमाह पूर्वं पितामहः ।
मानुषो हि न मां हन्तुं शक्तोऽस्ति भुवि कश्चन ।४४।
ततो नारायणः साक्षान्मानुषोऽभून्न संशयः ।
रामो दाशरथिर्भूत्वा मां हन्तुं समुपस्थितः ॥४५॥
अनरण्येन यत्पूर्वं शप्तोऽहं राक्षसेश्वर ।
उत्पत्स्यते च मद्वंशे परमात्मा सनातनः ॥४६॥
तेन त्वं पुत्रपौत्रैश्च बान्धवैश्च समन्वितः ।
हनिष्यसे न सन्देह इत्युक्त्वा मां दिवं गतः ॥४७॥
स एव रामः संजातो मदर्थं मां हनिष्यति ।
कुम्भकर्णस्तु मूढात्मा सदा निद्रावशं गतः ॥४८॥
तं विबोध्य महासत्त्वमानयन्तु ममान्तिकम् ।
इत्युक्तास्ते महाकायास्तूर्णं गत्वा तु यत्नतः॥४९॥

उस पर्वतसे ओषधि लेकर सुषेणसे महात्मा लक्ष्मणकी चिकित्सा करायी । तब नींदसे उठे हुएके समान लक्ष्मणजीने सचेत होकर कहा—॥३६-३७॥ "अरे दुष्ट दशानन ! खड़ा रह, खड़ा रह, तू जायगा कहाँ ? मैं तुझे अभी मारे डालता हूँ ।" उन्हें इस प्रकार कहते देख रघुनाथजीने उनका शिर सूँघकर हनुमान्‌जीसे कहा—"हे वत्स ! हे महाकपे ! आज तुम्हारी कृपासे ही मैं अपने भाई लक्ष्मणको सकुशल देख रहा हूँ" ॥३८-३९॥ हनुमान्‌जीसे इस प्रकार कह श्रीरामचन्द्रजी सुग्रीव और अन्यान्य वानरोंके साथ विभीषणकी सम्मतिसे युद्धकी तैयारी करने लगे ॥४०॥ तब युद्धके लिये अत्यन्त उत्सुक समस्त वानरगण पाषाण, वृक्ष और पर्वतशिखर आदि लेकर लड़नेके लिये चले ॥ ४१ ॥

इधर, भगवान् रामके बाणोंसे विद्ध होकर महाराक्षस रावण ऐसा व्याकुल हो रहा था जैसे सिंहसे हाथी और गरुडसे सर्प हो जाता है । अतः वह राक्षसराज महात्मा रामसे परास्त होकर लंकापुरीमें गया और अपने राजसिंहासनपर बैठकर राक्षसोंसे इस प्रकार कहने लगा—॥४२-४३॥ "पूर्वकालमें पितामह ब्रह्माजीने मेरी मृत्यु मनुष्यके ही हाथसे बतलायी थी, किन्तु संसारमें ऐसा कोई मनुष्य नहीं है जो मुझे मार सके ॥४४॥ अतः इसमें सन्देह नहीं साक्षात् नारायणहीने मनुष्यका अवतार लिया है और वे दशरथकुमार राम होकर मुझे मारनेके लिये आये हैं ॥४५॥ पूर्वकालमें मुझे जो अनरण्यने शाप दिया था कि 'हे राक्षसराज ! मेरे वंशमें सनातन पुरुष परमात्मा अवतार लेंगे और उन्हींके हाथसे तुम निःसन्देह अपने पुत्र, पौत्र और बान्धवोंके सहित मारे जाओगे' और ऐसा कहकर वह स्वर्गको चला गया था, सो उन्हीं रामने मेरेलिये अवतार लिया है और वे मुझे अवश्य मारेंगे। हमारा भाई कुम्भकर्ण तो बड़ा ही मूढ है, वह सदा ही निद्राके वशीभूत रहता है ॥४६-४८॥ तुम उस महावीरको जगाकर मेरे पास ले आओ ।" रावणके इस प्रकार कहनेपर वे महाकाय राक्षसगण तुरन्त ही गये और प्रयत्नपूर्वक कुम्भकर्णको जगाकर

विबोध्य कुम्भश्रवणं निन्यू रावणसन्निधिम् ।
नमस्कृत्य स राजानमासनोपरि संस्थितः ॥५०॥

रावणके पास ले आये । वहाँ पहुँचनेपर वह राजाको प्रणाम कर आसनपर बैठ गया ॥४९-५०॥

तमाह रावणो राजा भ्रातरं दीनया गिरा ।
कुम्भकर्ण निबोध त्वं महत्कष्टमुपस्थितम् ॥५१॥

तब राजा रावणने अत्यन्त दीन-वाणीसे उस अपने भाईसे कहा—"कुम्भकर्ण ! इस समय हमारे ऊपर बड़ा संकट है, सो तुम सुनो ॥ ५१ ॥

रामेण निहताः शूराः पुत्राः पौत्राश्च बान्धवाः ।
किं कर्तव्यमिदानीं मे मृत्युकाल उपस्थिते ॥५२॥

रामने हमारे बड़े-बड़े वीर, पुत्र, पौत्र और बन्धु-बान्धवगण मार डाले हैं । भाई, इस समय मेरा मृत्युकाल आ गया है, अब मुझे क्या करना चाहिये ॥ ५२ ॥

एष दाशरथी रामः सुग्रीवसहितो बली ।
समुद्रं सबलस्तीर्त्वा मूलं नः परिकृन्तति ॥५३॥

यह महाबली दशरथकुमार राम सुग्रीवके सहित दलबलके साथ समुद्र पारकर सब ओरसे हमारी जड़ काट रहा है ॥ ५३ ॥

ये राक्षसा मुख्यतमास्ते हता वानरैर्युधि ।
वानराणां क्षयं युद्धे न पश्यामि कदाचन ॥५४॥

हमारे जो मुख्य-मुख्य राक्षस थे वे सब युद्धमें वानरोंके हाथसे मारे गये, किन्तु इस युद्धमें हमें वानरोंका क्षय होता कभी दिखायी नहीं देता ॥ ५४ ॥

नाशयस्व महाबाहो यदर्थं परिबोधितः ।
भ्रातुरर्थे महासत्त्व कुरु कर्म सुदुष्करम् ॥५५॥

हे महाबाहो ! तुम इनका नाश करो, मैंने इसीलिये तुम्हें जगाया है । हे महावीर ! अपने भाईके लिये इस दुष्कर कार्यको करो" ॥ ५५ ॥

श्रुत्वा तद्रावणेन्द्रस्य वचनं परिदेवितम् ।
कुम्भकर्णो जहासोच्चैर्वचनं चेदमब्रवीत् ॥५६॥

राजा रावणके ये दुःखमय वचन सुनकर कुम्भकर्ण बड़े ज़ोरसे ठट्ठा मारकर हँसा और इस प्रकार कहने लगा—॥५६॥ "राजन् ! आपने जब पहले सम्मतिकी थी उस समय मैंने जो कुछ कहा था आपके पापका वह फल आज उपस्थित हो ही गया ॥ ५७ ॥

पुरा मन्त्रविचारे ते गदितं यन्मया नृप ।
तदद्य त्वामुपगतं फलं पापस्य कर्मणः ॥५७॥

पूर्वमेव मया प्रोक्तो रामो नारायणः परः ।
सीता च योगमायेति बोधितोऽपि न बुध्यसे ॥५८॥

मैंने तो आपसे पहले ही कहा था कि राम साक्षात् परब्रह्म नारायण हैं और सीताजी योगमाया हैं, किन्तु आप तो समझानेपर भी नहीं समझते ॥ ५८ ॥

एकदाऽहं वने सानौ विशालायां स्थितो निशि ।
दृष्टो मया मुनिः साक्षान्नारदो दिव्यदर्शनः ॥५९॥

एक दिन मैं रात्रिके समय वनमें एक विशाल शिलापर बैठा था । इसी समय मैंने दिव्यमूर्ति साक्षात् नारद मुनिको देखा ॥ ५९ ॥

तमब्रवं महाभाग कुतो गन्तासि मे वद ।
इत्युक्तो नारदः प्राह देवानां मन्त्रणे स्थितः ॥६०॥

उन्हें देखकर मैंने कहा—"हे महाभाग ! कहिये, इस समय आप कहाँ जा रहे हैं ।" मेरे इस प्रकार पूछनेपर नारदजीने कहा—"मैं अभीतक देवताओंकी एक गुप्त गोष्ठीमें था ॥ ६० ॥

तत्रोत्पन्नमुदन्तं ते वक्ष्यामि शृणु तत्त्वतः ।
युवाभ्यां पीडिता देवाः सर्वे विष्णुमुपागताः ॥६१॥

वहाँ जो कुछ हुआ वह मैं तुम्हें ज्यों-का-त्यों सुनाता हूँ । तुम दोनों भाइयोंसे अत्यन्त पीडित होकर समस्त देवगण विष्णु-भगवान्‌के पास गये ॥ ६१ ॥

ऊचुस्ते देवदेवेशं स्तुत्वा भक्त्या समाहिताः ।
जहि रावणमक्षोभ्यं देव त्रैलोक्यकण्टकम् ॥ ६२ ॥

और उन देवदेवेश्वरकी अत्यन्त भक्ति और एकाग्रतासे स्तुति कर कहने लगे—

मानुषेण मृतिस्तस्य कल्पिता ब्रह्मणा पुरा ।
अतस्त्वं मानुषो भूत्वा जहि रावणकण्टकम् ॥६३॥
तथेत्याह महाविष्णुः सत्यसङ्कल्प ईश्वरः ।
जातो रघुकुले देवो राम इत्यभिविश्रुतः ॥६४॥
स हनिष्यति वः सर्वानित्युक्त्वा प्रययौ मुनिः ।
अतो जानीहि रामं त्वं परं ब्रह्म सनातनम् ॥६५॥
त्यज वैरं भजस्वाद्य मायामानुषविग्रहम् ।
भजतो भक्तिभावेन प्रसीदति रघूत्तमः ॥६६॥
भक्तिर्जनित्री ज्ञानस्य भक्तिर्मोक्षप्रदायिनी ।
भक्तिहीनेन यत्किञ्चित्कृतं सर्वमसत्समम् ॥६७॥
अवतारः सुबहवो विष्णोर्लीलानुकारिणः ।
तेषां सहस्रसदृशो रामो ज्ञानमयः शिवः ॥६८॥
रामं भजन्ति निपुणा मनसा वचसाऽनिशम् ।
अनायासेन संसारं तीर्त्वा यान्ति हरेः पदम् ॥६९॥
ये राममेव सततं भुवि शुद्धसत्त्वा
ध्यायन्ति तस्य चरितानि पठन्ति सन्तः ।
मुक्तास्त एव भवभोगमहाहिपाशैः
सीतापतेः पदमनन्तसुखं प्रयान्ति ॥७०॥

'हे देव ! इस रावणके आगे हमारी कुछ नहीं चलती आप इस त्रिलोकीके काँटेका शीघ्र ही संहार कीजिये ॥ ६२॥ पूर्वकालमें ब्रह्माजीने उसकी मृत्यु मनुष्यके हाथसे निश्चित की है, अतः आप मनुष्य होकर इस रावणरूप कण्टकको नष्ट कीजिये' ॥ ६३ ॥ तब सत्यसंकल्प भगवान् विष्णुने 'बहुत अच्छा' कहा । अब वे रघुकुलमें अवतीर्ण होकर राम-नामसे विख्यात हुए हैं ॥ ६४ ॥ वे तुम सबको मारेंगे ।" ऐसा कहकर नारद मुनि चले गये ।

"अतः आप रामको सनातन परब्रह्म ही जानिये ॥ ६५ ॥ और वैर छोड़कर उन मायामानवरूप भगवान्‌का भजन कीजिये । श्रीरघुनाथजी भक्तिभावसे भजन करनेवालेसे प्रसन्न हो जाते हैं ॥ ६६ ॥ भक्ति ही ज्ञानकी जननी और मोक्षको देनेवाली है । भक्तिहीन पुरुष जो कुछ करता है वह सब न कियेके समान ही है ॥ ६७ ॥ भगवान् विष्णुके अनेकों अवतार हुए हैं और वे सभी अपने स्वरूपके अनुसार लीला करनेवाले थे । किन्तु यह शिवस्वरूप ज्ञानमय रामावतार वैसे एक सहस्र अवतारोंके समान है ॥ ६८ ॥ जो लोग रात-दिन मन और वचनसे भगवान् रामका भली प्रकार भजन करते हैं वे बिना प्रयास ही संसारको पारकर श्रीहरिके परम धामको जाते हैं ॥ ६९ ॥ जो शुद्धचित्त महानुभाव इस भूमण्डलमें निरन्तर रामका ही ध्यान करते और उन्हींके चरित्र पढ़ते हैं वे ही सांसारिक विषयरूप महान् नागपाशसे छूटकर श्रीसीतापतिके अनन्त सुखमय चरणकमलोंको प्राप्त होते हैं" ॥ ७० ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे
युद्धकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टम सर्ग

कुम्भकर्ण-वध ।

श्रीमहादेव उवाच

कुम्भकर्णवचः श्रुत्वा भ्रुकुटीविकटाननः ।
दशग्रीवो जगादेदमासनादुत्पतन्निव ॥ १ ॥

श्रीमहादेवजी बोले–हे पार्वति ! कुम्भकर्णके ये वचन सुनकर रावणका मुख और भृकुटि (क्रोधसे) विकराल हो गये । और उसने मानो आसनसे उछलते हुए इस प्रकार कहा–॥ १ ॥ "मैं जानता हूँ तुम बड़े

त्वमानीतो न मे ज्ञानबोधनाय सुबुद्धिमान्।
मया कृतं समीकृत्य युध्यस्व यदि रोचते ॥ २ ॥
नोचेद्गच्छ सुषुप्त्यर्थं निद्रा त्वां बाधतेऽधुना।

रावणस्य वचः श्रुत्वा कुम्भकर्णो महाबलः ॥ ३ ॥
ज्ञातोऽयमिति विज्ञाय तूर्णं युद्धाय निर्ययौ।

स लङ्घयित्वा प्राकारं महापर्वतसन्निभः ॥ ४ ॥
निर्ययौ नगराच्चूर्णं भीषयन्हरिसैनिकान्।
स ननाद महानादं समुद्रमभिनादयन् ॥ ५ ॥
वानरान्कालयामास बाहुभ्यां भक्षयन् रुषा।

कुम्भकर्णं तदा दृष्ट्वा सपक्षमिव पर्वतम् ॥ ६ ॥
द्रुद्रुवुर्वानराः सर्वे कालान्तकमिवाखिलाः।

भ्रमन्तं हरिवाहिन्यां मुद्गरेण महाबलम् ॥ ७ ॥
गालयन्तं हरीन्वेगाद्भक्षयन्तं समन्ततः।
चूर्णयन्तं मुद्गरेण पाणिपादैरनेकधा ॥ ८ ॥
कुम्भकर्णं तदा दृष्ट्वा गदापाणिर्विभीषणः।
ननाम चरणं तस्य भ्रातुर्ज्येष्ठस्य बुद्धिमान् ॥ ९ ॥

विभीषणोऽहं भ्रातुर्मे दयां कुरु महामते।
रावणस्तु मया भ्रातर्बहुधा परिबोधितः ॥१०॥
सीतां देहीति रामाय रामः साक्षाज्जनार्दनः।
न शृणोति च मां हन्तुं खड्गमुद्यम्य चोक्तवान्।११।
धिक् त्वां गच्छेति मां हत्वा पदा पापिभिरावृतः।
चतुर्भिर्मन्त्रिभिः सार्धं रामं शरणमागतः ॥१२॥
तच्छ्रुत्वा कुम्भकर्णोऽपि ज्ञात्वा भ्रातरमागतम्।
समालिङ्ग्य च वत्स त्वं जीव रामपदाश्रयात्॥१३॥
कुलसंरक्षणार्थाय राक्षसानां हिताय च।

बुद्धिमान् हो, किन्तु इस समय मैंने तुम्हें ज्ञानोपदेश करनेके लिये नहीं बुलाया है। यदि तुम्हें अच्छा लगे तो मेरे कृत्यको ठीक मानकर युद्ध करो ॥२॥ नहीं तो जाओ शयन करो; तुम्हें इस समय नींद सता रही होगी।"

रावणके ये वचन सुनकर महाबली कुम्भकर्ण, यह जानकर कि रावण रुष्ट हो गया है, तुरन्त युद्धके लिये चल पड़ा। वह महापर्वतके समान विशालकाय राक्षस नगरके परकोटेको लाँघकर बाहर आया (क्योंकि अत्यन्त दीर्घकाय होनेके कारण वह नगरके संकुचित द्वारोंमें होकर नहीं निकल सकता था।) और सम्पूर्ण वानर सैनिकोंको भयभीत करते हुए उसने बड़ा घोर शब्द किया, जिससे समुद्र भी गूँज उठा ॥ ३–५ ॥ फिर वह अत्यन्त क्रुद्ध हो अपनी भुजाओंसे वानरोंको निगल-निगलकर नष्ट करने लगा। तब तो जिस प्रकार समस्त प्राणी यमराजको देखकर भागते हैं उसी प्रकार सपक्ष पर्वतके समान विशालकाय कुम्भकर्णको देखकर समस्त वानरगण भागने लगे।

इसी समय, महाबली कुम्भकर्णको मुद्गर धारण कर वानर-सेनामें घूमते, ठौर-ठौर वानरोंको मारते, उन्हें अत्यन्त वेगसे भक्षण करते और अपने मुद्गर तथा लात और घूसोंसे नाना प्रकार कुचलते देख परम बुद्धिमान् गदापाणि विभीषणने उस अपने ज्येष्ठ भ्राताके चरणोंमें प्रणाम किया ॥६–९॥ और कहा—"हे महामते! मैं आपका भाई विभीषण हूँ, आप मुझपर दया करें। भाई, मैंने रावणको बारम्बार समझाया कि राम साक्षात् विष्णुभगवान् हैं, तुम उन्हें सीताजीको सौंप दो, किन्तु उन्होंने मेरी बात नहीं सुनी और मुझे मारनेके लिये तलवार खींचकर कहा कि 'तुझे धिक्कार है, तू यहाँसे टल जा'। पापी मन्त्रियोंसे घिरे हुए भाई रावणने ऐसा कहकर मेरे लात मारी। तब मैं अपने चार मन्त्रियोंके सहित भगवान् रामकी शरणमें चला आया" ॥ १०–१२ ॥

ऐसा सुन कुम्भकर्णने भी अपने भाईको आया जान उन्हें हृदयसे लगाया और कहा—"वत्स! भगवान् रामके चरणका आश्रय पाकर अपने कुलकी रक्षा और राक्षसोंके कल्याणके लिये तुम चिरकालतक

महाभागवतोऽसि त्वं पुरा मे नारदाच्छ्रुतम् ॥१४॥
गच्छ तात यमेदानीं दृश्यते न च किञ्चन ।
मदीयो वा परो वापि मदमत्तविलोचनः ॥१५॥
इत्युक्तोऽश्रुमुखो भ्रातुश्चरणावभिवन्द्य सः ।
रामपार्श्वमुपागत्य चिन्तापर उपस्थितः ॥१६॥
कुम्भकर्णोऽपि हस्ताभ्यां पदाभ्यां पेषयन्हरीन् ।
चचार वानरीं सेनां कालयन् गन्धहस्तिवत् ॥१७॥
दृष्ट्वा तं राघवः क्रुद्धो वायव्यं शस्त्रमादरात् ।
चिक्षेप कुम्भकर्णाय तेन चिच्छेद राक्षसः ॥१८॥
समुद्गरं दक्षहस्तं तेन घोरं ननाद सः ।
स हस्तः पतितो भूमावनेकानर्दयन्कपीन् ॥१९॥
पर्यन्तमाश्रिताः सर्वे वानरा भयवेपिताः ।
रामराक्षसयोर्युद्धं पश्यन्तः पर्यवस्थिताः ॥२०॥
कुम्भकर्णश्छिन्नहस्तः शालमुद्यम्य वेगतः ।
समरे राघवं हन्तुं दुद्राव तमथोऽच्छिनत् ॥२१॥
शालेन सहितं वामहस्तमैन्द्रेण राघवः ।
छिन्नबाहुमथायान्तं नर्दन्तं वीक्ष्य राघवः ॥२२॥
द्वावर्धचन्द्रौ निशितावादायास्य पदद्वयम् ।
चिच्छेद पतितौ पादौ लङ्काद्वारि महास्वनौ ॥२३॥
निकृत्तपाणिपादोऽपि कुम्भकर्णोऽतिभीषणः ।
बडवामुखवद्वक्त्रं व्यादाय रघुनन्दनम् ॥२४॥
अभिदुद्राव निनदन्राहुश्चन्द्रमसं यथा ।
अपूरयच्छितैस्तीक्ष्णैश्च सायकैस्तद्रघूत्तमः ॥२५॥
शरपूरितवक्त्रोऽसौ चुक्रोशातिभयङ्करः ।
अथ सूर्यप्रतीकाशमैन्द्रं शरमनुत्तमम् ॥२६॥
वज्राशनिसमं रामश्चिक्षेपासुरमृत्यवे ।

जीवित रहो । पूर्वकालमें मैंने नारदजीसे सुना था कि तुम बड़े ही भगवद्भक्त हो ॥ १३-१४ ॥ भैया ! अब तुम जाओ, मेरे नेत्र मदसे मतवाले हो रहे हैं, अतः इस समय मुझे अपना-पराया कुछ नहीं सूझता" ॥ १५ ॥ भाई कुम्भकर्णके इस प्रकार कहनेपर विभीषणके नेत्रोंमें जल भर आया और वे उसके चरणोंमें प्रणाम कर चिन्ताग्रस्त हो भगवान् रामके पास आकर खड़े हो गये ॥ १६ ॥ इधर कुम्भकर्ण भी मदमत्त गजराजके समान अपने हाथ और पैरोंसे वानरोंको रौंदता हुआ समस्त वानर-सेनामें घूमने लगा ॥ १७ ॥

कुम्भकर्णको देखकर श्रीरघुनाथजीने क्रुद्ध हो वायव्यास्त्र चढ़ाया और उसे सावधानीसे उसकी ओर छोड़ दिया । उस अस्त्रसे उन्होंने उस राक्षसका मुद्गरसहित दाहिना हाथ काट डाला । इससे वह महाभयंकर गर्जना करने लगा । उसका वह (कटा हुआ) हाथ अनेकों वानरोंको कुचलता हुआ पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ १८-१९ ॥ तब इधर-उधर खड़े हुए समस्त वानरगण भयसे काँपते हुए भगवान् राम और राक्षस कुम्भकर्णका युद्ध देखने लगे ॥ २० ॥ अपने दाँये हाथके कट जानेपर कुम्भकर्ण युद्धमें रघुनाथजीको मारनेके लिये एक शाल-वृक्ष उठाकर बड़े वेगसे दौड़ा । किन्तु रघुनाथजीने ऐन्द्र शस्त्रसे शालसहित उसका बायाँ हाथ भी काट डाला । दोनों भुजाओंके कट जानेपर भी जब श्रीरामचन्द्रजीने उसे गर्ज-गर्जकर अपनी ओर आते देखा तो दो अत्यन्त तीक्ष्ण अर्द्धचन्द्राकार बाण चढ़ाकर उसके दोनों चरण भी काट डाले । वे दोनों चरण बड़ा शब्द करते हुए लंकाके द्वारपर गिरे ॥ २१-२३ ॥ हाथ-पाँवोंके कट जानेपर भी महाभयानक कुम्भकर्ण राहु जैसे चन्द्रमाकी ओर दौड़ता है वैसे ही घोड़ीके समान मुख फाड़कर चिंघाड़ता हुआ भगवान् रामकी ओर दौड़ा । किन्तु रघुनाथजीने उसे अत्यन्त तीक्ष्ण बाणोंसे भर दिया ॥ २४-२५ ॥ बाणोंसे मुख भर जानेपर वह अति भयंकर राक्षस चिल्लाने लगा । तब रघुनाथजीने सूर्यके समान देदीप्यमान अति उत्तम ऐन्द्र बाण चढ़ाया और वह वज्रके समान कठोर बाण उस राक्षसका वध करनेके लिये छोड़ा । इन्द्रके वज्रने जिस प्रकार वृत्रासुरका

स तत्पर्वतसङ्काशं स्फुरत्कुण्डलदंष्ट्रकम् ॥२७॥
चकर्त रक्षोधिपतेः शिरो वृत्रमिवाशनिः ।
तच्छिरः पतितं लङ्काद्वारि कायो महोदधौ ॥२८॥
शिरोऽस्य रोधयद्द्वारं कायो नक्राद्यचूर्णयत् ।
ततो देवाः सऋषयो गन्धर्वाः पन्नगाः खगाः॥२९॥
सिद्धा यक्षा गुह्यकाश्च अप्सरोभिश्च राघवम् ।
ईडिरे कुसुमासारैर्वर्षन्तश्चाभिनन्दिताः ॥३०॥
आजगाम तदा रामं द्रष्टुं देवमुनीश्वरः ।
नारदो गगनात्तूर्णं स्वभासा भासयन्दिशः ॥३१॥
राममिन्दीवरश्याममुदाराङ्गं धनुर्धरम् ।
ईषत्ताम्रविशालाक्षमैन्द्रास्त्राञ्चितबाहुकम् ॥३२॥
दयार्द्रदृष्ट्या पश्यन्तं वानरान् शरपीडितान् ।
दृष्ट्वा गद्गदया वाचा भक्त्या स्तोतुं प्रचक्रमे ॥३३॥

नारद उवाच

देवदेव जगन्नाथ परमात्मन्सनातन ।
नारायणाखिलाधार विश्वसाक्षिन्नमोऽस्तु ते ॥३४॥
विशुद्धज्ञानरूपोऽपि त्वं लोकानतिवञ्चयन् ।
मायया मनुजाकारः सुखदुःखादिमानिव ॥३५॥
त्वं मायया गुह्यमानः सर्वेषां हृदि संस्थितः ।
स्वयंज्योतिःस्वभावस्त्वं व्यक्त एवामलात्मनाम् ३६
उन्मीलयन् सृजस्येतन्नेत्रे राम जगत्त्रयम् ।
उपसंह्रियते सर्वं त्वया चक्षुर्निमीलनात् ॥३७॥
यस्मिन्सर्वमिदं भाति यतश्चैतच्चराचरम् ।
यस्मान्न किञ्चिल्लोकेऽस्मिंस्तस्मै ते ब्रह्मणे नमः ।३८।

शिर काटा था उसी प्रकार उस बाणने उसका पर्वत-सदृश शिर, जिसमें कुण्डल और दाढ़ें चमक रही थीं, काट डाला । कुम्भकर्णका शिर लंकाके द्वारपर और उसका धड़ समुद्रमें गिरा ॥ २६–२८ ॥ उस मस्तकने लंकाके द्वारको रोक लिया और धड़ने बहुत-से नाके आदि जलजन्तुओंको कुचल डाला । इस प्रकार कुम्भकर्णके मारे जानेपर ऋषियोंके सहित देवगण तथा अप्सराओंके सहित गन्धर्व, नाग, पक्षी, सिद्ध, यक्ष और गुह्यक आदि अति प्रसन्न होकर श्रीरघुनाथजीपर पुष्पावली बरसाते हुए उनकी स्तुति करने लगे ॥२९-३०॥

इसी समय अपने प्रकाशसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करते हुए देवर्षि नारद भगवान् रामका दर्शन करनेके लिये तुरन्त ही आकाशसे आये ॥ ३१ ॥ जो नीलकमलके समान श्यामवर्ण, अति मनोहर-मूर्ति और धनुष धारण किये हुए हैं, जिनके नेत्र अति विशाल और कुछ अरुणवर्ण हैं तथा भुजाएँ ऐन्द्रास्त्रसे सुशोभित हैं, जो अपनी दयामयी दृष्टिसे बाणोंसे पीडित वानरोंकी ओर देख रहे हैं उन भगवान् रामका दर्शन कर श्रीनारदजी भक्तिसे गद्गदकण्ठ हो इस प्रकार स्तुति करने लगे ॥ ३२-३३ ॥

नारदजी बोले—हे देवाधिदेव ! हे जगत्पते ! हे परमात्मन् ! हे सनातन पुरुष ! हे नारायण ! हे सर्वाधार ! हे विश्वसाक्षिन् ! आपको नमस्कार है ॥ ३४ ॥ आप विशुद्ध विज्ञानस्वरूप हैं, तथापि लोकोंकी वञ्चना करनेके लिये आप अपनी मायासे मनुष्याकार धारण कर सुखी-दुःखी-से दिखायी देते हैं ॥ ३५ ॥ आप अपनी मायासे आच्छादित होकर (अन्तर्यामीरूपसे) सबके अन्तःकरणोंमें स्थित हैं । आप स्वभावसे ही स्वयंप्रकाश हैं और शुद्ध-चित्त व्यक्तियोंको ही आपका साक्षात्कार होता है ॥ ३६ ॥ हे राम ! आप नेत्र खोलकर ही इस सम्पूर्ण त्रिलोकीकी रचना कर देते हैं और आपके नेत्र मूँदते ही इस सबका लय हो जाता है ॥ ३७ ॥ जिसमें यह सम्पूर्ण चराचर जगत् भास रहा है जिससे इसकी उत्पत्ति हुई है तथा जिसके अतिरिक्त संसारमें और कुछ भी नहीं है वह ब्रह्म आप ही हैं आपको नमस्कार है ॥ ३८ ॥ जिन्हें मुनिश्रेष्ठगण

प्रकृतिं पुरुषं कालं व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणम् ।
यं जानन्ति मुनिश्रेष्ठास्तस्मै रामाय ते नमः ॥३९॥
विकाररहितं शुद्धं ज्ञानरूपं श्रुतिर्जगौ ।
त्वां सर्वजगदाकारमूर्तिं चाप्याह सा श्रुतिः॥४०॥
विरोधो दृश्यते देव वैदिको वेदवादिनाम् ।
निश्चयं नाधिगच्छन्ति त्वत्प्रसादं विना बुधाः॥४१॥
मायया क्रीडतो देव न विरोधो मनागपि ।
रश्मिजालं रवेर्यद्वद्दृश्यते जलवद् भ्रमात् ॥४२॥
भ्रान्तिज्ञानात्तथा राम त्वयि सर्वं प्रकल्प्यते ।
मनसोऽविषयो देव रूपं ते निर्गुणं परम् ॥४३॥
कथं दृश्यं भवेद्देव दृश्याभावे भजेत्कथम् ।
अतस्त्वावतारेषु रूपाणि निपुणा भुवि ॥४४॥
भजन्ति बुद्धिसम्पन्नास्तरन्त्येव भवार्णवम् ।
कामक्रोधादयस्तत्र बहवः परिपन्थिनः ॥४५॥
भीषयन्ति सदा चेतो मार्जारा मूषकं यथा ।
त्वन्नाम स्मरतां नित्यं त्वद्रूपमपि मानसे ॥४६॥
त्वत्पूजानिरतानां ते कथामृतपरात्मनाम् ।
त्वद्भक्तसङ्गिनां राम संसारो गोष्पदायते ॥४७॥
अतस्ते सगुणं रूपं ध्यात्वाऽहं सर्वदा हृदि ।
मुक्तश्चरामि लोकेषु पूज्योऽहं सर्वदैवतैः ॥४८॥
राम त्वया महत्कार्यं कृतं देवहितेच्छया ।
कुम्भकर्णवधेनाद्य भूभारोऽयं गतः प्रभो ॥४९॥
श्वो हनिष्यति सौमित्रिरिन्द्रजेतारमाहवे ।
ह्यनिष्यसेऽथ राम त्वं परश्वो दशकन्धरम् ॥५०॥

प्रकृति, पुरुष, काल और व्यक्ताव्यक्तस्वरूप जानते हैं उन्हीं श्रीरामरूप आपको नमस्कार है ॥३९॥ श्रुतिने विकाररहित, शुद्ध और ज्ञानस्वरूप कहकर आपका वर्णन किया है और वही आपको सम्पूर्ण जगद्रूप भी बतलाती है ॥ ४० ॥ हे देव ! इस प्रकार वेदवादियों-को यह वैदिक (वेद-वचनोंमें) विरोध दिखायी देता है; किन्तु आपकी कृपाके बिना तो विज्ञजन भी किसी निश्चयपर नहीं पहुँचते ॥ ४१ ॥ हे देव ! आप माया-से ही लीला कर रहे हैं, अतः इन वेदवाक्योंमें कुछ भी विरोध नहीं है । जिस प्रकार सूर्यका किरणसमूह भ्रमसे जलके समान प्रतीत होता है, हे राम ! उसी प्रकार यह सम्पूर्ण जगत् अज्ञानसे ही आपमें कल्पित हुआ है; आपका वास्तविक निर्गुणरूप तो मन-का अविषय है ॥ ४२-४३ ॥ हे देव ! वह किस प्रकार किसीको दिखायी दे सकता है ? और दिखायी न देनेसे कोई उसका भजन भी कैसे कर सकता है ? अतः संसारमें बुद्धिमान् और निपुणलोग आपके अवतारस्वरूपोंका ही चिन्तन करते हैं और वे ज्ञानसम्पन्न होकर संसार-सागरको पार कर ही लेते हैं। इस भक्तिमार्गमें काम, क्रोध आदि बहुत-से विघ्न भी होते हैं ॥ ४४-४५ ॥ वे, बिल्ली जिस प्रकार चूहेको डराती है उसी प्रकार चित्तको सर्वदा भयभीत करते रहते हैं, हे राम ! जो लोग निरन्तर आपका नामस्मरण करते हैं, आपके रूपका हृदयमें ध्यान करते हैं, आपकी पूजामें तत्पर रहते हैं, आपके कथामृतका पान करते रहते हैं तथा आपके भक्तोंका संग करते हैं उनके लिये यह संसार (जो कि समुद्रके समान दुस्तर है) गोखुर-के समान तुच्छ हो जाता है ॥ ४६-४७ ॥ अतः मैं हृदयमें सर्वदा आपके सगुणरूपका ध्यान करता हुआ जीवन्मुक्त होकर लोकान्तरोंमें विचरता हूँ और समस्त देवताओंसे पूजित होता हूँ ॥ ४८ ॥ हे राम ! आपने देवहितकी कामनासे यह बहुत बड़ा काम किया है; हे प्रभो ! इस कुम्भकर्णके वधसे आज पृथिवीका (बहुत कुछ) भार उतर गया ॥ ४९ ॥ कल लक्ष्मण-जी युद्धमें इन्द्रजित्को मारेंगे और परसों आप रावण-का वध करेंगे ॥ ५० ॥ हे देवेश्वर ! मैं सिद्धोंके साथ

पश्यामि सर्वं देवेश सिद्धैः सह नभोगतः ।
अनुगृह्णीष्व मां देव गमिष्यामि सुरालयम् ॥५१॥
इत्युक्त्वा राममामन्त्र्य नारदो भगवानृषिः ।
ययौ देवैः पूज्यमानो ब्रह्मलोकमकल्मषम् ॥५२॥
भ्रातरं निहतं श्रुत्वा कुम्भकर्णं महाबलम् ।
रावणः शोकसन्तप्तो रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥५३॥
मूर्च्छितः पतितो भूमावुत्थाय विललाप ह ।
पितृव्यं निहतं श्रुत्वा पितरं चातिविह्वलम् ॥५४॥
इन्द्रजित्प्राह शोकार्तं त्यज शोकं महामते ।
मयि जीवति राजेन्द्र मेघनादे महाबले ॥५५॥
दुःखस्यावसरः कुत्र देवान्तक महामते ।
व्येतु ते दुःखमखिलं स्वस्थो भव महीपते ॥५६॥
सर्वं समीकरिष्यामि हनिष्यामि च वै रिपून् ।
गत्वा निकुम्भिलां सद्यस्तर्पयित्वा हुताशनम् ॥५७॥
लब्ध्वा रथादिकं तस्मादजेयोऽहं भवाम्यरेः ।
इत्युक्त्वा त्वरितं गत्वा निर्दिष्टं हवनस्थलम् ॥५८॥
रक्तमाल्याम्बरधरो रक्तगन्धानुलेपनः ।
निकुम्भिलास्थले मौनी हवनायोपचक्रमे ॥५९॥
विभीषणोऽथ तच्छ्रुत्वा मेघनादस्य चेष्टितम् ।
प्राह रामाय सकलं होमारम्भं दुरात्मनः ॥६०॥
समाप्यते चेद्धोमोऽयं मेघनादस्य दुर्मतेः ।
तदाऽजेयो भवेद्राम मेघनादः सुरासुरैः ॥६१॥
अतः शीघ्रं लक्ष्मणेन घातयिष्यामि रावणिम् ।
आज्ञापय मया सार्धं लक्ष्मणं बलिनां वरम् ।
हनिष्यति न सन्देहो मेघनादं तवानुजः ॥६२॥

श्रीरामचन्द्र उवाच

अहमेवागमिष्यामि हन्तुमिन्द्रजितं रिपुम् ।
आग्नेयेन महास्त्रेण सर्वराक्षसघातिना ॥६३॥

आकाशमें स्थित होकर यह सब चरित्र देखूँगा । हे देव ! आप मुझपर दयादृष्टि रखें, अब मैं स्वर्गलोक को जाता हूँ ॥ ५१ ॥ ऐसा कह मुनिवर भगवान नारदजी श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा पा देवताओंसे पूजित हो पापहीन ब्रह्मलोकको चले गये ॥ ५२ ॥

बिना प्रयास ही अद्भुत कर्म करनेवाले भगवान रामद्वारा महाबली भाई कुम्भकर्णको मारा गया सुन रावण अत्यन्त शोकाकुल हुआ और मूर्च्छित होकर पृथिवीपर गिर पड़ा तथा (मूर्च्छा निवृत्त होनेपर) उठकर विलाप करने लगा । तब इन्द्रजित्ने अपने चचाको मारा गया और पिताको अति विह्वल सुन अपने शोकाकुल पितासे कहा— "हे महामते ! शोक दूर कीजिये । हे राजेन्द्र ! मुझ महाबली मेघनादके जीते हुए आपके दुःखका कारण हैं कहाँ है ? हे देवताओंके कालस्वरूप महाबुद्धिमान् पृथिवीपते ! अपना समस्त दुःख छोड़कर आप शान्त होइये ॥५३–५६॥ मैं अभी सब कुछ ठीक किये देता हूँ, इन शत्रुओंको मैं अवश्य मार डालूँगा । इस समय मैं निकुम्भिला गुफामें जाता हूँ, वहाँ अग्निको तृप्तकर रथ आदि प्राप्त करूँगा; इससे मैं शत्रुओंके लिये अजेय हो जाऊँगा ।" ऐसा कह वह निर्दिष्ट यज्ञशालामें गया ॥ ५७-५८ ॥ उस निकुम्भिला (नामक देवी) के स्थानमें उसने रक्तवर्ण वस्त्र, रक्त पुष्पोंकी माला और रक्तचन्दनका लेप धारण कर हवन करना आरम्भ किया ॥ ५९ ॥

जब विभीषणको मेघनादके इस कार्यका पता लगा तो उन्होंने उस दुरात्माके होमारम्भका सारा समाचार श्रीरामचन्द्रजीको सुनाया ॥ ६० ॥ (और कहा— "हे राम ! यदि दुरात्मा मेघनादका यह होम निर्विघ्न समाप्त हो गया तो वह देवता या असुर किसीसे भी नहीं जीता जा सकेगा ॥६१॥ अतः मैं शीघ्र ही लक्ष्मणजीके द्वारा उस रावण-कुमारका वध कराये देता हूँ आप बलवानोंमें श्रेष्ठ श्रीलक्ष्मणजीको मेरे साथ जानेकी आज्ञा दीजिये । इसमें सन्देह नहीं, आपके छोटे भाई लक्ष्मणजी मेघनादको अवश्य मार डालेंगे" ॥ ६२ ॥

श्रीरामचन्द्रजी बोले—समस्त राक्षसोंको मारने वाले महान् आग्नेय अस्त्रसे अपने शत्रु इन्द्रजित्को मारनेके लिये मैं स्वयं ही आऊँगा ॥ ६३ ॥

विभीषणोऽपि तं प्राह नासावन्यैर्निहन्यते ।
यस्तु द्वादश वर्षाणि निद्राहारविवर्जितः ॥६४॥
तेनैव मृत्युर्निर्दिष्टो ब्रह्मणाऽस्य दुरात्मनः ।
लक्ष्मणस्तु अयोध्याया निर्गम्यायात्त्वया सह॥६५॥
तदादि निद्राहारादीन्न जानाति रघूत्तम ।
सेवार्थं तव राजेन्द्र ज्ञातं सर्वमिदं मया ॥६६॥
तदाज्ञापय देवेश लक्ष्मणं त्वरया मया ।
हनिष्यति न सन्देहः शेषः साक्षाद्धराधरः ॥६७॥
त्वमेव साक्षाज्जगतामधीशो
नारायणो लक्ष्मण एव शेषः ।
युवां धराभारनिवारणार्थं
जातौ जगन्नाटकसूत्रधारौ ॥६८॥

तब विभीषणने कहा—"यह राक्षस किसी औरसे नहीं मारा जा सकता । जिसने बारह वर्षतक निद्रा और आहारको छोड़ दिया हो, ब्रह्माजीने इस दुरात्माकी मृत्यु उसीके हाथ निश्चित की है । हे रघुनायजी ! ये लक्ष्मणजी जबसे अयोध्यासे निकलकर आपके साथ आये हैं तभीसे, आपकी सेवामें लगे रहनेके कारण, ये निद्रा और आहारादि तो जानते ही नहीं । हे राजेन्द्र ! मैं ये सब बातें जानता हूँ ॥६४–६६॥ अतः हे देवेश्वर ! आप शीघ्र ही लक्ष्मणजीको मेरे साथ जानेकी आज्ञा दीजिये । ये साक्षात् धराधारी शेषनाग हैं, इसमें सन्देह नहीं उस राक्षसको ये अवश्य मार डालेंगे ॥६७॥ आप ही साक्षात् जगत्पति नारायण हैं और लक्ष्मणजी ही शेषनाग हैं । आप दोनों इस संसाररूपी नाटकके सूत्रधार हैं और पृथिवीका भार उतारनेके लिये ही आपने जन्म लिया है" ॥६८॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे
युद्धकाण्डे अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवम सर्ग

मेघनाद-वध ।

श्रीमहादेव उवाच

विभीषणवचः श्रुत्वा रामो वाक्यमथाब्रवीत् ।
जानामि तस्य रौद्रस्य मायां कृत्स्नां विभीषण ॥१॥
स हि ब्रह्मास्त्रविच्छूरो मायावी च महाबलः ।
जानामि लक्ष्मणस्याऽपि स्वरूपं मम सेवनम् ॥ २ ॥
ज्ञात्वैवासमहं तूष्णीं भविष्यत्कार्यगौरवात् ।
इत्युक्त्वा लक्ष्मणं प्राह रामो ज्ञानवतां वरः ॥ ३ ॥
गच्छ लक्ष्मण सैन्येन महता जहि रावणिम् ।
हनूमत्प्रमुखैः सर्वैर्यूथपैः सह लक्ष्मण ॥ ४ ॥
जाम्बवानृक्षराजोऽयं सह सैन्येन संवृतः ।

श्रीमहादेवजी बोले–हे पार्वति ! विभीषणके ये वचन सुनकर श्रीरघुनाथजीने कहा—"विभीषण ! उस महाभयङ्कर दैत्यकी मैं सारी माया जानता हूँ ॥१॥ वह ब्रह्मास्त्र-विद्याका जाननेवाला, बड़ा शूरवीर, मायावी और महाबली है । तथा लक्ष्मण मेरी जैसी सेवा करते हैं मैं उसका स्वरूप भी जानता हूँ (अर्थात् मुझे यह पता है कि मेरी सेवाके कारण उन्होंने निद्रा और आहार आदिको छोड़ रखा है) ॥ २ ॥ किन्तु इस आगामी कार्यकी कठिनताका विचार करके ही मैंने यह सब जान-बूझकर भी अभीतक कुछ नहीं कहा ।"

विभीषणसे इस प्रकार कह ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ भगवान् रामचन्द्र लक्ष्मणजीसे बोले—॥३॥ "भैया लक्ष्मण ! तुम और हनुमान् आदि समस्त यूथपति, बहुत बड़ी सेनाके साथ जाओ और रावणके पुत्र मेघनादको मारो ॥४॥ अपनी सेनाके सहित ऋक्षराज जाम्बवान्

विभीषणश्च सचिवैः सह त्वामभियास्यति ॥ ५ ॥
अभिज्ञस्तस्य देहस्य जानाति विवराणि सः।
रामस्य वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणः सविभीषणः ॥ ६ ॥
जग्राह कार्मुकं श्रेष्ठमन्यद्भीमपराक्रमः।
रामपादाम्बुजं स्पृष्ट्वा हृष्टः सौमित्रिरब्रवीत् ॥ ७ ॥
अद्य मत्कार्मुकान्मुक्ताः शरा निर्भिद्य रावणिम्।
गमिष्यन्ति हि पातालं स्नातुं भोगवतीजले ॥ ८ ॥

और मन्त्रियोंके सहित विभीषण तुम्हारे साथ जायँगे ॥ ५ ॥ ये विभीषण उससे परिचित हैं और उसके छिपनेकी समस्त कन्दराओंको जानते हैं, (अतः इनसे तुम्हें उसका पता लगानेमें बहुत सहायता मिलेगी)।" रामचन्द्रजीके वचन सुनकर महापराक्रमी लक्ष्मणजीने विभीषणको साथ ले अपना एक दूसरा उत्तम धनुष उठाया और अति प्रसन्नतापूर्वक भगवान् रामके चरण-कमलका स्पर्श कर कहा ॥६-७॥ "प्रभो! आज मेरे धनुषसे छूटे हुए बाण रावण-पुत्र इन्द्रजित्के शरीरको भेदकर भोगवती (पाताल-गङ्गा) के जलमें स्नान करनेके लिये पाताललोकको चले जायँगे" ॥ ८ ॥

एवमुक्त्वा स सौमित्रिः परिक्रम्य प्रणम्य तम्।
इन्द्रजिन्निधनाकाङ्क्षी ययौ त्वरितविक्रमः ॥ ९ ॥
वानरैर्बहुसाहस्रैर्हनूमान्पृष्ठतोऽन्वगात्।
विभीषणश्च सहितो मन्त्रिभिस्त्वरितं ययौ ॥१०॥
जाम्बवत्प्रमुखा ऋक्षाः सौमित्रिं त्वरयान्वयुः।
गत्वा निकुम्भिलादेशं लक्ष्मणो वानरैः सह ॥११॥
अपश्यद्बलसङ्घातं दूराद्राक्षससङ्कुलम्।
धनुरायम्य सौमित्रिर्यत्तोऽभूद्भूरिविक्रमः ॥१२॥
अङ्गदेन च वीरेण जाम्बवान् राक्षसाधिपः।
तदा विभीषणः प्राह सौमित्रिं पश्य राक्षसान्।१३।
यदेतद्राक्षसानीकं मेघश्यामं विलोक्यते।
अस्यानीकस्य महतो भेदने यत्नवान् भव ॥१४॥
राक्षसेन्द्रसुतोऽप्यस्मिन् भिन्ने द्रष्टो भविष्यति।
अभिद्रवाशु यावद्वै नैतत्कर्म समाप्यते ॥१५॥
जहि वीर दुरात्मानं हिंसापरमधार्मिकम्।
विभीषणवचः श्रुत्वा लक्ष्मणः शुभलक्षणः ॥१६॥
ववर्ष शरवर्षाणि राक्षसेन्द्रसुतं प्रति।
पाषाणैः पर्वताग्रैश्च वृक्षैश्च हरियूथपाः ॥१७॥

रघुनाथजीसे इस प्रकार कह सुमित्रानन्दन लक्ष्मण-जीने उनकी परिक्रमा की और इन्द्रजित्को मारनेके लिये बड़ी तेजीसे चले ॥ ९ ॥ उनके पीछे हजारों वानरोंके साथ हनुमान्जी और मन्त्रियोंके सहित विभीषणने भी बड़ी शीघ्रतासे कूच किया ॥१०॥ तथा जाम्बवान् आदि रीछ भी तुरन्त ही श्रीलक्ष्मणजी-के साथ चले। जिस समय वानरोंके सहित लक्ष्मणजी निकुम्भिलाके स्थानपर पहुँचे, उन्होंने दूरसे ही वहाँ राक्षसोंकी बड़ी भारी सेना एकत्रित देखी। तब महापराक्रमी लक्ष्मणजी धनुष चढ़ाकर सावधान हो गये ॥११-१२॥ उनके साथ ही वीरवर अंगदके सहित जाम्बवान् भी सावधान हो गये। तब राक्षसराज विभीषणने लक्ष्मणजीसे कहा— "लक्ष्मण-जी! इन राक्षसोंको देखिये! सामने जो मेघके समान श्यामवर्ण राक्षस-सेना दिखायी दे रही है इस प्रबल अनीकको नष्ट करनेका यत्न कीजिये ॥१३-१४॥ इसके नष्ट हो जानेपर राक्षसराज रावणका पुत्र इन्द्रजित् भी दिखायी देने लगेगा। इस कर्मके समाप्त होनेसे पहले ही तुरन्त धावा कर दीजिये ॥१५॥ हे वीर! इस हिंसापरायण दुरात्मा पापीको आप शीघ्र ही मार डालिये।"

विभीषणके वचन सुनकर शुभलक्षण लक्ष्मणने राक्षस-राजकुमार मेघनादकी ओर बाण बरसाने आरम्भ किये तथा वानर-यूथपति भी सब ओरसे पत्थर, पर्वत-शिखर और वृक्षादिसे दैत्योंपर प्रहार करने लगे। इसी

निर्जघ्नुः सर्वतो दैत्यांस्तेऽपि वानरयूथपान् ।
परश्वधैः शितैर्बाणैरसिभिर्यष्टितोमरैः ॥१८॥
निर्जघ्नुर्वानरानीकं तदा शब्दो महानभूत् ।
स सम्प्रहारस्तुमुलः संजज्ञे हरिरक्षसाम् ॥१९॥
इन्द्रजित्खवलं सर्वमर्द्यमानं विलोक्य सः ।
निकुम्भिलां च होमं च त्यक्त्वा शीघ्रं विनिर्गतः२०
रथमारुह्य सधनुः क्रोधेन महताऽगमत् ।
समाह्वयन् स सौमित्रिं युद्धाय रणमूर्धनि ॥२१॥
सौमित्रे मेघनादोऽहं मया जीवन्न मोक्ष्यसे ।
तत्र दृष्ट्वा पितृव्यं स प्राह निष्ठुरभाषणम् ॥२२॥
इहैव जातः संवृद्धः साक्षाद् भ्राता पितुर्मम ।
यस्त्वं स्वजनमुत्सृज्य परभृत्यत्वमागतः ॥२३॥
कथं द्रुह्यसि पुत्राय पापीयानसि दुर्मतिः ।
इत्युक्त्वा लक्ष्मणं दृष्ट्वा हनूमत्पृष्ठतः स्थितम्॥२४॥
उद्यदाशुधनिस्त्रिंशे रथे महति संस्थितः ।
महाप्रमाणमुद्यम्य घोरं विस्फारयन्धनुः ॥२५॥
अद्य वो मामका बाणाः प्राणान्पास्यन्ति वानराः ।
ततः शरं दाशरथिः सन्धायामित्रकर्षणः ॥२६॥
ससर्ज राक्षसेन्द्राय क्रुद्धः सर्प इव श्वसन् ।
इन्द्रजिद्रक्तनयनो लक्ष्मणं समुदैक्षत ॥२७॥

शक्राशनिसमस्पर्शैर्लक्ष्मणेनाहतः शरैः ।
मुहूर्तमभवन्मूढः पुनः प्रत्याहृतेन्द्रियः ॥२८॥
ददर्शावस्थितं वीरं वीरो दशरथात्मजम् ।
सोऽभिचक्राम सौमित्रिं क्रोधसंरक्तलोचनः ॥२९॥
शरान्धनुषि सन्धाय लक्ष्मणं चेदमब्रवीत् ।
यदि ते प्रथमे युद्धे न दृष्टो मे पराक्रमः ॥३०॥

प्रकार राक्षसोंने भी वानरयूथपतियों और वानर-सेना-पर परशु, तीक्ष्ण बाण, खड्ग, यष्टि और तोमरादि शस्त्रोंसे आक्रमण किया । तब वहाँ बड़ा भारी कोलाहल हुआ और राक्षस तथा वानरोंमें बड़ा घमासान युद्ध छिड़ गया ॥१६–१९॥

अपनी सेनाको इस प्रकार दलित होते देख इन्द्रजित् निकुम्भिला और होमको छोड़कर बाहर आया ॥२०॥ और तुरन्त ही रथपर चढ़ अत्यन्त क्रोधसे हाथमें धनुष ले रणभूमिमें सामने आया तथा लक्ष्मणजीको युद्धके लिये ललकारते हुए बोला—॥२१॥ "लक्ष्मण ! मैं मेघनाद हूँ, अब तुम मुझसे जीवित नहीं बच सकते ।" फिर वहाँ अपने चचा विभीषणको देखकर वह कठोर शब्दोंमें कहने लगा ॥२२॥ "तुम इस लङ्का-पुरीमें ही उत्पन्न हुए हो और इसीमें रहकर इतने बड़े हुए हो तथा मेरे पिताके सगे भाई हो, किन्तु अब तुमने अपने स्वजनोंको छोड़कर शत्रुओंका दासत्व स्वीकार किया है ! ॥२३॥ मैं तुम्हारे पुत्रके समान हूँ, न जाने तुम कैसे मुझसे द्रोह कर रहे हो ? अवश्य ही तुम बड़े पापी और दुरात्मा हो ।" ऐसा कह उसने हनुमान्‌जीकी पीठपर बैठे हुए लक्ष्मणजीकी ओर देखा ॥२४॥ तथा जिसमें नाना प्रकारके तीक्ष्ण शस्त्र उपस्थित थे उस महान् रथमें बैठे हुए उस दैत्य-ने एक बड़ा लम्बा धनुष उठाकर उसकी भयङ्कर टंकार की ॥२५॥ और बोला "अरे वानरो ! आज मेरे बाण तुम्हारे प्राणोंको पियेंगे ।" तब क्रोधसे सर्पके समान फुफकारते हुए, शत्रुका दमन करनेवाले, दशरथकुमार लक्ष्मणजीने भी अपने धनुषपर एक बाण चढ़ाकर उसे मेघनादपर छोड़ा । इधर इन्द्रजित्‌ने भी क्रोधसे लाल-लाल नेत्र कर लक्ष्मणजीकी ओर देखा ॥२६-२७॥

श्रीलक्ष्मणजीके छोड़े हुए इन्द्रवज्रके समान महा-कठोर बाणोंके लगनेसे वह एक मुहूर्तके लिये अचेत हो गया । फिर चेत होनेपर उसने अपने सामने दशरथनन्दन वीरवर लक्ष्मणजीको खड़े देखा । उन्हें देखकर वह राक्षस क्रोधसे नेत्र लाल कर उनकी ओर दौड़ा ॥२८-२९॥ तथा अपने धनुषपर बाण चढ़ाकर उनसे यों कहने लगा, "यदि

अद्य त्वां दर्शयिष्यामि तिष्ठेदानीं व्यवस्थितः ।
इत्युक्त्वा सप्तभिर्बाणैरभिविव्याध लक्ष्मणम् ॥३१॥
दशभिश्च हनूमन्तं तीक्ष्णधारैः शरोत्तमैः ।
ततः शरशतेनैव सम्प्रयुक्तेन वीर्यवान् ॥३२॥
क्रोधद्विगुणसंरब्धो निर्विभेद विभीषणम् ।
लक्ष्मणोऽपि तथा शत्रुं शरवर्षैरवाकिरत् ॥३३॥
तस्य बाणैः सुसंविद्धं कवचं काञ्चनप्रभम् ।
व्यशीर्यत रथोपस्थे तिलशः पतितं भुवि ॥३४॥
ततः शरसहस्रेण सङ्क्रुद्धो रावणात्मजः ।
विभेद समरे वीरं लक्ष्मणं भीमविक्रमम् ॥३५॥
व्यशीर्यतापतद्दिव्यं कवचं लक्ष्मणस्य च ।
कृतप्रतिकृतान्योन्यं बभूवतुरभिद्रुतौ ॥३६॥
अभीक्ष्णं निःश्वसन्तौ तौ युध्येतां तुमुलं पुनः ।
शरसंवृतसर्वाङ्गौ सर्वतो रुधिरोक्षितौ ॥३७॥
सुदीर्घकालं तौ वीरावन्योन्यं निशितैः शरैः ।
अयुध्येतां महासत्त्वौ जयाजयविवर्जितौ ॥३८॥
एतस्मिन्नन्तरे वीरो लक्ष्मणः पञ्चभिः शरैः ।
रावणेः सारथिं साश्वं रथं च समचूर्णयत् ॥३९॥
चिच्छेद कार्मुकं तस्य दर्शयन्हस्तलाघवम् ।
सोऽन्यत्तु कार्मुकं भद्रं सज्यं चक्रे त्वरान्वितः ॥४०॥
तच्चापमपि चिच्छेद लक्ष्मणस्त्रिभिराशुगैः ।
तमेव छिन्नधन्वानं विव्याधानेकसायकैः ॥४१॥
पुनरन्यत्समादाय कार्मुकं भीमविक्रमः ।
इन्द्रजिल्लक्ष्मणं बाणः शितैरादित्यसन्निभैः ॥४२॥
विभेद वानरान्सर्वान्बाणैरापूरयन्दिशः ।
तत्त ऐन्द्रं समादाय लक्ष्मणो रावणिं प्रति ॥४३॥
सन्धायाकृष्य कर्णान्तं कार्मुकं दृढनिष्ठुरम् ।
उवाच लक्ष्मणो वीरः स्मरन् रामपदाम्बुजम् ॥४४॥

उने पहले युद्धमें मेरा पराक्रम न देखा हो तो मैं तुझे अभी दिखाये देता हूँ; तू जरा स्थिरतापूर्वक खड़ा रह।" ऐसा कह उस महावीर्यवान्ने सात बाणोंसे लक्ष्मणजीको, बड़ी पैनी धारवाले दश बाणोंसे हनुमान्‌जीको और क्रोधसे दूने उत्साहके साथ भली प्रकार छोड़े हुए सौ बाणोंसे विभीषणको बेध डाला। इधर लक्ष्मणजी भी शत्रुपर बाणोंकी वर्षा-सी करने लगे ॥३०–३३॥ उनके बाणोंसे छिन्न-भिन्न होकर मेघनादका सुवर्णकी-सी आभावाला कवच तिल-तिल होकर रथके पिछले भागमें गिर पड़ा और फिर वहाँसे पृथिवीपर जा गिरा ॥३४॥ तब रावणकुमार मेघनादने संग्राममें अत्यन्त क्रोधित हो महापराक्रमी लक्ष्मणजीको हजारों बाणोंसे बींध डाला ॥३५॥ इससे लक्ष्मणजीका दिव्य कवच भी छिन्न-भिन्न होकर गिर पड़ा। इस प्रकार वे दोनों ही एक दूसरेकी क्रियाका प्रतिकार करते हुए आपसमें लड़ने लगे ॥३६॥ वे दोनों ही बारम्बार दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए बड़ा घोर युद्ध करने लगे। उनके शरीरोंके अङ्ग-प्रत्यङ्ग सब ओरसे बाणोंसे छिन्न-भिन्न होकर लोहू-लुहान हो गये ॥३७॥ वे दोनों महापराक्रमी वीर बड़ी देरतक एक दूसरेपर तीखे-तीखे बाण छोड़कर लड़ते रहे। उनमेंसे किसीकी भी जय अथवा पराजय न हुई ॥ ३८ ॥

इतनेहीमें वीरवर लक्ष्मणने पाँच बाण छोड़कर मेघनादके सारथि और घोड़ोंके सहित रथको चूर्ण कर डाला ॥३९॥ और अपने हाथकी सफाई दिखलाते हुए उसका धनुष भी काट डाला। तब मेघनादने तुरन्त ही दूसरा उत्तम धनुष चढ़ाया ॥४०॥ लक्ष्मणजीने तीन बाणोंसे उसे भी काट डाला, और धनुष-हीन हुए उस राक्षसको भी अनेक बाणोंसे बींध दिया ॥४१॥ फिर भीमविक्रम इन्द्रजित्‌ने एक और धनुष लेकर सूर्यके समान चमकीले और पैने बाणोंसे सम्पूर्ण दिशाओंको व्याप्त करते हुए लक्ष्मणजी तथा समस्त वानरोंको बेध डाला। तब लक्ष्मणजीने ऐन्द्र बाण निकालकर उसे मेघनादकी ओर लक्ष्य बाँधकर धनुषपर चढ़ाया और उस कठोर धनुषको कर्णपर्यन्त खींचकर वीरवर लक्ष्मणजी हृदयमें भगवान् रामके चरणकमलोंका स्मरण करते हुए बोले—॥४२–

धर्मात्मा सत्यसन्धश्च रामो दाशरथिर्यदि ।
त्रिलोक्यामप्रतिद्वन्द्वस्तदेनं जहि रावणिम् ॥४५॥
इत्युक्त्वा बाणमाकर्णाद्विकृष्य तमजिह्मगम् ।
लक्ष्मणः समरे वीरः ससर्जेन्द्रजितं प्रति ॥४६॥
स शरः सशिरस्त्राणं श्रीमज्ज्वलितकुण्डलम् ।
प्रमथ्येन्द्रजितः कायात्पातयामास भूतले ॥४७॥

४४॥ "यदि दशरथनन्दन भगवान् राम परम धार्मिक, सत्यकी मर्यादा रखनेवाले और त्रिलोकीमें प्रतिद्वन्द्वी (मुकाबिला करनेवाले) से रहित हैं तो हे बाण ! तू इस मेघनादको मार डाल"॥४५॥ वीरवर लक्ष्मणजी-ने रणभूमिमें ऐसा कह उस सीधे जानेवाले बाणको कानतक खींचकर इन्द्रजित्की ओर छोड़ दिया ॥४६॥ उस बाणने शीर्षत्राणके सहित इन्द्रजित्के कान्तिमान् मस्तकको, जिसमें अति उज्ज्वल कुण्डल झिलमिला रहे थे, काटकर धड़से पृथ्वीपर गिरा दिया ॥४७॥

ततः प्रमुदिता देवाः कीर्तयन्तो रघूत्तमम् ।
ववर्षुः पुष्पवर्षाणि स्तुवन्तश्च मुहुर्मुहुः ॥४८॥
जहर्ष शक्रो भगवान्सह देवैर्महर्षिभिः ।
आकाशेऽपि च देवानां शुश्रुवे दुन्दुभिस्वनः ॥४९॥
विमलं गगनं चासीत्स्थिराभूद्विश्वधारिणी ।
निहतं रावणिं दृष्ट्वा जयजल्पसमन्वितः ॥५०॥

इस प्रकार मेघनादके मारे जानेपर देवगण प्रसन्न होकर रघुश्रेष्ठ लक्ष्मणजीका गुण गाने और उनकी वारम्बार प्रशंसा कर पुष्प बरसाने लगे ॥४८॥ देवता और महर्षियोंके सहित भगवान् इन्द्र अति हर्षित हुए। उस समय आकाशमण्डलमें भी देवताओंके नगाड़ोंका शब्द सुनायी देने लगा ॥४९॥ रावणके पुत्र मेघनाद-को मारा गया देख सर्वत्र जयजयकार शब्द भर गया। आकाश निर्मल हो गया और जगद्धात्री धरणी स्थिर हो गयी ॥५०॥

गतश्रमः स सौमित्रिः शङ्खमापूरयद्रणे ।
सिंहनादं ततः कृत्वा ज्याशब्दमकरोद्विभुः ॥५१॥
तेन नादेन संहृष्टा वानराश्च गतश्रमाः ।
वानरेन्द्रैश्च सहितः स्तुवद्भिर्हृष्टमानसैः ॥५२॥
लक्ष्मणः परितुष्टात्मा ददर्शाभ्येत्य राघवम् ।
हनूमद्राक्षसाभ्यां च सहितो विनयान्वितः ॥५३॥
ववन्दे भ्रातरं रामं ज्येष्ठं नारायणं विभुम् ।
त्वत्प्रसादाद्रघुश्रेष्ठ हतो रावणिराहवे ॥५४॥

जब लक्ष्मणजीकी थकान उतर गयी तो उन्होंने शङ्ख बजाकर रणभूमिको गुञ्जायमान कर दिया और फिर भयङ्कर सिंहनाद कर अपने धनुषकी टङ्कार की ॥ ५१ ॥ उस सिंहनादसे समस्त वानरगण अति आनन्दित और श्रमहीन हो गये। फिर प्रसन्नचित्त वानर वीरोंसे प्रशंसित होते हुए श्रीलक्ष्मणजीने उन सबके साथ प्रसन्न-मनसे श्रीरघुनाथजीके पास आ उनका दर्शन किया। श्रीलक्ष्मणजीने हनुमान् और विभीषणके सहित अति विनयपूर्वक अपने ज्येष्ठ भ्राता साक्षात् नारायण-स्वरूप भगवान् रामको प्रणाम कर कहा—"हे रघुश्रेष्ठ ! आपकी कृपासे इन्द्रजित् युद्धमें मारा गया" ॥५२–५४॥

श्रुत्वा तल्लक्ष्मणाद्भक्त्या तमालिङ्ग्य रघूत्तमः ।
मूर्ध्न्यवघ्राय मुदितः सस्नेहमिदमब्रवीत् ॥५५॥
साधु लक्ष्मण तुष्टोऽस्मि कर्म ते दुष्करं कृतम् ।
मेघनादस्य निधने जितं सर्वमरिन्दम ॥५६॥

लक्ष्मणजीके ये भक्तिमय वचन सुनकर श्रीरघुनाथ-जीने अति प्रसन्न होकर उनका आलिङ्गन किया और फिर प्रेमपूर्वक सिर सूँघकर कहा—॥५५॥ "लक्ष्मण ! तुम धन्य हो ! मैं तुम्हारे इस कार्यसे बहुत सन्तुष्ट हूँ, आज तुमने बड़ा ही कठिन कार्य किया है। हे शत्रुदमन ! इस मेघनादके मारे जानेसे

अहोरात्रैस्त्रिभिर्वीरः कथञ्चिद्विनिपातितः ।
निःसपत्नः कृतोऽस्म्यद्य निर्यास्यति हि रावणः ५७
पुत्रशोकान्मया योद्धुं तं हनिष्यामि रावणम् ।५८।

हमने मानो सभी कुछ जीत लिया. ॥५६॥ तुमने तीन दिन और तीन रात्रितक निरन्तर संग्राम कर किसी प्रकार उस महान् योद्धाको मार डाला । इससे आज तुमने मुझे शत्रुहीन कर दिया। अब पुत्र-शोकसे व्याकुल हुआ रावण मुझसे लड़ने आयेगा, सो उसे मैं मार डालूँगा" ॥५७-५८॥

मेघनादं हतं श्रुत्वा लक्ष्मणेन महाबलम् ।
रावणः पतितो भूमौ मूर्च्छितः पुनरुत्थितः ।
विललापातिदीनात्मा पुत्रशोकेन रावणः ॥५९॥
पुत्रस्य गुणकर्माणि संस्मरन्पर्यदेवयत् ।
अद्य देवगणाः सर्वे लोकपाला महर्षयः ॥६०॥
हतमिन्द्रजितं ज्ञात्वा सुखं स्वप्स्यन्ति निर्भयाः ।
इत्यादि बहुशः पुत्रलालसो विललाप ह ॥६१॥
ततः परमसङ्क्रुद्धो रावणो राक्षसाधिपः ।
उवाच राक्षसान्सर्वान्निनाशयिषुराहवे ॥६२॥

महाबली मेघनादको लक्ष्मणजीद्वारा मारा गया सुन रावण मूर्च्छित होकर पृथिवीपर गिर पड़ा और फिर मूर्च्छासे उठनेपर पुत्र-शोकसे अत्यन्त दीन होकर विलाप करने लगा ॥५९॥ पुत्रके गुण और कर्मोंका स्मरण कर वह अत्यन्त शोक करने लगा। 'आज समस्त देवता, लोकपाल और महर्षिगण इन्द्रजित्को मारा गया सुनकर निर्भयतापूर्वक सुखसे सोयेंगे' इस प्रकार पुत्रकी आसक्तिवश वह भाँति-भाँतिसे विलाप करने लगा ॥६०-६१॥ तदनन्तर राक्षसराज रावण अत्यन्त क्रुद्ध हो अपने शत्रुओंको युद्धमें नष्ट करानेकी कामनासे समस्त राक्षसोंसे बातचीत करने लगा ॥६२॥

स पुत्रवधसन्तप्तः शूरः क्रोधवशं गतः ।
संवीक्ष्य रावणो बुद्ध्या हन्तुं सीतां प्रदुद्रुवे ॥६३॥
खड्गपाणिमथायान्तं क्रुद्धं दृष्ट्वा दशाननम् ।
राक्षसीमध्यगा सीता भयशोकाकुलाऽभवत् ॥६४॥
एतस्मिन्नन्तरे तस्य सचिवो बुद्धिमान् शुचिः ।
सुपार्श्वो नाम मेधावी रावणं वाक्यमब्रवीत् ॥६५॥
ननु नाम दशग्रीव साक्षाद्वैश्रवणानुजः ।
वेदविद्याव्रतस्नातः स्वकर्मपरिनिष्ठितः ॥६६॥
अनेकगुणसम्पन्नः कथं स्त्रीवधमिच्छसि ।
अस्माभिः सहितो युद्धे हत्वा रामं च लक्ष्मणम् ।
प्राप्स्यसे जानकीं शीघ्रमित्युक्तः स न्यवर्तत ॥६७॥

फिर, शूरवीर रावण पुत्र-शोकसे व्याकुल हो अपनी बुद्धिसे कुछ सोचकर क्रोधपूर्वक सीताजीको मारनेके लिये दौड़ा (अर्थात् शोक और क्रोधके कारण वह ऐसे निन्द्य कर्मको ही अपना कर्तव्य मान बैठा) ॥६३॥ रावण-को हाथमें खड्ग लिये क्रोधपूर्वक अपनी ओर आता देख राक्षसियोंके बीचमें बैठी हुई सीताजी भयभीत हो गयीं ॥६४॥ इसी समय रावणके सुपार्श्व नामक मन्त्रीने, जो परमबुद्धिमान् शुद्ध-हृदय और विचार-वान् था, उससे कहा—॥६५॥ "अहो दशानन ! यह क्या ? आप तो साक्षात् विश्रवानन्दन कुबेरजीके छोटे भाई हैं, वेदविद्यामें निपुण और यज्ञान्तमें स्नान करनेवाले एवं स्वधर्मपरायण हैं ॥६६॥ इस प्रकार अनेक गुणसम्पन्न होकर भी आप स्त्री-वध करना कैसे चाहते हैं ? हम सबको साथ लेकर आप राम और लक्ष्मणको युद्धमें मारकर बहुत शीघ्र जानकीको प्राप्त कर लेंगे।" सुपार्श्वके इस प्रकार समझानेपर रावण लौट आया ॥६७॥

ततो दुरात्मा सुहृदा निवेदितं
वचः सुधर्म्यं प्रतिगृह्य रावणः ।

तदनन्तर दुरात्मा रावण अपने बन्धुके कहे हुए धर्मानुकूल वाक्योंको ग्रहणकर शोकसे मूढबुद्धि हो तुरन्त

गृहं जगामाशु शुचा विमूढधीः
पुनः सभां च प्रययौ सुहृद्वृतः ॥६८॥

अपने घर गया और फिर दूसरे दिन अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ सभामें आया ॥६८॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे
युद्धकाण्डे नवमः सर्गः ॥९॥

दशम सर्ग

रावणका यज्ञ-विध्वंस तथा उसका मन्दोदरीको समझाना।

श्रीमहादेव उवाच

स विचार्य सभामध्ये राक्षसैः सह मन्त्रिभिः।
निर्ययौ येऽवशिष्टास्ते राक्षसैः सह राघवम् ॥ १ ॥
शलभः शलभैर्युक्तः प्रज्वलन्तमिवानलम्।
ततो रामेण निहताः सर्वे ते राक्षसा युधि ॥ २ ॥
स्वयं रामेण निहतस्तीक्ष्णबाणेन वक्षसि।
व्यथितस्त्वरितं लङ्कां प्रविवेश दशाननः ॥ ३ ॥
दृष्ट्वा रामस्य बहुशः पौरुषं चाप्यमानुषम्।
रावणो मारुतेश्चैव शीघ्रं शुक्रान्तिकं ययौ ॥ ४ ॥
नमस्कृत्य दशग्रीवः शुक्रं प्राञ्जलिरब्रवीत्।
भगवन् राघवेणैवं लङ्का राक्षसयूथपैः ॥ ५ ॥
विनाशिता महादैत्या निहताः पुत्रबान्धवाः।
कथं मे दुःखसन्दोहस्त्वयि तिष्ठति सद्गुरौ ॥ ६ ॥
इति विज्ञापितो दैत्यगुरुः प्राह दशाननम्।
होमं कुरु प्रयत्नेन रहसि त्वं दशानन ॥ ७ ॥
यदि विघ्नो न चेद्धोमे तर्हि होमानलोत्थितः ॥ ८ ॥
महान् रथश्च वाहाश्च चापतूणीरसायकाः।
सम्भविष्यन्ति तैर्युक्तस्त्वमजेयो भविष्यसि ॥ ९ ॥
गृहाण मन्त्रान्मदत्तान् गच्छ होमं कुरु द्रुतम्।
इत्युक्तस्त्वरितं गत्वा रावणो राक्षसाधिपः ॥१०॥
गुहां पातालसदृशीं मन्दिरे स्वे चकार ह।

श्रीमहादेवजी बोले–हे पार्वति! फिर रावण सभामें अपने राक्षस-मन्त्रियोंके साथ विचार कर पतङ्ग जिस प्रकार अन्यान्य पतङ्गोंके साथ प्रज्वलित अग्निपर गिरता है उसी प्रकार बचे-खुचे राक्षसोंको लेकर रघुनाथजीके पास चला; किन्तु श्रीरामचन्द्रजीने उन समस्त राक्षसोंको युद्धमें मार डाला ॥१-२॥ और स्वयं रावण भी हृदयमें भगवान् रामका तीक्ष्ण बाण लगनेसे व्याकुल हो तुरन्त लङ्कामें लौट आया ॥३॥

भगवान् राम और हनुमान्‌जीके बहुत-से अतिमानुष पौरुष देखकर रावण अति शीघ्रतासे शुक्राचार्यजीके पास गया ॥४॥ और उन्हें नमस्कार कर वह हाथ जोड़कर कहने लगा–"भगवन्! रामने समस्त राक्षस-यूथपोंके सहित लङ्कापुरी नष्ट कर दी और जितने बड़े-बड़े दैत्य और मेरे बन्धु-बान्धव थे वे सभी मार डाले! आप-जैसे सद्गुरुके रहते हमें यह महान् दुःख क्यों देखना पड़ा?" ॥५-६॥ रावणके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर दैत्यगुरु शुक्राचार्यजीने उससे कहा--"हे दशानन! तुम जैसे हो सके वैसे किसी एकान्त देशमें हवन करो ॥७॥ यदि तुम्हारे हवनमें कोई विघ्न न हुआ तो उस होमाग्निसे एक बहुत बड़ा रथ, घोड़े, धनुष, तरकश और बाण उत्पन्न होंगे। उन्हें पाकर तुम अजेय हो जाओगे ॥८-९॥ मेरे दिये हुए मन्त्रोंको ग्रहण करो और इनसे तुरन्त जाकर हवन करो।"

शुक्राचार्यजीके इस प्रकार कहनेपर राक्षसराज रावणने तुरन्त ही जाकर अपने महलमें एक पातालके

लङ्काद्वारकपाटादि बद्धा सर्वत्र यत्नतः ॥११॥
होमद्रव्याणि सम्पाद्य यान्युक्तान्याभिचारिके।
गुहां प्रविश्य चैकान्ते मौनी होमं प्रचक्रमे ॥१२॥

समान गम्भीर गुहा तैयार करायी और बड़ी सावधानीसे लङ्काके सब द्वारोंके फाटक आदि बन्द करा दिये १०-११ तथा शास्त्रोंमें अभिचार कर्मोंकी जो-जो हवन-सामग्रियाँ बतायी गयी हैं वे सब एकत्रित कीं और गुहामें घुसकर एकान्तमें मौनावलम्बनपूर्वक होम करने लगा ॥ १२ ॥

उत्थितं धूममालोक्य महान्तं रावणानुजः।
रामाय दर्शयामास होमधूमं भयाकुलः ॥१३॥
पश्य राम दशग्रीवो होमं कर्तुं समारभत्।
यदि होमः समाप्तः स्यात्तदाऽजेयो भविष्यति।१४।
अतो विघ्नाय होमस्य प्रेषयाशु हरीश्वरान्।
तथेति रामः सुग्रीवसम्मतेनाङ्गदं कपिम् ॥१५॥
हनूमत्प्रमुखान्वीरानादिदेश महाबलान्।
प्राकारं लङ्घयित्वा ते गत्वा रावणमन्दिरम् ॥१६॥
दशकोटचः प्लवङ्गानां गत्वा मन्दिररक्षकान्।
चूर्णयामासुरश्वांश्च गजांश्च न्यहनन् क्षणात् ॥१७॥
ततश्च सरमा नाम प्रभावे हस्तसंज्ञया।
विभीषणस्य भार्या सा होमस्थानमशूचयत् ॥१८॥
गुहापिधानपाषाणमङ्गदः पादघट्टनैः।
चूर्णयित्वा महासत्त्वः प्रविवेश महागुहाम् ॥१९॥
दृष्ट्वा दशाननं तत्र मीलिताक्षं दृढासनम्।
ततोऽङ्गदाज्ञया सर्वे वानरा विविशुर्द्रुतम् ॥२०॥
तत्र कोलाहलं चक्रुस्ताडयन्तश्च सेवकान्।
सम्भारांश्चिक्षिपुस्तस्य होमकुण्डे समन्ततः ॥२१॥
स्रुवमाच्छिद्य हस्ताच्च रावणस्य बलाद्रुषा।
तेनैव सञ्जघानाशु हनूमान् प्लवगाग्रणीः ॥२२॥
घ्नन्ति दन्तैश्च काष्ठैश्च वानरास्तमितस्ततः।
न जहौ रावणो ध्यानं हतोऽपि विजिगीषया ॥२३॥

तब रावणके छोटे भाई विभीषणने बड़ा भारी धुआँ उठते देख अति भयभीत हो उसे श्रीरामचन्द्रजीको दिखाया ॥१३॥ (और कहा—)"हे राम ! देखिये, दशशीशने हवन करना आरम्भ किया है; यदि यह हवन (निर्विघ्न) समाप्त हो गया तो वह अजेय हो जायगा ॥१४॥ अतः इसमें विघ्न डालनेके लिये शीघ्र ही वानर-सेनापतियोंको भेजिये।" तब रघुनाथजीने 'अच्छा' कहकर सुग्रीवकी सम्मतिसे कपिवर अंगद और हनुमान् आदि महाबलवान् वानर-वीरोंको आज्ञा दी। वे सब नगरके परकोटेको लाँघकर रावणके महलपर पहुँचे ॥ १५-१६ ॥ इन दश करोड़ वानरोंने वहाँ पहुँचकर महलके द्वारपालोंको चूर्ण कर डाला और एक क्षणमें ही बहुत-से घोड़ों तथा हाथियोंका संहार कर दिया ॥१७॥

(इस प्रकार लङ्कामें रातभर बड़ा भारी कोलाहल मचा रहा)। प्रातःकाल होते ही विभीषणकी भार्या सरमाने हाथके संकेतसे होमस्थान बतला दिया ॥१८॥ गुहाको ढँकनेके लिये उसके मुखपर रखे हुए पत्थरको महापराक्रमी अंगद पैरकी ठोकरसे चूर-चूरकर उस महाकन्दरामें घुस गये ॥ १९ ॥ वहाँ उन्होंने रावणको नेत्र मूँदे, दृढ़ आसन लगाये बैठे देखा। तदनन्तर अंगदजीकी आज्ञासे समस्त वानरगण तुरन्त उस गुहामें घुस गये ॥ २० ॥ गुहामें घुसकर वे सेवकोंको पीटने और बड़ा भारी कोलाहल करने लगे, तथा जहाँ-तहाँ रखी हुई यज्ञ-सामग्रीको उन्होंने हवनकुण्डमें डाल दिया ॥ २१ ॥ वानराग्रणी हनुमान्‌जीने अति रोष-पूर्वक बलात्कारसे रावणके हाथसे स्रुवा छीनकर उसीसे उसपर आघात किया ॥ २२ ॥ वानरगण रावणपर इधर-उधरसे दाँतों और लकड़ियोंसे प्रहार कर रहे थे; किन्तु उसने विजयकी कामनासे इस प्रकार आहत होनेपर भी अपना ध्यान नहीं छोड़ा ॥ २३ ॥

प्रविश्यान्तःपुरे वेश्मन्यङ्गदो वेगवत्तरः ।
समानयत्केशबन्धे धृत्वा मन्दोदरीं शुभाम् ॥२४॥
रावणस्यैव पुरतो विलपन्तीमनाथवत् ।
विददाराङ्गदस्तस्याः कञ्चुकं रत्नभूषितम् ॥२५॥
मुक्ता विमुक्ताः पतिताः समन्ताद्रत्नसञ्चयैः ।
श्रोणिसूत्रं निपतितं त्रुटितं रत्नचित्रितम् ॥२६॥
कटिप्रदेशाद्विस्रस्ता नीवी तस्यैव पश्यतः ।
भूषणानि च सर्वाणि पतितानि समन्ततः ॥२७॥
देवगन्धर्वकन्याश्च नीता हृष्टैः प्लवङ्गमैः ।
मन्दोदरी रुरोदाथ रावणस्याग्रतो भृशम् ॥२८॥
क्रोशन्ती करुणं दीना जगाद दशकन्धरम् ।
निर्लज्जोऽसि परैरेवं केशपाशे विकृष्यते ॥२९॥
भार्या तवैव पुरतः किं जुहोपि न लज्जसे ।
हन्यते पश्यतो यस्य भार्या पापैश्च शत्रुभिः ॥३०॥
मर्तव्यं तेन तत्रैव जीवितान्मरणं वरम् ।
हा मेघनाद ते माता क्लिश्यते वत वानरैः ॥३१॥
त्वयि जीवति मे दुःखमीदृशं च कथं भवेत् ।
भार्या लज्जा च सन्त्यक्ता भर्त्रा मे जीविताशया॥३२॥
श्रुत्वा तद्देवितं राजा मन्दोदर्या दशाननः ।
उत्तस्थौ खड्गमादाय त्यज देवीमिति ब्रुवन् ॥३३॥
जघानाङ्गदमव्यग्रः कटिदेशे दशाननः ।
तदोत्सृज्य ययुः सर्वे विध्वंस्य हवनं महत् ॥३४॥
रामपार्श्वमुपागम्य तस्थुः सर्वे प्रहर्षिताः ॥३५॥
रावणस्तु ततो भार्यामुवाच परिसान्त्वयन् ।
दैवाधीनमिदं भद्रे जीवता किं न दृश्यते ।

तब अत्यन्त वेगवान् अंगदजी अन्तःपुरमें जाकर तुरन्त ही शुभलक्षणा मन्दोदरीको चोटी पकड़कर ले आये ॥ २४ ॥ और रावणके सामने ही उन्होंने अनाथके समान विलाप करती हुई मन्दोदरीकी रत्न-जटित कञ्चुकी (चोली) फाड़ डाली ॥२५॥ उसके मोती टूट-टूटकर रत्नसमूहके सहित सब ओर बिखर गये, (इसी प्रकार) मन्दोदरीकी रत्नजटित करधनी भी टूटकर पृथिवीपर गिर पड़ी ॥ २६ ॥ रावणके देखते-देखते ही उसके अधोवस्त्रका बन्धन ढीला पड़कर कटि-प्रदेशसे खिसक गया और समस्त आभूषण जहाँ-तहाँ गिर गये ॥ २७ ॥ ऐसे ही अन्यान्य वानरगण भी कुतूहलवश देव और गन्धर्व आदिकी कन्याओंको (जो रावणकी पत्नियाँ थीं) पकड़ लाये । तब मन्दोदरी रावणके सामने अत्यन्त विलाप करने लगी ॥ २८ ॥ और करुणावश अति दीन होकर रावणसे कहने लगी, "अहो ! तुम बड़े निर्लज्ज हो । तुम्हारे सामने ही शत्रु-गण तुम्हारी भार्याको चोटी पकड़कर खींच रहे हैं, और फिर भी तुम हवन कर रहे हो ! क्या तुम्हें लज्जा नहीं आती ? जिसकी भार्याको उसीके सामने पापी शत्रुगण मारते हों उसे तो वहीं मर जाना चाहिये । उसके जीनेसे तो मरना ही अच्छा है । हा मेघनाद ! आज तेरी माता वानरोंके हाथोंमें पड़कर क्लेश पा रही है ? ॥ २९–३१ ॥ बेटा ! तेरे जीते रहनेपर मुझे यह दुःख क्यों देखना पड़ता ? मेरे पतिने तो अपना जीवन बचानेके लिये अपनी स्त्री और लज्जासे भी मुँह मोड़ लिया है !" ॥ ३२ ॥

मन्दोदरीका यह विलाप सुनकर राक्षसराज रावण हाथमें खड्ग लेकर 'अरे देवीको छोड़ो' यों कहता हुआ उठा ॥ ३३ ॥ रावणने उठते ही अंगदजीकी कमरमें प्रहार किया । तब समस्त वानरगण उसका महा-यज्ञ विध्वंस कर वहाँसे चल दिये ॥३४॥ और सबके सब अति प्रसन्न हो रघुनाथजीके पास आ उपस्थित हुए ॥३५॥

तब रावण अपनी भार्या मन्दोदरीको डाँढस बँधाते हुए बोला—"हे कल्याणि ! ये सुख-दुःखादि दैवके अधीन हैं—जीता हुआ प्राणी क्या नहीं देखता ?

त्यज शोकं विशालाक्षि ज्ञानमालम्ब्य निश्चितम्
अज्ञानप्रभवः शोकः शोको ज्ञानविनाशकृत् ॥३६॥
अज्ञानप्रभवाऽहन्धीः शरीरादिष्वनात्मसु ॥३७॥
तन्मूलः पुत्रदारादिसम्बन्धः संसृतिस्ततः ।
हर्षशोकभयक्रोधलोभमोहस्पृहादयः ॥३८॥
अज्ञानप्रभवा ह्येते जन्ममृत्युजरादयः ।
आत्मा तु केवलः शुद्धो व्यतिरिक्तो ह्यलेपकः ।३९।
आनन्दरूपो ज्ञानात्मा सर्वभावविवर्जितः ।
न संयोगो वियोगो वा विद्यते केनचित्सतः ॥४०॥
एवं ज्ञात्वा स्वमात्मानं त्यज शोकमनिन्दिते ।
इदानीमेव गच्छामि हत्वा रामं सलक्ष्मणम् ॥४१॥
आगमिष्यामि नोचेन्मां दारयिष्यति सायकैः ।
श्रीरामो वज्रकल्पैश्च ततो गच्छामि तत्पदम् ॥४२॥
तदा त्वया मे कर्तव्या क्रिया मच्छासनात्प्रिये ।
सीतां हत्वा यया सार्धं त्वं प्रवेक्ष्यसि पावकम् ।४३।

अतः हे विशालनयनि ! इस निश्चित ज्ञानका आश्रय-कर तुम शोक छोड़ दो ॥ ३६ ॥ शोक अज्ञानसे होता है और वह ज्ञानको नष्ट कर देता है । शरीरादि अनात्म-पदार्थोंमें अहं-बुद्धि भी अज्ञानसे ही होती है ॥३७॥ इस मिथ्या अहंकारके कारण ही पुत्र, स्त्री आदि-का सम्बन्ध होता है और इन सम्बन्धोंमें आस्था होनेसे ही जन्म-मरणरूप संसार तथा हर्ष, शोक, भय, क्रोध, लोभ, मोह और स्पृहा आदि होते हैं ॥ ३८ ॥ ये जन्म, मृत्यु और जरा आदि अवस्थाएँ अज्ञान-जन्य ही हैं । आत्मा तो एकमात्र, शुद्ध, सबसे पृथक् और असंग है ॥ ३९ ॥ वह आनन्दस्वरूप, ज्ञानमय और समस्त भावोंसे रहित है । उस सत्स्वरूपका कभी किसीसे संयोग-वियोग नहीं होता ॥ ४० ॥ हे अनिन्दिते ! अपने आत्माका ऐसा स्वरूप जानकर तुम शोक छोड़ दो; मैं अभी जाता हूँ, और या तो लक्ष्मणसहित रामको मार कर ही आऊँगा या श्रीराम ही अपने वज्रसदृश बाणोंसे मुझे छिन्न-भिन्न कर देंगे । तब मैं उनके पदको प्राप्त होऊँगा ॥४१-४२॥ हे प्रिये ! मेरी आज्ञासे तब तुम मेरे लिये एक काम करना; तुम सीताको मारकर उसे लेकर अग्निमें प्रवेश कर जाना" ॥ ४३ ॥

एवं श्रुत्वा वचस्तस्य रावणस्यातिदुःखिता ।
उवाच नाथ मे वाक्यं शृणु सत्यं तथा कुरु ॥४४॥
शक्यो न राघवो जेतुं त्वया चान्यैः कदाचन ।
रामो देववरः साक्षात्प्रधानपुरुषेश्वरः ॥४५॥
मत्स्यो भूत्वा पुरा कल्पे मनुं वैवस्वतं प्रभुः ।
ररक्ष सकलापद्भ्यो राघवो भक्तवत्सलः ॥४६॥
रामः कूर्मोऽभवत्पूर्वं लक्षयोजनविस्तृतः ।
समुद्रमथने पृष्ठे दधार कनकाचलम् ॥४७॥
हिरण्याक्षोऽतिदुर्वृत्तो हतोऽनेन महात्मना ।
क्रोडरूपेण वपुषा क्षोणीमुद्धरता क्वचित् ॥४८॥
त्रिलोककण्टकं दैत्यं हिरण्यकशिपुं पुरा ।
हतवान्नारसिंहेन वपुषा रघुनन्दनः ॥४९॥

रावणके ये वचन सुनकर मन्दोदरीने अति दुःखित होकर कहा--"प्रभो ! मैं आपसे ठीक-ठीक बात कहती हूँ, आप उसे सुनकर वैसा ही कीजिये ॥४४॥ राम तुमसे अथवा और भी किसीसे कभी नहीं जीते जा सकते । देवाधिदेव भगवान् राम साक्षात् प्रकृति और पुरुषके नियामक हैं ॥४५॥ भक्तवत्सल रघुनाथजी ने ही कल्पके आरम्भमें मत्स्यरूप होकर वैवस्वतमनुकी समस्त आपत्तियोंसे रक्षा की थी ॥ ४६ ॥ भगवान् राम ही पूर्वकालमें एक लक्ष योजन विस्तारवाले कच्छप हुए थे और समुद्र-मन्थनके समय इन्होंने अपनी पीठ-पर सुमेरु पर्वतको धारण किया था ॥ ४७ ॥ किसी समय वराहरूप धारण कर पृथिवीका उद्धार करते समय इन्हीं महात्माने महादुराचारी हिरण्याक्ष दैत्यको मारा था ॥ ४८ ॥ इन रघुनन्दनने ही नृसिंह-शरीरसे त्रिलोकीके कण्टकरूप हिरण्यकशिपु दैत्यको मारा

विक्रमैस्त्रिभिरेवासौ बलिं बद्धा जगत्त्रयम् ।
आक्रम्यादात्सुरेन्द्राय भृत्याय रघुसत्तमः ॥५०॥
राक्षसाः क्षत्रियाकारा जाता भूमेर्भरावहाः ।
तान्हत्वा बहुशो रामो भुवं जित्वा ह्यदान्मुनेः॥५१॥
स एव साम्प्रतं जातो रघुवंशे परात्परः ।
भवदर्थे रघुश्रेष्ठो मानुषत्वमुपागतः ॥५२॥
तस्य भार्यां किमर्थं वा हृता सीता वनाद्बलात् ।
मम पुत्रविनाशार्थं स्वस्याऽपि निधनाय च ॥५३॥
इतः परं वा वैदेहीं प्रेषयस्व रघूत्तमे ।
विभीषणाय राज्यं तु दत्त्वा गच्छामहे वनम् ॥५४॥
मन्दोदरीवचः श्रुत्वा रावणो वाक्यमब्रवीत् ।
कथं भद्रे रणे पुत्रान् भ्रातॄन् राक्षसमण्डलम् ॥५५॥
घातयित्वा राघवेण जीवामि वनगोचरः ।
रामेण सह योत्स्यामि रामबाणैः सुशीघ्रगैः ॥५६॥
विदार्यमाणो यास्यामि तद्विष्णोः परमं पदम् ।
जानामि राघवं विष्णुं लक्ष्मीं जानामि जानकीम् ।
ज्ञात्वैव जानकी सीता मयाऽऽनीता वनाद्बलात्५७
रामेण निधनं प्राप्य यास्यामीति परं पदम् ।
विमुच्य त्वां तु संसाराद्गमिष्यामि सह प्रिये ॥५८॥
परानन्दमयी शुद्धा सेव्यते या मुमुक्षुभिः ।
तां गतिं तु गमिष्यामि हतो रामेण संयुगे ॥५९॥
प्रक्षाल्य कल्मषाणीह मुक्तिं यास्यामि दुर्लभाम् ६०
क्लेशादिपञ्चकतरङ्गयुतं भ्रमाढ्यं
दारात्मजाप्तधनबन्धुझषाभियुक्तम् ।
और्वानलाभनिजरोषमनङ्गजालं
संसारसागरमतीत्य हरिं व्रजामि ॥६१॥

था ॥ ४९ ॥ और इन्हीं रघुश्रेष्ठने (वामन अवतारमें) बलिको बाँधकर सम्पूर्ण त्रिलोकीको तीन ही पगोंसे नापकर अपने सेवक इन्द्रको दे दिया था ॥ ५० ॥ जिस समय राक्षसगण क्षत्रियरूपसे उत्पन्न होकर पृथिवीके भाररूप हुए तब इन्हींने परशुरामरूपसे उन्हें कई बार संग्राममें मारा और पृथिवीको जीतकर उसे कश्यप मुनिको दे दिया ॥ ५१ ॥ इस समय वे ही परात्पर प्रभु रघुवंशमें रामरूपसे अवतीर्ण होकर आपके लिये मनुष्यरूप हुए हैं ॥५२ ॥ आपने उनकी स्त्री सीताको मेरे पुत्रके नाशके लिये और अपनी भी मौत बुलानेके लिये भला, बलात्कारसे तपोवनसे क्यों चुरा लिया ? ॥ ५३ ॥ आप अब भी जानकीको रघुनाथजीके पास भेज दीजिये; फिर विभीषणको राज्य देकर हम वनको चलेंगे" ॥ ५४ ॥

मन्दोदरीके वचन सुनकर रावण बोला—"अयि भद्रे ! युद्धमें रघुनाथजीसे अपने पुत्र, भ्राता और राक्षस-समूहका नाश कराकर भला मैं वनवासी होकर कैसे जीवन काट सकता हूँ ? अब तो मैं भी रामके साथ युद्ध करूँगा और उनके शीघ्रगामी बाणोंसे विद्ध होकर उन विष्णुभगवान्‌के परमधामको जाऊँगा । मैं रामको साक्षात् विष्णु और जानकीको भगवती लक्ष्मी जानता हूँ । और यह जानकर ही कि 'रामके हाथसे मरकर उनका परमपद प्राप्त करूँगा' मैं जनकनन्दिनी सीताको बलात्कारसे तपोवनसे ले आया था । हे प्रिये ! अब मैं तुम्हें छोड़कर अपने अन्यान्य राक्षस वीरोंके साथ संसारसे कूच करूँगा ॥ ५५—५८ ॥ और मुमुक्षुगण जिस परमानन्दमयी विशुद्ध गतिका सेवन करते हैं, संग्राममें भगवान् रामके हाथसे मरकर मैं उसी गतिको प्राप्त करूँगा ॥५९॥ इस प्रकार अपने समस्त पाप-पुञ्जका प्रक्षालन कर मैं दुर्लभ मोक्ष-पद प्राप्त करूँगा ॥ ६० ॥ जिसमें (अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश नामक) पाँच क्लेश ही तरंगें हैं, भ्रमरूप भँवरें हैं, स्त्री पुत्र स्वजन विभव और बन्धु आदि मत्स्य हैं, अपना क्रोधरूपी बड़वानल है तथा कामरूपी जाल फैलाया हुआ है उस संसार-सागरको पारकर अब मैं श्रीहरिके निकट जाऊँगा" ॥ ६१ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे
युद्धकाण्डे दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादश सर्ग

राम-रावण-संग्राम और रावणका वध।

श्रीमहादेव उवाच

इत्युक्त्वा वचनं प्रेम्णा राज्ञीं मन्दोदरीं तदा।
रावणः प्रययौ योद्धुं रामेण सह संयुगे ॥ १ ॥
दृढं स्यन्दनमास्थाय वृतो घोरैर्निशाचरैः।
चक्रैः षोडशभिर्युक्तं सवरूथं सकूवरम् ॥ २ ॥
पिशाचवदनैर्घोरैः खरैर्युक्तं भयावहम्।
सर्वास्त्रशस्त्रसहितं सर्वोपस्करसंयुतम् ॥ ३ ॥
निश्चक्रामाथ सहसा रावणो भीषणाकृतिः।
आयान्तं रावणं दृष्ट्वा भीषणं रणकर्कशम् ॥ ४ ॥
सन्त्रस्ताऽभूत्तदा सेना वानरी रामपालिता ॥५॥
हनूमानथ चोत्प्लुत्य रावणं योद्धुमाययौ।
आगत्य हनुमान् रक्षोवक्षस्यतुलविक्रमः ॥ ६ ॥
मुष्टिबन्धं दृढं बद्ध्वा ताडयामास वेगतः।
तेन मुष्टिप्रहारेण जानुभ्यामपतद्रथे ॥ ७ ॥
मूर्च्छितोऽथ मुहूर्तेन रावणः पुनरुत्थितः।
उवाच च हनूमन्तं शूरोऽसि मम सम्मतः ॥ ८ ॥
हनूमानाह तं धिङ्मां यस्त्वं जीवसि रावण।
त्वं तावन्मुष्टिना वक्षो मम ताडय रावण ॥ ९ ॥
पश्चान्मया हतः प्राणान्मोक्ष्यसे नात्र संशयः।
तथेति मुष्टिना वक्षो रावणेनाऽपि ताडितः ॥१०॥
विघूर्णमाननयनः किञ्चित्कश्मलमाययौ।
संज्ञामवाप्य कपिराड् रावणं हन्तुमुद्यतः ॥११॥
ततोऽन्यत्र गतो भीत्या रावणो राक्षसाधिपः।
हनूमानङ्गदश्चैव नलो नीलस्तथैव च ॥१२॥
चत्वारः समवेत्याग्रे दृष्ट्वा राक्षसपुङ्गवान्।
अग्निवर्णं तथा सर्परोमाणं खड्गरोमकम् ॥१३॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! महाराज मन्दोदरीको प्रेमपूर्वक इस प्रकार समझा-बुझाकर रावण श्रीरामचन्द्रजीके साथ युद्ध करनेके लिये रणभूमिके चला ॥ १ ॥ वह महाभयंकर राक्षसोंसे घिरकर एव सुदृढ़ रथपर सवार हुआ। उस रथमें सोलह पहिये तथा वरूथ[1] और कूबर[2] लगे हुए थे ॥ २ ॥ वह पिशाचके समान मुखवाले गर्दभोंके जुते रहनेसे अति भयानक जान पड़ता था तथा सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित एवं समस्त युद्ध-सामग्रीसे सम्पन्न था ॥ ३ ॥ इस प्रकार महाभयंकर राक्षसराज रावण लंकापुरीसे निकला।

युद्धमें अत्यन्त निष्ठुर भीषणाकार रावणको आत देख भगवान् रामसे सुरक्षित वानर-सेना भयभीत हो गयी ॥ ४-५ ॥ तब हनुमान्‌जी रावणसे युद्ध करनेके लिये उछलकर सामने आये। वहाँ आते ह अतुलितपराक्रमी पवनकुमारने कसकर मुट्ठी बाँध और बड़े वेगसे उस राक्षसकी छातीमें प्रहार किया उस घूँसेके लगते ही वह रथमें घुटनोंके बल गिर गय ॥ ६-७ ॥ एक मुहूर्त मूर्च्छित रहनेके अनन्तर रावण को फिर चेत हुआ। तब उसने हनुमान्‌जीसे कहा—"मैं मानता हूँ, तू वास्तवमें बड़ा शूरवीर है" ॥ ८ ॥

हनुमान्‌जीने कहा—"अरे रावण ! मुझे धिक्का है कि (मेरा घूँसा खाकर भी) तू जीता रह गया अच्छा, अब तू मेरी छातीमें घूँसा मार ॥ ९ ॥ फि मेरा घूँसा लगनेपर तू प्राण छोड़ देगा, इसमें सन्दे नहीं। तब रावणने 'अच्छा' ऐसा कहकर उनक छातीमें घूँसा मारा ॥ १० ॥ उसके लगनेसे उनके ने घूमने लगे और वे कुछ तिलमिला उठे फिर चे होनेपर कपिराज हनुमान्‌जी रावणको मारने लिये तैयार हुए ॥ ११ ॥ तब राक्षसराज राव भयभीत होकर कहीं अन्यत्र चला गया। हनुमान् अंगद, नल और नील इन चारोंने एकत्र होकर अप सामने अग्निवर्ण, सर्परोमा, खड्गरोमा और वृश्चिकरो

१-रथकी रक्षाके लिये बना हुआ लोहे आदिका आवरण। २-रथका वह भाग जिसपर जूआ बाँधा जाता है।

तथा वृश्चिकरोमाणं निर्जघ्नुः क्रमशोऽसुरान् ।
चत्वारश्चतुरो हत्वा राक्षसान् भीमविक्रमान् ।
सिंहनादं पृथक् कृत्वा रामपार्श्वमुपागताः ॥१४॥

नामक चार राक्षसोंको खड़े देखा । तब उन चारोंने क्रमशः इन चारों महापराक्रमी राक्षसोंको मार डाला और फिर पृथक्-पृथक् गरजते हुए श्रीरघुनाथजीके पास आ खड़े हुए ॥ १२–१४ ॥

ततः क्रुद्धो दशग्रीवः सन्दश्य दशनच्छदम् ॥१५॥
विवृत्य नयने क्रूरो राममेवान्वधावत ।
दशग्रीवो रथस्थस्तु रामं वज्रोपमैः शरैः ॥१६॥
आजघान महाघोरैर्धाराभिरिव तोयदः ।
रामस्य पुरतः सर्वान्वानरानपि विव्यधे ॥१७॥
ततः पावकसङ्काशैः शरैः काञ्चनभूषणैः ।
अभ्यवर्षद्रणे रामो दशग्रीवं समाहितः ॥१८॥
रथस्थं रावणं दृष्ट्वा भूमिष्ठं रघुनन्दनम् ।
आहूय मातलिं शक्रो वचनं चेदमब्रवीत् ॥१९॥
रथेन मम भूमिष्ठं शीघ्रं याहि रघूत्तमम् ।
त्वरितं भूतलं गत्वा कुरु कार्यं ममानघ ॥२०॥

तदनन्तर अत्यन्त क्रूर दशग्रीव (रावण) क्रुद्ध होकर दाँतोंसे ओठ चबाता हुआ आँखें फाड़कर श्रीरामचन्द्रजीकी ओर ही दौड़ा । रावण रथमें चढ़ा हुआ था (और श्रीरघुनाथजी रथहीन थे तो भी) वह, मेघ जिस प्रकार जलकी धाराएँ बरसाता है वैसे ही महाभयंकर वज्र-सदृश बाणोंसे श्रीरामचन्द्रजीपर प्रहार करने लगा और भगवान् रामके सामने ही उसने समस्त वानरोंको भी व्यथित कर दिया ॥ १५–१७ ॥ तब श्रीरामचन्द्रजी भी सावधान होकर रणभूमिमें रावणपर अग्निके समान तेजस्वी सुवर्ण-भूषित बाणोंकी वर्षा करने लगे । इन्द्रने जब देखा कि रावण रथपर चढ़ा हुआ है और श्रीरघुनाथजी पृथिवीपर ही खड़े हैं तो उसने अपने सारथि मातलिको बुलाकर कहा—॥१८-१९॥ "हे अनघ ! देखो रघुनाथजी पृथिवीपर खड़े हैं, तुम तुरन्त मेरा रथ लेकर भूलोकमें उनके पास जाओ और मेरा कार्य करो" ॥ २० ॥

एवमुक्तोऽथ तं नत्वा मातलिर्देवसारथिः ।
ततो हयैश्च संयोज्य हरितैः स्यन्दनोत्तमम् ॥२१॥
स्वर्गाजयार्थं रामस्य ह्युपचक्राम मातलिः ।
प्राञ्जलिर्देवराजेन प्रेषितोऽस्मि रघूत्तम ॥२२॥
रथोऽयं देवराजस्य विजयाय तव प्रभो ।
प्रेषितश्च महाराज धनुरैन्द्रं च भूषितम् ॥२३॥
अमेद्यं कवचं खड्गं दिव्यतूणीयुगं तथा ।
आरुह्य च रथं राम रावणं जहि राक्षसम् ॥२४॥
मया सारथिना देव वृत्रं देवपतिर्यथा ।
हत्युक्तस्तं परिक्रम्य नमस्कृत्य रथोत्तमम् ॥२५॥
आरुरोह रथं रामो लोकान्लक्ष्म्या नियोजयन् ।

इन्द्रकी यह आज्ञा पाकर देवसारथि मातलिने उन्हें नमस्कार किया और उनके उत्तम रथमें हरे रंगके घोड़े जोतकर भगवान् रामकी विजयके लिये स्वर्गसे चलकर उनके पास उपस्थित हुआ तथा उनसे हाथ जोड़कर बोला—"हे रघुश्रेष्ठ ! मुझे देवराज इन्द्रने भेजा है ॥ २१-२२ ॥ हे प्रभो ! यह रथ इन्द्रका ही है, इसे उन्होंने आपकी विजयके लिये भेजा है । हे महाराज ! इसके साथ ही यह अति शोभायमान ऐन्द्र धनुष, अभेद्य कवच, खड्ग और दो दिव्य तूणीर भी भेजे हैं । हे राम ! मुझ सारथीके साथ, इन्द्रने जिस प्रकार वृत्रासुरका वध किया था उसी प्रकार हे देव ! आप इस रथपर आरूढ होकर राक्षस रावणका वध कीजिये ।"

मातलिके इस प्रकार कहनेपर श्रीरामचन्द्रजीने उस रथकी परिक्रमा कर उसे नमस्कार किया ॥२३–२५॥ और सम्पूर्ण लोकोंको श्रीसम्पन्न करते हुए उसपर

ततोऽभवन्महायुद्धं भैरवं रोमहर्षणम् ॥२६॥
महात्मनो राघवस्य रावणस्य च धीमतः ।
आग्नेयेन च आग्नेयं दैवं दैवेन राघवः ॥२७॥
अस्त्रं राक्षसराजस्य जघान परमास्त्रवित् ।
ततस्तु ससृजे घोरं राक्षसं चास्त्रमस्त्रवित् ।
क्रोधेन महताऽऽविष्टो रामस्योपरि रावणः ॥२८॥
रावणस्य धनुर्मुक्ताः सर्पा भूत्वा महाविषाः ।
शराः काञ्चनपुङ्खाभा राघवं परितोऽपतन् ॥२९॥
तैः शरैः सर्पवदनैर्वमद्भिरनलं मुखैः ।
दिशश्च विदिशश्चैव व्याप्तास्तत्र तदाऽभवन् ॥३०॥
रामः सर्पांस्ततो दृष्ट्वा समन्तात्परिपूरितान् ।
सौपर्णमस्त्रं तद्घोरं पुरः प्रावर्तयद्रणे ॥३१॥
रामेण मुक्तास्ते बाणा भूत्वा गरुडरूपिणः ।
चिच्छिदुः सर्पबाणांस्तान्समन्तात्सर्पशत्रवः ॥३२॥
अस्त्रे प्रतिहते युद्धे रामेण दशकन्धरः ।
अभ्यवर्षत्ततो रामं घोराभिः शरवृष्टिभिः ॥३३॥
ततः पुनः शरानीकै राममक्लिष्टकारिणम् ।
अर्दयित्वा तु घोरेण मातलिं प्रत्यविध्यत ॥३४॥
पातयित्वा रथोपस्थे रथकेतुं च काञ्चनम् ।
ऐन्द्रानश्वानभ्यहनद्रावणः क्रोधमूर्च्छितः ॥३५॥
विषेदुर्देवगन्धर्वाश्चारणाः पितरस्तथा ।
आर्त्ताकारं हरिं दृष्ट्वा व्यथिताश्च महर्षयः ॥३६॥
व्यथिता वानरेन्द्राश्च बभूवुः सविभीषणाः ।
दशास्यो विंशतिभुजः प्रगृहीतशरासनः ॥३७॥
ददृशे रावणस्तत्र मैनाक इव पर्वतः ।
रामस्तु भ्रुकुटिं बद्ध्वा क्रोधसंरक्तलोचनः ॥३८॥
कोपं चकार सदृशं निर्दहन्निव राक्षसम् ।
धनुरादाय देवेन्द्रधनुराकारमद्भुतम् ॥३९॥
गृहीत्वा पाणिना बाणं कालानलसमप्रभम् ।
निर्दहन्निव चक्षुर्भ्यां ददृशे रिपुमन्तिके ॥४०॥

आरूढ़ हुए। फिर महात्मा राम और बुद्धिमान् रावण-का महाभयानक और रोमाञ्चकारी घोर युद्ध होनें लगा। अस्त्र-विद्यामें परम कुशल श्रीरामचन्द्रजीने रावणके आग्नेयास्त्रको आग्नेयास्त्रसे और दैवास्त्रको दैवास्त्रसे काट डाला। तब अस्त्रविद्याविशारद रावणने अत्यन्त क्रोधाविष्ट हो श्रीरामचन्द्रजीपर महाभयंकर राक्षसास्त्र छोड़ा ॥२६—२८॥ रावणके धनुषसे छूटे हुए बाण, जो सुवर्णमय पंखसे भासमान हो रहे थे, महाविषधर सर्प होकर श्रीरघुनाथजीके चारों ओर गिरने लगे ॥ २९ ॥ जिनके मुखसे अग्निकी लपटें निकल रही थीं रावणके उन सर्पमुख-बाणोंसे उस समय सम्पूर्ण दिशा-विदिशाएँ व्याप्त हो गयीं ॥ ३० ॥ रामने जब रणभूमिमें सब ओर सर्पोंको व्याप्त देखा तो महाभयंकर गारुडास्त्र छोड़ा ॥ ३१ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके छोड़े हुए वे बाण सर्पोंके शत्रु गरुड होकर जहाँ-तहाँ सर्परूप बाणोंको काटने लगे ॥ ३२ ॥ इस प्रकार भगवान् राम-द्वारा अपने शस्त्रको नष्ट हुआ देख रावणने उनके ऊपर भयंकर बाण-वर्षा की ॥ ३३ ॥ और फिर लीला-विहारी भगवान् रामको अति तीव्र बाणावलीसे पीड़ित कर मातलिको वेध डाला ॥ ३४ ॥ (इतना ही नहीं) क्रोधसे उन्मत्त हुए रावणने रथकी सुवर्णमयी ध्वजा काट कर उसके पृष्ठ भागपर गिरा दी और इन्द्रके घोड़ोंको भी हताहत कर दिया ॥३५॥

भगवान्‌को इस आपत्तिमें देखकर देवता, गन्धर्व, चारण और पितर आदि विषादग्रस्त हो गये तथा महर्षिगण मन-ही-मन दुःख मानने लगे ॥ ३६ ॥ विभीषणके सहित समस्त वानर-यूथपतिगण अति चिन्तित हुए। उस समय हाथमें धनुषबाण लिये दश मुख और बीस भुजाओंवाला रावण मैनाक पर्वतके समान दीख पड़ता था। भगवान् रामके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये, उनकी त्यौरी चढ़ गयी और उस राक्षसको मानो जला डालेंगे ऐसा क्रोध करते हुए उन्होंने इन्द्र-धनुषके समान एक विचित्र धनुष उठाया तथा हाथमें एक कालाग्निके समान तेजोमय बाण लेकर अपने नेत्रोंसे समीपवर्ती शत्रुकी ओर इस प्रकार निहारा मानो भस्म कर देंगे ॥३७—४०॥ काल-

पराक्रमं दर्शयितुं तेजसा प्रज्वलन्निव ।
प्रचक्रमे कालरूपी सर्वलोकस्य पश्यतः ॥४१॥
विकृष्य चापं रामस्तु रावणं प्रतिविध्य च ।
हर्षयन्वानरानीकं कालान्तक इवाबभौ ॥४२॥

रूपी भगवान् रामने अपने तेजसे प्रज्वलित-से हो सम्पूर्ण लोकोंके सामने अपना पराक्रम दिखाना आरम्भ किया ॥ ४१ ॥ उन्होंने अपना धनुष खींचकर रावण-को बींध डाला । और वे सम्पूर्ण वानर-सेनाको आनन्दित करते हुए लोकान्तकारी कालके समान सुशोभित होने लगे ॥ ४२ ॥

क्रुद्धं रामस्य वदनं दृष्ट्वा शत्रुं प्रधावतः ।
त्रस्तुः सर्वभूतानि चचाल च वसुन्धरा ॥४३॥
रामं दृष्ट्वा महारौद्रमुत्पातांश्च सुदारुणान् ।
त्रस्तानि सर्वभूतानि रावणं चाविशद्भयम् ॥४४॥
विमानस्थाः सुरगणाः सिद्धगन्धर्वकिन्नराः ।
ददृशुः सुमहायुद्धं लोकसंवर्तकोपमम् ।
ऐन्द्रमस्त्रं समादाय रावणस्य शिरोऽच्छिनत् ॥४५॥
मूर्धानो रावणस्याथ बहवो रुधिरोक्षिताः ।
गगनात्प्रपतन्त्यिस्म तालादिव फलानि हि ॥४६॥
न दिनं न च वै रात्रिर्न सन्ध्या न दिशोऽपि वा
प्रकाशन्ते न तद्रूपं दृश्यते तत्र सङ्गरे ॥४७॥

शत्रुपर धावा करते हुए भगवान् रामका क्रोधयुक्त मुख देखकर समस्त प्राणी भयभीत हो गये और पृथिवी डगमगाने लगी ॥ ४३ ॥ रामको अति रौद्र-रूप और इन दारुण उत्पातोंको देखकर समस्त जीवोंमें त्रास छा गया और रावणके अन्तःकरणमें भी आतंक समा गया ॥ ४४ ॥ उस समय देवता, सिद्ध, गन्धर्व और किन्नरगण विमानोंपर चढ़े हुए संसारके महाप्रलयके समान इस घोर युद्धको देख रहे थे । इसी बीचमें श्रीरामचन्द्रजीने ऐन्द्रास्त्र छोड़कर रावणके शिर काट डाले ॥४५॥ तब रावणके बहुत-से शिर रुधिरसे लथपथ हो आकाश-मण्डलसे इस प्रकार गिरने लगे जैसे ताल-वृक्षसे उसके फल गिरते हैं ॥ ४६ ॥ उस समय दिन, रात, सन्ध्या अथवा दिशाएँ आदि कुछ भी स्पष्ट नहीं जान पड़ती थीं तथा उस संग्राम-भूमिमें रावणका रूप भी दिखायी नहीं देता था (केवल कटे हुए शिर ही दीख पड़ते थे) ॥ ४७ ॥

ततो रामो बभूवाथ विस्मयाविष्टमानसः ।
शतमेकोत्तरं छिन्नं शिरसां चैकवर्चसाम् ॥४८॥
न चैव रावणः शान्तो दृश्यते जीवितक्षयात्
ततः सर्वास्त्रविद्धीरः कौसल्यानन्दवर्धनः ॥४९॥
अस्त्रैश्च बहुभिर्युक्तश्चिन्तयामास राघवः ।
यैर्यैर्बाणैर्हता दैत्या महासत्त्वपराक्रमाः ॥५०॥
त एते निष्फलं याता रावणस्य निपातने ।

तब तो श्रीरामचन्द्रजीको बड़ा ही विस्मय हुआ (वे सोचने लगे) 'मैंने समान-तेज-सम्पन्न एक सौ एक शिर काटे हैं ॥ ४८ ॥ किन्तु फिर भी रावण प्राण-नाशसे शान्त हुआ दिखायी नहीं देता ।' तब अनेक अस्त्रोंसे युक्त सर्वास्त्रविशारद धीरवीर कौशल्यानन्दन रघुनाथजीने विचारा—"मैंने जिन-जिन बाणोंसे बड़े-बड़े तेजस्वी और पराक्रमी दैत्योंको मारा था, इस रावणका वध करनेमें वे सभी निष्फल हो गये ।"

इति चिन्ताकुले रामे समीपस्थो विभीषणः ॥५१॥
उवाच राघवं वाक्यं ब्रह्मदत्तवरो ह्यसौ ।
विच्छिन्ना बाहवोऽप्यस्य विच्छिन्नानि शिरांसि च
उत्पत्स्यन्ति पुनः शीघ्रमित्याह भगवानजः ।

भगवान् रामको इस प्रकार चिन्ताग्रस्त देख उनके पास खड़े हुए विभीषणने कहा—"भगवन् ! ब्रह्माजीने इसे एक वर दिया था । उन्होंने कहा था कि इसकी 'भुजाएँ और शिर बारम्बार काट दिये जानेपर भी फिर तुरन्त नये उत्पन्न हो जायँगे ।' इसके नाभि-

नाभिदेशेऽमृतं तस्य कुण्डलाकारसंस्थितम् ॥५३॥
तच्छोषयानलास्त्रेण तस्य मृत्युस्ततो भवेत् ।
विभीषणवचः श्रुत्वा रामः शीघ्रपराक्रमः ॥५४॥
पावकास्त्रेण संयोज्य नाभिं विव्याध रक्षसः ।
अनन्तरं च चिच्छेद शिरांसि च महाबलः ॥५५॥
बाहूनपि च संरब्धो रावणस्य रघूत्तमः ।
ततो घोरां महाशक्तिमादाय दशकन्धरः ॥५६॥
विभीषणवधार्थाय चिक्षेप क्रोधविह्वलः ।
चिच्छेद राघवो बाणैस्तां शितैर्हेमभूषितैः ॥५७॥
दशग्रीवशिरश्छेदात्तदा तेजो विनिर्गतम् ।
म्लानरूपो बभूवाथ छिन्नैः शीर्षैर्भयङ्करैः ॥५८॥
एकेन मुख्यशिरसा बाहुभ्यां रावणो बभौ ।
रावणस्तु पुनः क्रुद्धो नानाशस्त्रास्त्रवृष्टिभिः ॥५९॥
ववर्ष रामं तं रामस्तथा बाणैर्ववर्ष च ।
ततो युद्धमभूद्घोरं तुमुलं लोमहर्षणम् ॥६०॥

देशमें कुण्डलाकारसे अमृत रखा हुआ है ॥४९–५३॥ उसे आप आग्नेयास्त्रसे सुखा डालिये, तभी इसकी मृत्यु हो जायगी ।" विभीषणके वचन सुनकर शीघ्रपराक्रमी भगवान् रामने अपने धनुषपर आग्नेयास्त्र चढ़ाकर उस राक्षसकी नाभिमें मारा और फिर महाबली रघुनाथजीने क्रोधित होकर उसके शिर और भुजाएँ काट डालीं ।

इसपर रावणने अत्यन्त क्रोधातुर हो विभीषणको मारनेके लिये एक महाभयानक शक्ति छोड़ी । किन्तु रघुनाथजीने उसे तुरन्त ही सुवर्णमण्डित तीक्ष्ण बाणोंसे काट डाला ॥ ५४–५७ ॥ रावणके शिर काटे जानेसे उसका तेज निकल गया और वह उन भयंकर शिरोंके कट जानेसे विरूप दिखायी देने लगा ॥५८॥ अब, रावणके एक मुख्य शिर और दो भुजाएँ रह गयी थीं । किन्तु फिर भी वह अत्यन्त क्रुद्ध होकर भगवान् रामपर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र बरसाने लगा । इसी प्रकार रामने भी उसपर भयंकर बाणवर्षा की । फिर तो वहाँ अत्यन्त रोमाञ्चकारी घमासान युद्ध छिड़ गया ॥ ५९-६० ॥

अथ संस्मारयामास मातली राघवं तदा ।
विसृज्यास्त्रं वधायास्य ब्राह्मं शीघ्रं रघूत्तम ॥६१॥
विनाशकालः प्रथितो यः सुरैः सोऽद्य वर्तते ।
उत्तमाङ्गं न चैतस्य छेत्तव्यं राघव त्वया ॥६२॥
नैव शीर्ष्णि प्रभो वध्यो वध्य एव हि मर्मणि ।
ततः संस्मारितो रामस्तेन वाक्येन मातलेः ॥६३॥
जग्राह सशरं दीप्तं निश्वसन्तमिवोरगम् ।
यस्य पार्श्वे तु पवनः फले भास्करपावकौ ॥६४॥
शरीरमाकाशमयं गौरवे मेरुमन्दरौ ।
पर्वस्वपि च विन्यस्ता लोकपाला महौजसः ॥६५॥
जाज्वल्यमानं वपुषा भातं भास्करवर्चसा ।
तमुग्रमस्त्रं लोकानां भयनाशनमद्भुतम् ॥६६॥

तब मातलिने श्रीरामचन्द्रजीको स्मरण दिलाया कि "हे रघुश्रेष्ठ ! इसका वध करनेके लिये आप शीघ्र ही ब्रह्मास्त्र छोड़िये ॥ ६१ ॥ देवताओंने इसके नाशका जो समय निश्चित किया है वह इस समय वर्तमान है । हे रघुनन्दन ! आप इसका मस्तक न काटियेगा ॥ ६२ ॥ (क्योंकि) हे प्रभो ! यह शिर काटनेसे नहीं मर सकता, बल्कि (हृदयरूप) मर्मस्थानके विद्ध होनेपर ही इसका अन्त हो सकता है ।" मातलिके इन वाक्योंसे स्मरण दिलाये जानेपर भगवान् रामने फुफकारते हुए सर्पके समान एक परम तेजस्वी बाण निकाला । उसके पार्श्वभागमें पवनकी, नोंकपर सूर्य और अग्निकी, गुरुता (भारीपन) में सुमेरु और मन्दराचलकी तथा गाँठोंमें महातेजस्वी लोकपालोंकी स्थापना की गयी थी, एवं उसका स्वरूप आकाशमय था ॥६३–६५॥ उसका आकार अत्यन्त देदीप्यमान होनेके कारण वह सूर्यके समान प्रकाशमान था । महाबाहु

अभिमन्त्र्य ततो रामस्तं महेषुं महाभुजः ।
वेदप्रोक्तेन विधिना सन्दधे कार्मुके वली ॥६७॥
तस्मिन्सन्धीयमाने तु राघवेण शरोत्तमे ।
सर्वभूतानि वित्रेसुश्चचाल च वसुन्धरा ॥६८॥
संश्रवणाय सङ्क्रुद्धो भृशमानम्य कार्मुकम् ।
चिक्षेप परमायत्तस्तमस्त्रं मर्मघातिनम् ॥६९॥
स वज्र इव दुर्द्धर्षो वज्रपाणिविसर्जितः ।
कृतान्त इव घोरास्यो न्यपतद्रावणोरसि ॥७०॥
स निमग्नो महाघोरः शरीरान्तकरः परः ।
बिभेद हृदयं तूर्णं रावणस्य महात्मनः ॥७१॥
रावणस्याहरत्प्राणान्विवेश धरणीतले ।
स शरो रावणं हत्वा रामतूणीरमाविशत् ॥७२॥
तस्य हस्तात्पपाताशु सशरं कार्मुकं महत् ।
गतासुर्भ्रमिवेगेन राक्षसेन्द्रोऽपतद्भुवि ॥७३॥
तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ हतशेषाश्च राक्षसाः ।
हतनाथा भयत्रस्ता दुद्रुवुः सर्वतोदिशम् ॥७४॥
दशग्रीवस्य निधनं विजयं राघवस्य च ।
ततो विनेदुः संहृष्टा वानरा जितकाशिनः ॥७५॥
वदन्तो रामविजयं रावणस्य च तद्वधम् ।
अथान्तरिक्षे व्यनदत्सौम्यस्त्रिदशदुन्दुभिः ॥७६॥
ववर्ष पुष्पवृष्टिश्च समन्ताद्राघवोपरि ।
तुष्टुवुर्मुनयः सिद्धाश्चारणाश्च दिवौकसः ॥७७॥
अथान्तरिक्षे ननृतुः सर्वतोऽप्सरसो मुदा ।
रावणस्य च देहोत्थं ज्योतिरादित्यवत्स्फुरत् ॥७८॥
प्रविवेश रघुश्रेष्ठं देवानां पश्यतां सताम् ।
देवा ऊचुरहो भाग्यं रावणस्य महात्मनः ॥७९॥
वयं तु सात्त्विका देवा विष्णोः कारुण्यभाजनाः ।

भगवान् रामने सम्पूर्ण लोकोंका भय दूर करनेवाले उस अत्यन्त उग्र और अद्भुत अस्त्रको धनुर्वेदोक्त विधिसे अभिमन्त्रित कर अपने धनुषपर चढ़ाया ॥ ६६-६७ ॥ भगवान् रामद्वारा उस उत्तम बाणके चढ़ाये जानेपर समस्त प्राणी भयभीत हो गये और पृथिवी काँपने लगी ॥ ६८ ॥ इसी समय उन्होंने अत्यन्त क्रुद्ध हो धनुषको भली प्रकार खींच बड़ी सावधानीसे वह मर्मघातक बाण रावणपर छोड़ दिया ॥ ६९ ॥ वह कालके समान अति भयंकर मुखवाला और वज्रपाणि इन्द्रद्वारा छोड़े हुए वज्रके समान अति असह्य बाण रावणके वक्षःस्थलमें लगा ॥७०॥ वह शरीरान्तकारी महाभयंकर बाण उस महाकाय रावणके शरीरमें घुस गया और उसने तुरन्त ही उसका हृदय फाड़ डाला ॥७१॥ उसने रावणके प्राणोंका अन्त कर दिया और फिर पृथिवीमें घुस गया । इस प्रकार रावणका वध करनेके उपरान्त वह बाण फिर भगवान् रामके तरकशमें चला आया ॥ ७२ ॥ बाणके लगते ही रावणका बड़ा भारी धनुष बाणसहित तुरन्त उसके हाथसे गिर गया और वह राक्षसराज प्राणरहित हो चक्कर खाकर पृथिवीपर गिर पड़ा ॥ ७३ ॥ उसे पृथिवीपर गिरा देख मरनेसे बचे हुए राक्षसगण अनाथ हो जानेसे भयभीत होकर चारों ओर भाग गये ॥ ७४ ॥

तब, विजय-विभूषित वानरगण अति प्रसन्न होकर श्रीरामचन्द्रजीकी जय और रावणकी उस पराजयका बखान करते हुए 'भगवान् रामकी जय और रावणकी क्षय' का घोष करने लगे । तथा आकाश-मण्डलमें दिव्य दुन्दुभियोंका गम्भीर नाद होने लगा ॥ ७५-७६ ॥ भगवान् रामपर सब ओरसे फूलोंकी वर्षा होने लगी तथा मुनि, सिद्ध, चारण और देवगण उनकी स्तुति करने लगे ॥ ७७ ॥ फिर आकाशमें सब ओर अप्सराएँ प्रसन्नतापूर्वक नाचने लगीं । (इसी समय) रावणके देहसे एक सूर्यके समान प्रकाशमान ज्योति निकली, और वह सब देवताओंके देखते-देखते श्रीरघुनाथजीमें प्रवेश कर गयी । यह देखकर देवगण कहने लगे—"अहो ! महात्मा रावणका बड़ा भाग्य है ॥ ७८-७९ ॥ हम देवगण सत्त्वगुणप्रधान हैं और श्रीविष्णुभगवान्के

भयदुःखादिभिर्व्याप्ताः संसारे परिवर्तिनः ॥८०॥

अयं तु राक्षसः क्रूरो ब्रह्महाऽतीव तामसः ।

परदाररतो विष्णुद्वेषी तापसहिंसकः ॥८१॥

पश्यत्सु सर्वभूतेषु राममेव प्रविष्टवान् ।

एवं ब्रुवत्सु देवेषु नारदः प्राह सुस्मितः ॥८२॥

शृणुतात्र सुरा यूयं धर्मतत्त्वविचक्षणाः ।

रावणो राघवद्वेषादनिशं हृदि भावयन् ॥८३॥

भृत्यैः सह सदा रामचरितं द्वेषसंयुतः ।

श्रुत्वा रामात्स्वनिधनं मयात्सर्वत्र राघवम् ॥८४॥

पश्यन्ननुदिनं स्वप्ने राममेवानुपश्यति ।

क्रोधोऽपि रावणस्याशु गुरुबोधाधिकोऽभवत्॥८५॥

रामेण निहतश्चान्ते निर्धूताशेषकल्मषः ।

रामसायुज्यमेवाप रावणो मुक्तबन्धनः ॥८६॥

पापिष्ठो वा दुरात्मा परधनपरदा-
रेषु सक्तो यदि स्या-
न्नित्यं स्नेहाद्भयाद्वा रघुकुलतिलकं
भावयन्सम्परेतः ।
भूत्वा शुद्धान्तरङ्गो भवशतजनिता-
नेकदोषैर्विमुक्तः
सद्यो रामस्य विष्णोः सुरवरविनुतं
याति वैकुण्ठमाद्यम् ॥८७॥

हत्वा युद्धे दशास्यं त्रिभुवनविषमं
वामहस्तेन चापं
भूमौ विष्टभ्य तिष्ठन्नितरकरधृतं
भ्रामयन्बाणमेकम् ।
आरक्तोपान्तनेत्रः शरदलितवपुः
सूर्यकोटिप्रकाशो

कृपापात्र हैं, फिर भी हम भय और दुःखादिसे व्याप्त होकर संसारमें भटका करते हैं ॥ ८० ॥ और यह रावण महाक्रूर राक्षस है, (यही नहीं) यह ब्रह्म-घाती, अत्यन्त तमोगुणी, परस्त्रीपरायण, भगवद्-विरोधी और तपस्वियोंको पीड़ित करनेवाला भी है ॥ ८१ ॥ किन्तु देखो, यह सबके देखते-देखते भगवान् राममें ही लीन हो गया ।"

देवगणके इस प्रकार कहनेपर नारदजीने मुसकाते हुए कहा—॥ ८२ ॥ "हे देवगण ! तुमलोग धर्मके तत्त्वको भली प्रकार जाननेवाले हो, अतः (इस विषयमें मेरा मत) सुनो । रघुनाथजीसे द्वेष रहनेके कारण रावण अहर्निश अपने सेवकोंसहित द्वेषपूर्वक हृदयमें सदा श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रकी ही भावना रखता था; तथा रामके हाथसे अपना वध सुनकर सर्वत्र रामहीको देखता हुआ स्वप्नमें भी उन्हींको देखता था । इस प्रकार रावणका क्रोध भी उसके लिये गुरुके उपदेशसे कहीं अधिक उपयोगी हुआ ॥८३–८५॥ अन्तमें स्वयं भगवान् रामके हाथसे मारे जानेके कारण उसके समस्त पाप धुल गये थे । अतः बन्धनहीन हो जानेसे उसने राममें सायुज्य मोक्ष प्राप्त किया ॥ ८६ ॥ यद्यपि कोई पुरुष (पहलेका) महापापी, दुराचारी तथा परधन और परस्त्रीमें आसक्त भी हो तथापि यदि नित्यप्रति प्रेमसे अथवा भयसे रघुकुल-तिलक भगवान् रामका चिन्तन करता हुआ प्राणत्याग करता है तो वह शुद्ध-चित्त होकर सैकड़ों जन्मके उपार्जित नाना दुःखोंसे छूटकर शीघ्र ही भगवान् विष्णुके देवता और दैत्योंसे वन्दित आदिस्थान वैकुण्ठलोकको चला जाता है ॥ ८७ ॥ जो त्रिलोकीके कण्टकस्वरूप रावणको युद्धमें मारकर अपने बायें हाथसे धनुषको पृथिवीपर टेके हुए खड़े हैं, तथा दूसरे हाथमें एक बाण लेकर उसे घुमा रहे हैं, जिनके नेत्रोंके उपान्तभाग कुछ लाल हो रहे हैं, बाणोंसे छिन्न-भिन्न हुआ शरीर करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशित हो रहा है और उन्नत देह वीरश्रीसे सुशोभित है, वे

वीरश्रीवन्धुराङ्गस्त्रिदशपतिनुतः
पातु मां वीररामः ।८८।

देवराज इन्द्रद्वारा वन्दित वीरवर राम मेरी रक्षा करें" ॥ ८८ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे
युद्धकाण्डे एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादश सर्ग

विभीषणका राज्याभिषेक और सीताजीकी अग्नि-परीक्षा।

श्रीमहादेव उवाच

रामो विभीषणं दृष्ट्वा हनूमन्तं तथाङ्गदम् ।
लक्ष्मणं कपिराजं च जाम्बवन्तं तथा परान् ॥ १ ॥
परितुष्टेन मनसा सर्वानेवाब्रवीद्वचः ।
भवतां बाहुवीर्येण निहतो रावणो मया ॥ २ ॥
कीर्तिः स्थास्यति वः पुण्या यावच्चन्द्रदिवाकरौ ।
कीर्तयिष्यन्ति भवतां कथां त्रैलोक्यपावनीम् ॥३॥
मयोपेतां कलिहरां यास्यन्ति परमां गतिम् ।
एतस्मिन्नन्तरे दृष्ट्वा रावणं पतितं भुवि ॥ ४ ॥
मन्दोदरीमुखाः सर्वाः स्त्रियो रावणपालिताः ।
पतिता रावणस्याग्रे शोचन्त्यः पर्यदेवयन् ॥५॥
विभीषणः शुशोचार्तः शोकेन महताऽऽवृतः ।
पतितो रावणस्याग्रे बहुधा पर्यदेवयत् ॥ ६ ॥
रामस्तु लक्ष्मणं प्राह बोधयस्व विभीषणम् ।
करोतु भ्रातृसंस्कारं किं विलम्बेन मानद ॥ ७ ॥
स्त्रियो मन्दोदरीमुख्याः पतिता विलपन्ति च ।
निवारयतु ताः सर्वा राक्षसी रावणप्रियाः ॥८॥

एवमुक्तोऽथ रामेण लक्ष्मणोऽगाद्विभीषणम् ।
उवाच मृतकोपान्ते पतितं मृतकोपमम् ॥ ९ ॥
शोकेन महताऽऽविष्टं सौमित्रिरिदमब्रवीत् ।
यं शोचसि त्वं दुःखेन कोऽयं तव विभीषण ॥१०॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! श्रीरामचन्द्रजीने विभीषण, हनुमान्, अंगद, लक्ष्मण, वानरराज सुग्रीव, जाम्बवान् तथा अन्यान्य वीरोंकी ओर देख सभी लोगोंसे प्रसन्न-चित्तसे कहा—"आपलोगोंके बाहुबलसे आज मैंने रावणको मार दिया ॥ १-२ ॥ आप सबलोगोंकी पवित्र कीर्ति जबतक सूर्य और चन्द्र रहेंगे तबतक स्थिर रहेगी और जो लोग मेरेसहित आप सबकी कलि-कल्मष-नाशिनी त्रिलोकपावनी पवित्र कथाका कीर्तन करेंगे वे परमपदको प्राप्त होंगे ।"

इसी समय रावणको पृथिवीपर गिरा देख उससे सुरक्षित मन्दोदरी आदि समस्त स्त्रियाँ उसके पास (आकर) गिर गयीं तथा शोकसे विलाप करने लगीं ॥ ३–५ ॥ विभीषण भी महान् शोकाकुल हो आर्तभावसे चिन्ताग्रस्त हो गये और रावणके पास गिरकर नाना प्रकारसे विलाप करने लगे ॥ ६ ॥ तब श्रीरघुनाथजीने लक्ष्मणजीसे कहा—"हे मानद ! विभीषणको समझाओ कि वह भाईका (और्ध्वदैहिक) संस्कार करे, अब व्यर्थ देरी करनेसे क्या लाभ है ? ॥ ७ ॥ और मन्दोदरी आदि स्त्रियाँ पछाड़ खा-खाकर विलाप कर रही हैं, सो उन रावणकी प्रेयसी राक्षसियोंको (समझाकर) ऐसा करनेसे रोके" ॥ ८ ॥

भगवान् रामके इस प्रकार कहनेपर श्रीलक्ष्मणजी मृतक रावणके समीप मरे हुएके समान पड़े हुए विभीषणके पास आये और उससे कहने लगे ॥९॥ इस समय विभीषण महान् शोकाकुल थे उनसे श्रीलक्ष्मणजी इस प्रकार बोले—"विभीषण ! जिसके लिये तुम

त्वं वास्य कतमः सृष्टेः पुरेदानीमतः परम् ।
यद्वत्तोयौघपतिताः सिकता यान्ति तद्वशाः ॥११॥
संयुज्यन्ते वियुज्यन्ते तथा कालेन देहिनः ।
यथा धानासु वै धाना भवन्ति न भवन्ति च ॥१२॥
एवं भूतेषु भूतानि प्रेरितानीशमायया ।
त्वं चेमे वयमन्ये च तुल्याः कालवशोद्भवाः ॥१३॥
जन्ममृत्यू यदा यस्मात्तदा तस्माद्भविष्यतः ।
ईश्वरः सर्वभूतानि भूतैः सृजति हन्त्यजः ॥१४॥
आत्मसृष्टैरस्वतन्त्रैर्निरपेक्षोऽपि बालवत् ।
देहेन देहिनो जीवा देहादेहोऽभिजायते ॥१५॥
बीजादेव यथा बीजं देहान्य इव शाश्वतः ।
देहिदेहविभागोऽयमविवेककृतः पुरा ॥१६॥
नानात्वं जन्म नाशश्च क्षयो वृद्धिः क्रिया फलम् ।
द्रष्टुराभान्त्यतद्धर्मा यथाग्नेर्दारुविक्रियाः ॥१७॥
त इमे देहसंयोगादात्मना भान्त्यसद्ग्रहात् ।
यथा यथा तथा चान्यद्ध्यायतोऽसत्सदाग्रहात् ॥१८॥
प्रसुप्तस्यानहम्भावात्तदा भाति न संसृतिः ।
जीवतोऽपि तथा तद्वद्विमुक्तस्यानहङ्कृतेः ॥१९॥
तस्मान्मायामनोधर्मं जह्यहम्ममताभ्रमम् ।
रामभद्रे भगवति मनो धेह्यात्मनीश्वरे ॥२०॥

दुःखी होकर शोक कर रहे हो यह तुम्हारा कौन है? ॥ १० ॥ तथा तुम भी अपने जन्मसे पूर्व, इस समय अथवा इससे आगे इसके क्या हो? जिस प्रकार जलके प्रवाहमें पड़ी हुई बालू उसके अधीन आती-जाती रहती है, उसी प्रकार देहधारी प्राणी कालके वशीभूत हुए ही संयोग और वियोगको प्राप्त होते हैं। जिस प्रकार बीजोंसे अन्य बीज उत्पन्न होते और नष्ट भी हो जाते हैं, उसी प्रकार भगवान्‌की मायासे प्रेरित समस्त प्राणी अन्य प्राणियोंसे उत्पन्न होते और मरते रहते हैं। तुम, हम, ये और अन्य सब भी समानभावसे कालके वशीभूत ही उत्पन्न हुए हैं ॥ ११–१३ ॥ जन्म और मृत्यु जिस समय जिससे होनेवाले हैं, उस समय उसीके द्वारा हो जायँगे। अजन्मा ईश्वर ही, किसी प्रकारकी इच्छा न रहते हुए भी, बालकके समान (केवल विनोदार्थ) अपने रचे हुए अस्वतन्त्र प्राणियों-से समस्त प्राणियोंको उत्पन्न करता और नष्ट कर देता है। जीव देह-संयोगके कारण ही देही कहलाता है और देह अन्य (माता-पिताके) देहसे ही उत्पन्न होता है, जैसे कि एक बीजसे दूसरा बीज। सनातन आत्मा तो देहसे पृथक्-सा है। वास्तवमें तो यह देह और देहीका विभाग भी पहलेहीसे अविवेकके ही कारण है ॥ १४–१६ ॥ जिस प्रकार अग्निमें लकड़ीके विकार दिखायी देते हैं उसी प्रकार साक्षी आत्मामें भिन्नता जन्म, मरण, क्षय, वृद्धि, कर्म और कर्मफल आदि प्रतीत होते हैं, जो वास्तवमें उसके धर्म नहीं हैं ॥ १७ ॥ मिथ्या भ्रान्तिके कारण आत्माके साथ देहका संयोग माननेसे जिस प्रकार ये (सब धर्म) (सत्यवत्) भासते हैं वैसे ही सत्य (आत्मा) का निश्चय कर उसीका ध्यान करते रहनेसे ये असत्य प्रतीत होने लगते हैं ॥ १८ ॥ जिस प्रकार गाढ़ निद्रामें सोये हुए पुरुषको अहंकारका अभाव हो जानेसे प्रपञ्चकी प्रतीति नहीं होती उसी प्रकार अहंकारहीन मुक्त पुरुषको जीते हुए ही प्रपञ्चका भान नहीं होता ॥ १९ ॥

"अतः तुम अहंता-ममता एवं भ्रान्तिरूप मायामय मनो-धर्मोंको त्यागो और इन्द्रियोंके बाह्य विषयोंसे अपने मनका

सर्वभूतात्मनि परे मायामानुषरूपिणि ।
बाह्येन्द्रियार्थसम्बन्धात्त्याजयित्वा मनः शनैः ।२१।
तत्र दोषान्दर्शयित्वा रामानन्दे नियोजय ।
देहबुद्ध्या भवेद्भ्राता पिता माता सुहृत्प्रियः ।२२।
विलक्षणं यदा देहाज्जानात्यात्मानमात्मना ।
तदा कः कस्य वा बन्धुर्भ्राता माता पिता सुहृत् २३
मिथ्याज्ञानवशाज्जाता दारागारादयः सदा ।
शब्दादयश्च विषया विविधाश्चैव सम्पदः ॥२४॥
बलं कोशो भृत्यवर्गो राज्यं भूमिः सुतादयः ।
अज्ञानजत्वात्सर्वे ते क्षणसङ्गमभङ्गुराः ॥२५॥
अथोत्तिष्ठ हृदा रामं भावयन् भक्तिभावितम् ।
अनुवर्तस्व राज्यादि भुञ्जन्प्रारब्धमन्वहम् ॥२६॥
भूतं भविष्यदभजन्वर्तमानमथाचरन् ।
विहरस्व यथान्यायं भवदोषैर्न लिप्यसे ॥२७॥
आज्ञापयति रामस्त्वां यद्भ्रातुः साम्परायिकम् ।
तत्कुरुष्व यथाशास्त्रं रुदतीश्चापि योषितः ॥२८॥
निवारय महाबुद्धे लङ्कां गच्छन्तु माचिरम् ।
श्रुत्वा यथावद्वचनं लक्ष्मणस्य विभीषणः ॥२९॥
त्यक्त्वा शोकं च मोहं च रामपार्श्वमुपागमत् ।
विमृश्य बुद्ध्या धर्मज्ञो धर्मार्थसहितं वचः ॥३०॥
रामस्यैवानुवृत्त्यर्थमुत्तरं पर्यभाषत ।
नृशंसमनृतं क्रूरं त्यक्तधर्मव्रतं प्रभो ॥३१॥
नार्होऽस्मि देव संस्कर्तुं परदाराभिमर्शिनम् ।
श्रुत्वा तद्वचनं प्रीतो रामो वचनमब्रवीत् ॥३२॥
मरणान्तानि वैराणि निवृत्तं नः प्रयोजनम् ।
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव ॥३३॥

सम्बन्ध छुटाकर उसे धीरे-धीरे अपने आत्मस्वरूप सर्वभूतान्तर्यामी परमेश्वर माया-मानवरूप भगवान् राममें स्थिर करो ॥ २०–२१ ॥ (चित्तको) बाह्य विषयोंमें दोष दिखाकर उसे रामानन्दमें नियुक्त कर दो; ये माता, पिता, भ्राता, सुहृद् और स्नेहीजन तो देह-बुद्धिसे ही होते हैं ॥ २२ ॥ जिस समय अपने विशुद्ध अन्तःकरणद्वारा मनुष्य आत्माको देहसे पृथक् जान लेता है उस समय कौन किसीका माता, पिता, भाई, बन्धु अथवा सुहृद् है ? ॥ २३ ॥ ये स्त्री और गृह आदि, शब्दादि विषय, नाना प्रकारकी सम्पत्ति, बल, कोश, सेवकगण, राज्य, पृथिवी और पुत्रादि तो सदा मिथ्या ज्ञानके कारण ही उत्पन्न हुए हैं और अज्ञानजन्य होनेके कारण वे सब क्षणभङ्गुर हैं ॥ २४-२५ ॥ अतः, अब खड़े हो जाओ और हृदयमें भक्ति-भावित भगवान् रामका स्मरण करते हुए निरन्तर प्रारब्ध भोगोंमें तत्पर हो राज्यादिका पालन करो ॥ २६ ॥ भूत और भविष्यत्की चिन्ता न करते हुए तथा वर्तमानका अनुगमन करते हुए न्यायानुकूल आचरण करो । इससे तुम संसार-दोषसे लिप्त न होगे ॥ २७ ॥ भगवान् राम तुम्हें आज्ञा देते हैं कि अपने भाईका जो कुछ और्ध्वदैहिक कर्म हो वह सब शास्त्रानुसार करो और हे महाबुद्धे ! इन रोती हुई स्त्रियोंको यहाँसे अलग करो, ये सब लंकापुरीको जायँ । इसमें देरी न हो ।"

लक्ष्मणजीके यथार्थ वचन सुनकर विभीषण शोक और मोहको छोड़कर भगवान् रामके पास आये । धर्मज्ञ विभीषणने चित्तमें कुछ सोच-विचारकर श्रीरामचन्द्रजीका ही अनुवर्तन करनेके लिये यों धर्मार्थयुक्त उत्तर दिया—"प्रभो ! यह रावण बड़ा दुष्ट, मिथ्यावादी, क्रूर और समस्त धर्मव्रत आदिसे रहित था । हे देव ! इस परस्त्रीगामीका संस्कार करनेमें मैं समर्थ नहीं हूँ ।" उसके ये वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने प्रसन्न होकर कहा—"भैया ! वैर तो मरनेतक ही होता है, सो अब हमारा काम हो चुका; अब तो यह जैसा तुम्हारा है वैसा ही मेरा है । अतः इसका संस्कार करो" ॥२८–३३॥

रामाज्ञां शिरसा धृत्वा शीघ्रमेव विभीषणः ।
सान्त्ववाक्यैर्महाबुद्धिं राज्ञीं मन्दोदरीं तदा ॥३४॥
सान्त्वयामास धर्मात्मा धर्मबुद्धिर्विभीषणः ।
त्वरयामास धर्मज्ञः संस्कारार्थं स्वबान्धवान् ॥३५॥
चित्यां निवेश्य विधिवत्पितृमेधविधानतः ।
आहिताग्नेर्यथा कार्यं रावणस्य विभीषणः ॥३६॥
तथैव सर्वमकरोद्बन्धुभिः सह मन्त्रिभिः ।
ददौ च पावकं तस्य विधियुक्तं विभीषणः ॥३७॥
स्नात्वा चैवार्द्रवस्त्रेण तिलान्दर्भाभिमिश्रितान् ।
उदकेन च सम्मिश्रान्प्रदाय विधिपूर्वकम् ॥३८॥
प्रदाय चोदकं तस्मै मूर्ध्ना चैनं प्रणम्य च ।
ताः स्त्रियोऽनुनयामास सान्त्वमुक्त्वा पुनःपुनः ३९
गम्यतामिति ताः सर्वा विविशुर्नगरं तदा ।
प्रविष्टासु च सर्वासु राक्षसीषु विभीषणः ॥४०॥
रामपार्श्वमुपागत्य तदाऽतिष्ठद्विनीतवत् ।
रामोऽपि सह सैन्येन ससुग्रीवः सलक्ष्मणः ॥४१॥
हर्षं लेभे रिपून्हत्वा यथा वृत्रं शतक्रतुः ।
मातलिश्च तदा रामं परिक्रम्याभिवन्द्य च ॥४२॥
अनुज्ञातश्च रामेण ययौ स्वर्गं विहायसा ।
ततो हृष्टमना रामो लक्ष्मणं चेदमब्रवीत् ॥४३॥
विभीषणाय मे लङ्काराज्यं दत्तं पुरैव हि ।
इदानीमपि गत्वा त्वं लङ्कामध्ये विभीषणम् ॥४४॥
अभिषेचय विप्रैश्च मन्त्रवद्विधिपूर्वकम् ।
इत्युक्तो लक्ष्मणस्तूर्णं जगाम सह वानरैः ॥४५॥
लङ्कां सुवर्णकलशैः समुद्रजलसंयुतैः ।
अभिषेकं शुभं चक्रे राक्षसेन्द्रस्य धीमतः ॥४६॥

ततः पौरजनैः सार्धं नानोपायनपाणिभिः ।
विभीषणः ससौमित्रिरुपायनपुरस्कृतः ॥४७॥
दण्डप्रणाममकरोद्रामस्याक्लिष्टकर्मणः ।

तब विभीषणने भगवान् रामकी आज्ञा शिरपर धारणकर तुरन्त ही शान्त वचनोंसे महाबुद्धिशालिनी रानी मन्दोदरीको ढाँढस बँधाया और तदनन्तर धर्मबुद्धि धर्मात्मा धर्मज्ञ विभीषणने अपने बन्धु-बान्धवोंसे संस्कार-के लिये शीघ्रता करनेको कहा ॥ ३४-३५ ॥ विभीषणने पितृमेधकी विधिसे शवको विधिपूर्वक चितापर रक्खा और जिस प्रकार अग्निहोत्रीका होना चाहिये उसी प्रकार अपने बन्धु-बान्धवों और मन्त्रियोंके साथ मिलकर उन्होंने रावणके सब (अन्त्येष्टि) संस्कार किये । तत्पश्चात् विभीषणने उसे विधिवत् अग्निदान दिया ॥३६-३७॥ फिर स्नान कर गीले वस्त्रसे तिल और दूब मिले जलसे विधिवत् जलाञ्जलि दी ॥३८॥ तथा जलाञ्जलि देनेके अनन्तर पृथिवीपर शिर रखकर उसे प्रणाम किया और उन स्त्रियोंको बारम्बार सान्त्वनाके वचन कहकर ढाँढस बँधाया ॥३९॥ (और कहा कि) 'अब तुम जाओ।' तब वे सब लङ्कापुरीको चली गयीं । समस्त राक्षसियोंके नगर-में चले जानेपर विभीषण भगवान् रामके पास आकर अति विनीतभावसे खड़े हो गये । सेना, सुग्रीव और लक्ष्मणके सहित भगवान् रामको भी शत्रुओंका नाश कर चुकनेपर बड़ा आनन्द हुआ, जैसा कि वृत्रासुर-को मारनेके अनन्तर इन्द्रको हुआ था ।

तदनन्तर, मातलिने श्रीरामचन्द्रजीकी परिक्रमा की और उन्हें प्रणाम कर उनकी आज्ञा पा आकाश-मार्गसे स्वर्गलोकको चला गया । तब, श्रीरघुनाथजीने प्रसन्न-चित्तसे श्रीलक्ष्मणजीसे इस प्रकार कहा—॥४०—४३॥ "मैंने तो पहले ही विभीषणको लङ्काका राज्य दे दिया है, तथापि तुम इस समय भी लङ्कामें जाकर विभीषणका ब्राह्मणोंके द्वारा मन्त्र-पाठपूर्वक विधिवत् अभिषेक कराओ ।" भगवान् रामकी ऐसी आज्ञा पा वानरोंके सहित श्रीलक्ष्मणजी तुरन्त ही लङ्कापुरीको गये तथा समुद्रके जलसे भरे हुए सुवर्ण-कलशोंसे महाबुद्धिमान् राक्षसराज विभीषणका मङ्गलमय अभिषेक किया ॥४४—४६॥

तब, पुरवासियोंके साथ हाथोंमें नाना प्रकारकी भेंटें लिये लक्ष्मणजीके सहित विभीषणने बहुत-सा उपहार आगे रख लीलाविहारी भगवान् रामको दण्डवत् प्रणाम किया । विभीषणको राज्य प्राप्त हुआ देख

रामो विभीषणं दृष्ट्वा प्राप्तराज्यं मुदान्वितः ॥४८॥
कृतकृत्यमिवात्मानममन्यत सहानुजः ।
सुग्रीवं च समालिङ्ग्य रामो वाक्यमथाब्रवीत्॥४९॥
सहायेन त्वया वीर जितो मे रावणो महान् ।
विभीषणोऽपि लङ्कायामभिषिक्तो मयानघ ॥५०॥
ततः प्राह हनूमन्तं पार्श्वस्थं विनयान्वितम् ।
विभीषणस्यानुमते गच्छ त्वं रावणालयम् ॥५१॥
जानक्यै सर्वमाख्याहि रावणस्य वधादिकम् ।
जानक्याः प्रतिवाक्यं मे शीघ्रमेव निवेदय ॥५२॥
एवमाज्ञापितो धीमान् रामेण पवनात्मजः ।
अविवेश पुरीं लङ्कां पूज्यमानो निशाचरैः ॥५३॥
प्रविश्य रावणगृहं शिंशपामूलमाश्रिताम् ।
ददर्श जानकीं तत्र कृशां दीनामनिन्दिताम्॥५४॥
राक्षसीभिः परिवृतां ध्यायन्तीं राममेव हि ।
विनयावनतो भूत्वा प्रणम्य पवनात्मजः ॥५५॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा ह्रीभक्त्याऽग्रतः स्थितः ।
तं दृष्ट्वा जानकी तूष्णीं स्थित्वा पूर्वस्मृतिं ययौ॥५६॥
ज्ञात्वा तं रामदूतं सा हर्षात्सौम्यमुखी बभौ ।
स तां सौम्यमुखीं दृष्ट्वा तस्यै पवननन्दनः ।
रामस्य भाषितं सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥५७॥
देवि रामः ससुग्रीवो विभीषणसहायवान् ।
कुशली वानराणां च सैन्यैश्च सहलक्ष्मणः ॥५८॥
रावणं ससुतं हत्वा सबलं सह मन्त्रिभिः ।
लङ्कां दत्त्वा विभीषणाय कुशलं प्राहिणोत्तव ॥५९॥
श्रुत्वा भर्तुः प्रियं वाक्यं हर्षगद्गदया गिरा ।
किं ते प्रियं करोम्यद्य न पश्यामि जगत्त्रये ॥६०॥
समं ते प्रियवाक्यस्य रत्नान्याभरणानि च ।
एवमुक्तस्तु वैदेह्या प्रत्युवाच प्लवङ्गमः ॥६१॥

श्रीरामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए और भाई लक्ष्मणके सहित अपनेको कृतकृत्य-सा मानने लगे। तदनन्तर भगवान् रामने सुग्रीवको हृदयसे लगाकर कहा—॥४७-४९॥ "हे वीर! तुम्हारी सहायतासे ही मैंने महाबली रावणको जीता है और हे अनघ! (उसीसे) विभीषणको भी लङ्काके राज्यपर अभिषिक्त किया है" ॥ ५० ॥ फिर पास ही बड़े विनीतभावसे खड़े हुए हनुमान्‌जीसे कहा—"तुम विभीषणकी सम्मतिसे रावणके महलमें जाओ ॥५१॥ और जानकीजीको रावणके वध आदिका समस्त वृत्तान्त सुनाओ, फिर वह जो कुछ उत्तर दें वह मुझे सुनाना" ॥५२॥

बुद्धिमान् पवननन्दनने, भगवान् रामकी ऐसी आज्ञा पा राक्षसोंसे पूजित हो, लङ्कापुरीमें प्रवेश किया ॥५३॥ फिर रावणके महलमें जाकर शिंशपावृक्षके तले बैठी हुई अति दुर्बल और दुःखिनी अनिन्दिता जनकनन्दिनीको देखा ॥५४॥ वे राक्षसियोंसे घिरी हुई थीं और एकमात्र भगवान् रामका ही ध्यान कर रही थीं। पवनकुमारने अति विनयावनत होकर उन्हें प्रणाम किया ॥५५॥ और अत्यन्त नम्रतापूर्वक भक्तिभावसे हाथ जोड़कर सामने खड़े हो गये। उन्हें देखकर जानकीजी (पहले तो कुछ देर) चुप रहीं, फिर उन्हें पूर्व-स्मृति हो आयी ॥५६॥ और उन्हें रामका दूत जानकर उनका मुख हर्षसे खिल गया। हनुमान्‌जीने उन्हें प्रसन्नमुखी देख उनसे रामका सारा सन्देश कहना आरम्भ किया ॥५७॥ (वे बोले-) "देवि! विभीषण जिनके सहायक हैं वे श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण, सुग्रीव और वानर-सेनाके सहित कुशलपूर्वक हैं ॥ ५८ ॥ उन भगवान् रामने पुत्र, सेना और मन्त्रियोंके सहित रावणको मारकर तथा लंकाका राज्य विभीषणको देकर तुम्हें अपनी कुशल भेजी है" ॥ ५९ ॥

पतिका यह प्रिय सन्देश सुन श्रीसीताजी हर्षसे गद्‌गद वाणीसे बोलीं—"भैया, मैं तुम्हारा क्या प्रिय करूँ? तुम्हारे प्रिय वाक्योंके समान मुझे त्रिलोकीमें कोई रत्न-आभूषणादि भी दिखायी नहीं देते (जिन्हें देकर तुमसे उऋण होऊँ)।" जानकीजीके

रत्नौघाद्विविधाद्वापि देवराज्याद्विशिष्यते ।
हतशत्रुं विजयिनं रामं पश्यामि सुस्थिरम् ॥६२॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा मैथिली प्राह मारुतिम् ।
सर्वे सौम्या गुणाः सौम्य त्वय्येव परिनिष्ठिताः६३
रामं द्रक्ष्यामि शीघ्रं मामाज्ञापयतु राघवः ।
तथेति तां नमस्कृत्य ययौ द्रष्टुं रघूत्तमम् ॥६४॥
जानक्या भाषितं सर्वं रामस्याग्रे न्यवेदयत् ।
यन्निमित्तोऽयमारम्भः कर्मणां च फलोदयः॥६५॥
तां देवीं शोकसन्तप्तां द्रष्टुमर्हसि मैथिलीम् ।
एवमुक्तो हनुमता रामो ज्ञानवतां वरः ॥६६॥
मायासीतां परित्यक्तुं जानकीमनले स्थिताम् ।
आदातुं मनसा ध्यात्वा रामः प्राह विभीषणम्॥६७॥
गच्छ राजन् जनकजामानयाशु ममान्तिकम् ।
स्नातां विरजवस्त्राढ्यां सर्वाभरणभूषिताम् ॥६८॥
विभीषणोऽपि तच्छ्रुत्वा जगाम सहमारुतिः ।
राक्षसीभिः सुवृद्धाभिः स्नापयित्वा तु मैथिलीम् ६९
सर्वाभरणसम्पन्नामारोप्य शिविकोत्तमे ।
यात्नीकैर्बहुभिर्गुप्तां कञ्चुकोष्णीषिभिः शुभाम् ।७०।
तां द्रष्टुमागताः सर्वे वानरा जनकात्मजाम् ।
तान्वारयन्तो बहवः सर्वतो वेत्रपाणयः ॥७१॥
कोलाहलं प्रकुर्वन्तो रामपार्श्वमुपाययुः ।
दृष्ट्वा तां शिविकारूढां दूरादथ रघूत्तमः ॥७२॥
विभीषण किमर्थं ते वानरान्वारयन्ति हि ।
पश्यन्तु वानराः सर्वे मैथिलीं मातरं यथा ॥७३॥

इस प्रकार कहनेपर वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌जी बोले—॥ ६०-६१ ॥ "मातः ! मैं शत्रुके नष्ट होनेपर स्वस्थ चित्तसे विराजमान विजयशाली श्रीरामका दर्शन करता हूँ—यह मेरे लिये नाना प्रकारकी रत्नराशि और देवराज्यसे भी बढ़कर है" ॥ ६२ ॥ उनके ये वचन सुनकर मिथिलेशकुमारीने मारुतिसे कहा—"हे सौम्य ! जितने शुभ गुण हैं वे सब तुम्हींमें वर्तमान हैं॥ ६३ ॥ अब, मैं रघुनाथजीके दर्शन करूँगी, वे शीघ्र ही मुझे भी आज्ञा दें ।" तब हनुमान्‌जी 'बहुत अच्छा' कह उन्हें प्रणाम कर श्रीरघुनाथजीके दर्शनोंके लिये चल दिये ॥ ६४ ॥

(वहाँ पहुँचकर) हनुमान्‌जीने श्रीरामचन्द्रजीके आगे जानकीजीका सारा सम्भाषण कह सुनाया (और कहा–) "भगवन् ! जिनके लिये यह युद्धादि सम्पूर्ण कर्म आरम्भ हुए थे और जो उन समस्त कर्मोंकी फलस्वरूपा हैं, अब उन शोकसन्तप्ता मिथिलेशनन्दिनी देवी जानकीको आप देखिये ।" हनुमान्‌जीके इस प्रकार कहनेपर ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ भगवान् रामने माया-सीताको त्यागनेके लिये और अग्निस्थिता जानकीको ग्रहण करनेके लिये मनसे विचार करते हुए विभीषणसे कहा—॥ ६५–६७ ॥ "राजन् ! तुम जाओ और तुरन्त ही जानकीको स्नान करा शुद्ध निर्मल वस्त्र पहना तथा सम्पूर्ण आभूषणोंसे सुसज्जित कर मेरे पास ले आओ ॥ ६८ ॥"

यह सुनकर विभीषण हनुमान्‌जीको साथ ले तुरन्त ही चले और शुभलक्षणा जानकीजीको बड़ी-बूढ़ी राक्षसियोंद्वारा स्नान करा,सम्पूर्ण वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित होनेपर एक सुन्दर पालकीपर चढ़ाया और फिर उन्हें, जामा-पगड़ी आदिसे बने-ठने बहुत-से छड़ीदारोंसे सुरक्षित कर ले चले ॥ ६९-७० ॥ उस समय सीताजीको देखनेके लिये सब वानर दौड़ आये । उन्हें चारों ओरसे रोकते तथा (हटो-हटो कहकर) बड़ा कोलाहल करते बहुत-से छड़ीदार रामचन्द्रजीके पास ले आये । रघुनाथजीने दूरसे ही सीताजीको पालकीपर चढ़ी देखकर कहा–॥७१-७२॥ "विभीषण ! तुम्हारे ये छड़ीदार वानरोंको क्यों रोकते हैं? समस्त वानरगण जानकीका माताके समान दर्शन करें

पादचारेण साऽऽयातु जानकी मम सन्निधिम् ।
श्रुत्वा तद्रामवचनं शिबिकादवरुह्य सा ॥७४॥
पादचारेण शनकैरागता रामसन्निधिम् ।
रामोऽपि दृष्ट्वा तां मायासीतां कार्यार्थनिर्मिताम् ७५
अवाच्यवादान्बहुशः प्राह तां रघुनन्दनः ।
अमृष्यमाणा सा सीता वचनं राघवोदितम् ॥७६॥
लक्ष्मणं प्राह मे शीघ्रं प्रज्वालय हुताशनम् ।
विश्वासार्थं हि रामस्य लोकानां प्रत्ययाय च ॥७७॥
राघवस्य मतं ज्ञात्वा लक्ष्मणोऽपि तदैव हि ।
महाकाष्ठचयं कृत्वा ज्वालयित्वा हुताशनम् ॥७८॥
रामपार्श्वमुपागम्य तस्थौ तूष्णीमरिन्दमः ।
ततः सीता परिक्रम्य राघवं भक्तिसंयुता ॥७९॥
पश्यतां सर्वलोकानां देवराक्षसयोषिताम् ।
प्रणम्य देवताभ्यश्च ब्राह्मणेभ्यश्च मैथिली ॥८०॥
बद्धाञ्जलिपुटा चेदमुवाचाग्निसमीपगा ।
यथा मे हृदयं नित्यं नापसर्पति राघवात् ॥८१॥
तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः ।
एवमुक्त्वा तदा सीता परिक्रम्य हुताशनम् ॥८२॥
विवेश ज्वलनं दीप्तं निर्भयेन हृदा सती ॥८३॥

दृष्ट्वा ततो भूतगणाः ससिद्धाः
सीतां महावह्निगतां भृशार्ताः ।
परस्परं प्राहुरहो स सीतां
रामः श्रियं स्वां कथमत्यजज्ज्ञः ॥८४॥

॥७३॥ और जानकीजी मेरे पास पैदल चलकर आयें।"

रामजीके ये वचन सुन श्रीसीताजी पालकीसे उतर पड़ीं और धीरे-धीरे पैदल ही श्रीरामचन्द्रजीके पास पहुँचीं। भगवान् रामने कार्यवश रची हुई माया-सीताको देखकर उनसे बहुत-सी न कहनेयोग्य (उनके चरित्रके विषयमें सन्देहयुक्त) बातें कहीं। श्रीरघुनाथजीद्वारा कहे हुए उन वाक्योंको सहन न कर सकनेके कारण सीताजीने लक्ष्मणजीसे कहा—"भगवान् रामके विश्वासके लिये और लोकोंको निश्चय करानेके लिये तुम शीघ्र ही मेरे लिये अग्नि प्रज्वलित करो" ॥ ७४–७७ ॥ श्रीरघुनाथजीकी भी सम्मति समझकर शत्रुदमन लक्ष्मणजीने उसी समय बड़ा भारी काष्ठसमूह इकट्ठा किया और उसमें अग्नि प्रज्वलित कर चुपचाप रामजीके पास आकर खड़े हो गये। तब सीताजीने भक्तिपूर्वक श्रीरामचन्द्रजीकी परिक्रमा की ॥ ७८-७९ ॥ और फिर श्रीमिथिलेशकुमारीने समस्त लोकों तथा देव और राक्षसोंकी स्त्रियोंके देखते-देखते देवता और ब्राह्मणोंको नमस्कार कर अग्निके पास जा हाथ जोड़कर इस प्रकार कहा—"यदि मेरा हृदय श्रीरघुनाथजीको छोड़कर कभी अन्यत्र नहीं जाता तो समस्त लोकोंके साक्षी अग्निदेव मेरी सब ओरसे रक्षा करें" ऐसा कह सतीशिरोमणि श्रीसीताजी अग्निकी परिक्रमा कर निर्भय-चित्तसे उस प्रज्वलित अग्निमें घुस गयीं ॥ ८०–८३ ॥

उस समय सीताजीको महा प्रचण्ड अग्निमें प्रविष्ट हुई देख समस्त सिद्ध और भूतगण अत्यन्त व्याकुल हो गये और आपसमें कहने लगे—"अहो ! सब कुछ जानते हुए भी श्रीरामचन्द्रजीने अपनी लक्ष्मी सीताजीको कैसे छोड़ दिया?" ॥ ८४ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणे उमामहेश्वरसंवादे
युद्धकाण्डे द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदश सर्ग

देवताओंका भगवान् रामकी स्तुति करना, सीताजी सहित अग्निदेवका प्रकट होना, अयोध्याके लिये प्रस्थान।

श्रीमहादेव उवाच

ततः शक्रः सहस्राक्षो यमश्च वरुणस्तथा।
कुबेरश्च महातेजाः पिनाकी वृषवाहनः ॥ १ ॥
ब्रह्मा ब्रह्मविदां श्रेष्ठो मुनिभिः सिद्धचारणैः।
पितरो ऋषयः साध्या गन्धर्वाप्सरसोरगाः ॥ २ ॥
एते चान्ये विमानाग्र्यैराजग्मुर्यत्र राघवः।
अब्रुवन्परमात्मानं रामं प्राञ्जलयश्च ते ॥ ३ ॥
कर्ता त्वं सर्वलोकानां साक्षी विज्ञानविग्रहः।
वसूनामष्टमोऽसि त्वं रुद्राणां शङ्करो भवान् ॥ ४ ॥
आदिकर्ताऽसि लोकानां ब्रह्मा त्वं चतुराननः।
अश्विनौ घ्राणभूतौ ते चक्षुषी चन्द्रभास्करौ ॥ ५ ॥
लोकानामादिरन्तोऽसि नित्य एकः सदोदितः।
सदा शुद्धः सदा बुद्धः सदा मुक्तोऽगुणोऽद्वयः॥६॥
त्वन्मायासंवृतानां त्वं भासि मानुषविग्रहः।
त्वन्नाम स्मरतां राम सदा भासि चिदात्मकः ॥ ७ ॥
रावणेन हृतं स्थानमस्माकं तेजसा सह।
त्वयाऽद्य निहतो दुष्टः पुनः प्राप्तं पदं स्वकम् ॥ ८ ॥
एवं स्तुवत्सु देवेषु ब्रह्मा साक्षात्पितामहः।
अब्रवीत्प्रणतो भूत्वा रामं सत्यपथे स्थितम् ॥ ९ ॥

ब्रह्मोवाच

वन्दे देवं विष्णुमशेषस्थितिहेतुं
त्वामध्यात्मज्ञानिभिरन्तर्हृदि भाव्यम्।
हेयाहेयद्वन्द्वविहीनं परमेकं
सत्तामात्रं सर्वहृदिस्थं दृशिरूपम् ॥१०॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वति ! इसी समय सहस्राक्ष इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर, महातेजस्वी वृषभवाहन महादेवजी, मुनि, सिद्ध और चारणोंके सहित ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्माजी, पितृगण, ऋषि, साध्य, गन्धर्व, अप्सराएँ और नागगण ये सब तथा और भी अन्यान्य देवगण श्रेष्ठ विमानोंपर चढ़कर जहाँ श्रीरघुनाथजी थे आये। और वे सब हाथ जोड़कर परमात्मा श्रीरामसे बोले— ॥ १–३ ॥ "आप समस्त लोकोंके कर्ता, सबके साक्षी और विशुद्ध विज्ञानस्वरूप हैं; तथा वसुओंमें अष्टम वसु और रुद्रोंमें श्रीमहादेवजी हैं ॥ ४ ॥ आप ही समस्त लोकोंके आदिकर्ता चतुर्मुख ब्रह्माजी हैं, अश्विनीकुमार आपकी घ्राणेन्द्रिय हैं और सूर्य तथा चन्द्रमा नेत्र हैं ॥ ५ ॥ सब लोकोंके आदि (उत्पत्तिस्थान) और अन्त (लयस्थान) आप ही हैं तथा आप नित्यस्वरूप, एक, सदोदित (आविर्भाव-तिरोभावसे रहित नित्यप्रकाशस्वरूप), नित्यशुद्ध, नित्यबुद्ध, नित्यमुक्त, निर्गुण और अद्वितीय हैं ॥ ६ ॥ हे राम ! जो लोग आपकी मायासे आच्छादित हैं उन्हें आप मनुष्यरूप प्रतीत होते हैं, किन्तु जो आपका नामस्मरण करते हैं उन्हें तो आप सर्वदा चैतन्यस्वरूप ही भासते हैं ॥ ७ ॥ रावणने हमारे तेजके सहित हमारा स्थान भी छीन लिया था, सो आज वह दुष्ट आपके हाथसे मारा गया और हमें फिर अपना पद प्राप्त हो गया ॥८॥ देवताओंके इस प्रकार स्तुति करनेपर साक्षात् पितामह ब्रह्माजी अति विनम्र होकर सत्यपथपर स्थित भगवान् रामसे बोले—॥ ९ ॥

ब्रह्माजी बोले—"हे राम ! सम्पूर्ण प्राणियोंकी स्थितिके कारण, आत्मज्ञानियोंद्वारा हृदयमें ध्यान किये जानेवाले, त्याज्य और ग्राह्यरूप द्वन्द्वसे रहित, सबसे परे, अद्वितीय, सत्तामात्र, सबके हृदयमें विराजमान, साक्षीस्वरूप आप विष्णुभगवान्‌को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १० ॥ मोहहीन संन्यासीगण निश्चित बुद्धिके द्वारा

प्राणापानौ निश्चयबुद्ध्या हृदि रुद्ध्वा
छित्त्वा सर्वं संशयबन्धं विषयौघान् ।
पश्यन्तीशं यं गतमोहा यतयस्तं
वन्दे रामं रत्नकिरीटं रविभासम् ॥११॥

मायातीतं माधवमाद्यं जगदादिं
मानातीतं मोहविनाशं मुनिवन्द्यम् ।
योगिध्येयं योगविधानं परिपूर्णं
वन्दे रामं रञ्जितलोकं रमणीयम् ॥१२॥

भावाभावप्रत्ययहीनं भवमुख्यै-
र्योगासक्तैरर्चितपादाम्बुजयुग्मम् ।
नित्यं शुद्धं बुद्धमनन्तं प्रणवाख्यं
वन्दे रामं वीरमशेषासुरदावम् ॥१३॥

त्वं मे नाथो नाथितकार्याखिलकारी
मानातीतो माधवरूपोऽखिलधारी ।
भक्त्या गम्यो भावितरूपो भवहारी
योगाभ्यासैर्भावितचेताःसहचारी ॥१४॥

त्वामाद्यन्तं लोकततीनां परमीशं
लोकानां नो लौकिकमानैरधिगम्यम् ।
केश्रद्धाभावसमेतैर्भजनीयं
वन्दे रामं सुन्दरमिन्दीवरनीलम् ॥१५॥

को वा ज्ञातुं त्वामतिमानं गतमानं
मायासक्तो माधव शक्तो मुनिमान्यम् ।
वृन्दारण्ये वन्दितवृन्दारकवृन्दं
वन्दे रामं भवमुखवन्द्यं सुखकन्दम् ॥१६॥

नानाशास्त्रैर्वेदकदम्बैः प्रतिपाद्यं

प्राण और अपानको हृदयमें रोककर तथा अपने सम्पूर्ण संशय-बन्धन और विषय-वासनाओंका छेदन कर जिस ईश्वरका दर्शन करते हैं उन रत्नकिरीटधारी, सूर्यके समान तेजस्वी भगवान् रामको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ११ ॥ जो मायासे परे, लक्ष्मीके पति, सबके आदिकारण, जगत्‌के उत्पत्ति-स्थान, प्रत्यक्षादि प्रमाणों-से परे, मोहका नाश करनेवाले, मुनिजनोंसे वन्दनीय, योगियोंसे ध्यान किये जानेयोग्य, योगमार्गके प्रवर्त्तक, सर्वत्र परिपूर्ण और सम्पूर्ण संसारको आनन्दित करनेवाले हैं उन परम सुन्दर भगवान् रामको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १२ ॥ जो भाव और अभावरूप दोनों प्रकारकी प्रतीतियोंसे रहित हैं, तथा जिनके युगलचरणकमलों-का योगपरायण शंकर आदि पूजन करते हैं और जो नित्य, शुद्ध, बुद्ध और अनन्त हैं, सम्पूर्ण दानवोंके लिये दावानलके समान उन ओंकारनामक वीरवर रामको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १३ ॥ हे राम ! आप मेरे प्रभु हैं और मेरे सम्पूर्ण प्रार्थित कार्योंको पूर्ण करने-वाले हैं, आप देश-कालादि मान (परिमाण) से रहित, नारायणस्वरूप, अखिल विश्वको धारण करनेवाले, भक्तिसे प्राप्य, अपने स्वरूपका ध्यान किये जाने-पर संसार-भयको दूर करनेवाले और योगाभ्यास-से शुद्ध हुए चित्तमें विहार करनेवाले हैं ॥ १४ ॥ आप इस लोक-परम्पराके आदि और अन्त (अर्थात् उत्पत्ति और प्रलयके स्थान) हैं, सम्पूर्ण लोकोंके महेश्वर हैं, आप किसी भी लौकिक प्रमाणसे जाने नहीं जा सकते, आप तो भक्ति और श्रद्धासम्पन्न पुरुषोंद्वारा ही भजन किये जानेयोग्य हैं, ऐसे नील-कमलके समान श्यामसुन्दर आप श्रीरामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १५ ॥ हे लक्ष्मीपते ! आप प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे परे तथा सर्वथा निर्मान हैं। मायामें आसक्त कौन प्राणी आपको जाननेमें समर्थ हो सकता हैं ? आप महर्षियोंके माननीय हैं, तथा (कृष्णावतार-के समय) वृन्दावनमें अखिल देवसमूहकी वन्दना करते हुए भी रामरूपसे शिव आदि देवताओंके स्वयं वन्दनीय हैं; ऐसे आप आनन्दघन भगवान् रामको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १६ ॥ जो नाना शास्त्र और वेदसमूहसे प्रतिपादित नित्य आनन्दस्वरूप, निर्विकल्प ज्ञान-

नित्यानन्दं निर्विषयज्ञानमनादिम् ।
मत्सेवार्थं मानुषभावं प्रतिपन्नं
वन्दे रामं मरकतवर्णं मथुरेशम् ॥१७॥
श्रद्धायुक्तो यः पठतीमं स्तवमाद्यं
ब्राह्मं ब्रह्मज्ञानविधानं भुवि मर्त्यः ।
रामं श्यामं कामितकामप्रदमीशं
ध्यात्वा ध्याता पातकजालैर्विगतः स्यात् ॥१८॥

स्वरूप और अनादि हैं तथा जिन्होंने मेरा कार्य करनेके लिये मनुष्यरूप धारण किया है उन मरकतमणिके समान नीलवर्ण मथुरानाथ* भगवान् रामको प्रणाम करता हूँ ॥ १७ ॥ जो मनुष्य इच्छित कामनाओंको पूर्ण करनेवाले श्याममूर्ति भगवान् रामका ध्यान करते हुए ब्रह्माजीके कहे हुए इस ब्रह्मज्ञान-विधायक आद्य स्तोत्रका श्रद्धापूर्वक पाठ करेगा वह ध्यानशील पुरुष सकल पापोंसे मुक्त हो जायगा" ॥ १८ ॥

श्रुत्वा स्तुतिं लोकगुरोर्विभावसुः
स्वाङ्के समादाय विदेहपुत्रिकाम् ।
विभ्राजमानां विमलारुणद्युतिं
रक्ताम्बरां दिव्यविभूषणान्वितां ॥१९॥
प्रोवाच साक्षी जगतां रघूत्तमं
प्रपन्नसर्वार्तिहरं हुताशनः ।
गृहाण देवीं रघुनाथ जानकीं
पुरा त्वया मय्यवरोपितां वने ॥२०॥
विधाय मायाजनकात्मजां हरे
दशाननप्राणविनाशनाय च ।
हतो दशास्यः सह पुत्रबान्धवै-
र्निराकृतोऽनेन भरो भुवः प्रभो ॥२१॥
तिरोहिता सा प्रतिबिम्बरूपिणी
कृता यदर्थं कृतकृत्यतां गता ।
ततोऽतिहृष्टां परिगृह्य जानकीं
रामः प्रहृष्टः प्रतिपूज्य पावकम् ॥२२॥
स्वाङ्के समावेश्य सदाऽनपायिनीं
श्रियं त्रिलोकीजननीं श्रियः पतिः ।
दृष्ट्वाऽथ रामं जनकात्मजायुतं
श्रिया स्फुरन्तं सुरनायको मुदा ।
भक्त्या गिरा गद्गदया समेत्य
कृताञ्जलिः स्तोतुमथोपचक्रमे ॥२३॥

लोकगुरु भगवान् ब्रह्माजीकी यह स्तुति सुन लोकसाक्षी अग्निदेवने अपनी गोदमें निर्मल अरुण कान्तिसे सुशोभित और लाल वस्त्र तथा दिव्य आभूषणोंसे विभूषित विदेहपुत्री जानकीजीको लिये (प्रकट होकर) शरणागत-दुःखहारी श्रीरघुनाथजीसे कहा—"हे रघुवीर ! पहले तपोवनमें मुझे सौंपी हुई देवी जानकीको अब ग्रहण कीजिये ॥ १९-२० ॥ हे हरे ! रावणका प्राणहरण करनेके लिये आपने मायामयी सीता रचकर रावणको उसके पुत्र और बन्धु-बान्धवोंके सहित मार डाला । हे प्रभो ! ऐसा करके आपने पृथिवीका भार उतार दिया ॥ २१ ॥ वह प्रतिबिम्ब-रूपिणी मायासीता, जिस कार्यके लिये रची गयी थी उसे पूरा करके अब अदृश्य हो गयी है ।" अग्नि-देवके ये वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने अति प्रसन्न हो उनका पूजन कर प्रसन्नवदना जानकी-जीको ग्रहण किया ॥ २२ ॥ फिर लक्ष्मीपति भगवान् रामने अपनेसे कभी विलग न होनेवाली जगज्जननी जानकीको गोदमें बैठा लिया । उस समय जनकनन्दिनी सीताजीके सहित भगवान् रामको कान्तिसे सुशोभित देख देवराज इन्द्र अति प्रसन्नता-पूर्वक हाथ जोड़कर भक्ति-गद्गद वाणीसे स्तुति करने लगे ॥ २३ ॥

इन्द्र उवाच

भजेऽहं सदा राममिन्दीवराभं
भवारण्यदावानलाभाभिधानम् ।

इन्द्र बोले—जो नीलकमलकी-सी आभावाले हैं, संसाररूप वनके लिये जिनका नाम दावानलके समान है, श्रीपार्वतीजी जिनके आनन्दस्वरूपका हृदयमें ध्यान

* यहाँ भगवान् रामको 'मथुरानाथ' कहकर श्रीराम और कृष्णकी अभिन्नता प्रकट की है ।